ब्रजविदेही चतु:सम्प्रदाय श्रीमहन्त

श्री १०८ श्रीधनंजयदास काठिया बाबाजी महाराज का

जीवन-चरित्र

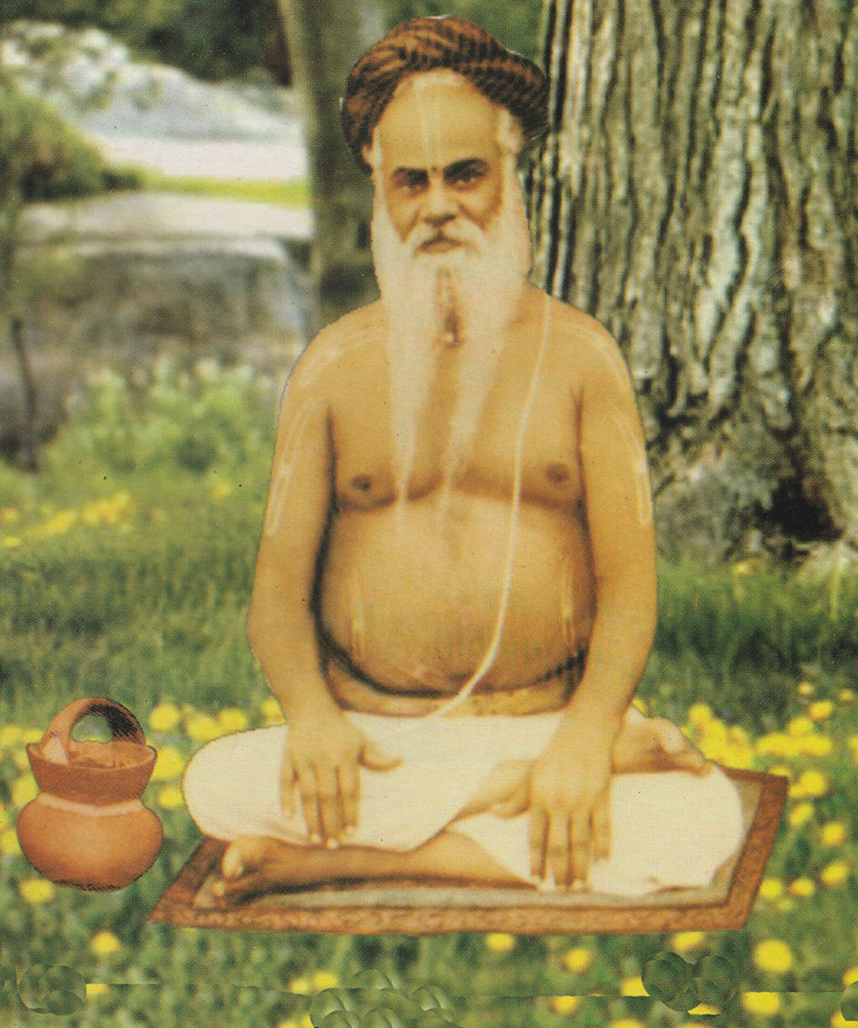

।। ॐ हरिः ।।

व्रजविदेही तथा चतुःसम्प्रदाय के श्रीमहन्त

श्री श्री १०८ स्वामी धनञ्जयदास बाबाजी महाराज

का

जीवन-चरित्र

लेखक

व्रजविदेही चतुःसम्प्रदाय श्री महन्त

श्रीमत् स्वामी रासविहारी दास

काठियाबाबा जी महाराज

❑ प्रकाशक

श्रीकाठियाबाबा चैरिटेबल ट्रस्ट
काठियाबाबा का स्थान
गुरुकुल रोड, पो. वृन्दावन
जिला-मथुरा (उ.प्र.)

❑ **प्राप्ति-स्थान** :

१. **काठियाबाबा का स्थान**
गुरुकुल रोड, वृन्दावन (मथुरा)
२. **काठियाबाबा आश्रम**
सुखचर, जिला चौबीस परगना, पं. बंगाल

❑ द्वितीय संस्करण
1000 प्रतियाँ

❑ मूल्य : **साठ रुपये मात्र**

❑ मुद्रक : सम्राट ऑफसेट वर्क्स
बी-62/5, नारायणा इन्डस्ट्रीयल एरिया
फेस-II, नई दिल्ली-110028

।। श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते ।।

।। श्रीनिम्बार्कमुनीन्द्राय नमः ।।

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य-पीठाधीश्वर

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री "श्रीजी" महाराज

अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, श्रीनिम्बार्कतीर्थ

सलेमाबाद-किशनगढ़ (अजमेर) राज.-३०५८१५

का

मंगलकामनात्मक-शुभाशीर्वाद

इस धराधाम पर जब-जब भी किसी प्रकार की विकृति आती है, तो सर्वनियन्ता श्रीसर्वेश्वर प्रभु स्वयं यहाँ अवतरित होकर किंवा अपने ही नित्य-दिव्य-पार्षदों को या किसी दैवी शक्ति को किसी-न-किसी रूप में इस भूतल पर विशिष्ट मनुज महापुरुष के रूप में सम्प्रेषित करते हैं, जिससे कि उन विकृतियों का परिहार एवं वैदिक-सनातन वैष्णवता का पुनः सम्प्रचार हो। ऐसे ही महापुरुषों में व्रजविदेही-चतुःसम्प्रदाय-श्रीमहन्त श्रीधनञ्जयदासजी काठियाबाबा महाराज 'तर्कतर्कतीर्थ' थे। उनका दार्शनिक-प्रखर वैदुष्य एवं आदर्शमय पावन-जीवन सर्वलोक-मंगलकारी था। सारल्य-दैन्यादि सन्तोचित उनका स्वरूप अत्यन्त गौरवमय एवं प्रेरणादायक था। अपने आराध्य भगवान्

श्रीराधाबिहारी की उपासना में सतत निरत रहते हुए आपने अनेक दार्शनिक ग्रन्थों का प्रणयन किया। श्रीभगवत्सेवा, सन्त-सेवा, गोविप्र-सेवा, शिक्षादान, अर्थदान आदि विविध गुणगण उनके आज भी प्रेरणा के रूप में विद्यमान हैं। सम्पूर्ण विरक्त-वैष्णव-समाज ही नहीं, अपितु समस्त षड्दर्शन में उनकी मान्यता एवं पूर्ण वर्चस्व अनुपम व श्रेष्ठतम रहा है। जब वि.सं. २०१० के प्रयाग कुम्भ में श्रीरामानन्द-सम्प्रदाय के प्रकाण्ड महामनीषी विद्वद्वरेण्य श्रीभागवताचार्यजी महाराज (अहमदाबाद) एवं दार्शनिक सार्वभौम विरक्त शिरोमणि श्रीवासुदेवाचार्यजी महाराज (अयोध्या) का किसी दार्शनिक प्रसंग पर विद्वत्समूह के मध्य विशेष शास्त्र-चर्चा चलने की योजना बनी, जिसमें उन उभय महामनीषियों की शास्त्र-चर्चा में निर्णायक रूप में मध्यस्थता व्रजविदेही चतुःसम्प्रदाय श्रीमहन्त श्रीधनञ्जयदासजी काठियाबाबा महाराज तर्कतर्कतीर्थ ने ही की थी। इस प्रकार आपके अनेक ऐसे गरिमापूर्ण प्रसंग हैं, जिनकी जानकारी के लिए उनके जीवन-चरित-ग्रन्थ का यह प्रकाशन वर्तमान व्रजविदेही चतुःसम्प्रदाय श्रीमहन्त श्रीरासबिहारीदासजी महाराज के द्वारा सम्पादित हुआ है। वस्तुतः इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ से भावुकजनों को निश्चय ही पावन प्रेरणा एवं कर्तव्य-बोध का मार्गदर्शन होगा।

मिति द्वितीय आश्विन शुक्ला ५
रविवार वि.सं. २०५८

श्रीराधासर्वेश्वर शरणदेवाचार्य
जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य
श्री "श्रीजी" महाराज
अ.भा.श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ (सलेमाबाद)

भूमिका

परम योगीवर, त्याग-वैराग के मूर्त्तविग्रह, सरलता की प्रतिमूर्ति, अनन्तश्रेष्ठकर्मों के प्रेरक, दया, त्याग, औदार्य, वैदुष्यादि शुभगुणों के आकर, निम्बार्क-सम्प्रदाय के सुदृढ़ स्तम्भ, श्रीनिम्बार्काचार्य, उनका दार्शनिक मतवाद और साधन-प्रणाली, निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यगण की उपदेशावली, श्रीनिम्बार्क-पद्धति, वेदान्त-कामधेनु-तत्व दीपिका-भाष्य, निम्बार्क-वेदान्त का संक्षिप्त सार, सद्धमतत्त्वदीप, श्रीरामदास काठिया बाबा का जीवन चरित्र, श्रीसन्तदास काठिया बाबा का जीवन चरित्र, श्रीसन्तदास जी की पत्रावली, केशव काश्मीरी भट्ट जी महाराज, श्रीवृन्दावन माहात्म्य और ब्रजपरिक्रमा, अर्द्धरात्रवेदवाद, शरणागत-वत्सल श्री भगवान्, व्यष्टि-समष्टि जीवन में द्वैताद्वैत-सिद्धान्त की आवश्यकता, श्रीगुरुपूर्णिमा, प्रभृति अनेक बँगला, हिन्दी एवं अँग्रेजी ग्रंथों के प्रणेता, श्री सन्तदास निम्बार्क दर्शन समिति और श्री श्री रामदास काठिया बाबा ग्रंथागार आदि अनेक समिति तथा ग्रंथागारों के संस्थापक, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, त्रिपुरा, आसाम आदि प्रदेशों में अनेक निम्बार्क-आश्रम और काठिया-बाबा के स्थानों के निर्माता तथा संचालक, अखण्डब्रह्मचर्य, तपोमूर्ति, अनन्त श्री विभूषित श्री स्वभूरामदेवाचार्यपरम्परानुवर्ती आचार्य प्रवर, ब्रजविदेही महन्त एवं चतुसम्प्रदायी श्रीमहन्त स्वामी धनञ्जयदास काठियाबाबा जी महाराज तर्क तर्क व्याकरण तीर्थ गुरुकुल मार्ग वृन्दावन का पूत जीवन चरित्र एक सम्पूर्ण शास्त्र का भाष्य है। उनकी तपस्या, लोक कल्याणकार्यावली, विलक्षण ज्ञान-शक्ति, साधु-सन्त की सेवा-परायणता एवं व्यवहार-

कुशलता, सभी को प्रभावित कर रखा है। आप श्री के आदर्श चरित्र का अनुध्यान करने से यह देव दुर्लभ मानव जीवन आदर्शान्वित बन सकता है। आपकी अगाध गुरुनिष्ठा थी। श्री गुरुजी की अनुपम कृपा से आपश्री थोड़ी उम्र में ही अशेष अलौकिक शक्ति के अधिकारी बने। जीवन चरित्र में वर्णित दिव्य घटनायें ही इसका प्रमाण हैं। आपमें असाधारण वैदुष्य तथा कार्य-क्षमता थी। अनेकानेक पुस्तकें लिखकर तथा मठमन्दिरों की स्थापना कर विश्ववासियों को मुग्ध कर दिया। आपश्री त्याग, वैराग्य के जीवन्त विग्रह थे। निम्बार्क-आश्रम की करोड़ों की सम्पत्ति स्वेच्छा से त्यागकर विश्व-समाज में श्रीमद्‌भगवतगीता प्रतिपादित दिव्य त्यागादर्श को स्थापित किया। आपश्री की गुरुभक्ति, जीव-सेवा भावना, तपःसाधना, नैतिकता, सात्विकी प्रवृत्ति, गुरुजनों में श्रद्धा, इष्टनिष्ठा, ग्रन्थलेखनकुशलता, सनातन धर्म-प्रसार-प्रचार-प्रविणता आचारचरणनिष्ठा, श्रीश्रीगुरुपरम्पराशोभावर्द्धनकुशलता, शास्त्र पठनपाठन-चतुरता, विद्वत्सेवाभावना, ग्रंथप्रतिपादनशैली, प्रभृति शास्त्रनिष्ठगुण धर्मानुरागी मानव मात्र के लिए अनुसरणीय एवं अनुकरणीय है।

निर्म्बाकीय शरणागतियोग तथा गुर्वाज्ञानुवृत्तियोग के आपश्री ज्वलन्त निदर्शन थे। आपश्री की समर्पण भावना विलक्षण है। जीवन चरित्र के पूत श्रीगुरुशिष्य सम्बन्धी घटनाएँ ही इस सत्यता का साक्षी है। आपश्री के पुनीत जीवन चरित्र के अनुशीलन ही महान् सत्संग है। सत्संग से ही मानब को परम शान्ति मिलती है। ऐसे महापुरुषों के सत्संग से अशान्त जीवनयात्रा शान्ति को प्राप्त करने में सफल हो सकती है।

सारांश यह है कि श्री श्री बाबाजी महाराज का पूत जीवन चरित्र एक सत्पथ निर्देशक द्वैताद्वैतात्मक शास्त्र ही है। शास्त्रों के सम्यक् चिन्तन से जो दिव्यज्ञान तथा मार्ग-दर्शन हमें प्राप्त हो सकते

हैं, इस शास्त्रोपम जीवन-चरित्र के अनुचिन्तन से वही सत्-शिक्षा व मार्ग-दर्शन उपलब्ध हो सकते हैं। यह जीवन चरित्र श्री श्री बाबाजी महाराज की विलक्षण अनुभूतियाँ, दिव्यकार्यकलाप एवं साधनलब्ध शास्त्रीय विधि-निषेधात्मक अनुपम उपदेशों का सम्यक् संकलन है। अतएव ऐसे अद्वितीय साधननिष्ठ जीवन-चरित्र का सम्यक् अनुध्यान करके, तदुपदिष्ट अमृतमय उपदेशों को इस जीवन में उतारने की चेष्टा करें तो अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी। मानव-जीवन धन्य होगा। जनता जनार्दन परम सत्संग-लाभ से लाभान्वित होंगे।

इस ग्रन्थ-लेखन-कार्य में कविराज ब्रजदुलाल गोस्वामी महोदय वृन्दावन ने बड़ी सहायता की। पण्डित प्रोफेसर श्रीप्रेमनारायण "श्रीवास्तव" जी ने प्रूफ-संशोधन तथा सत् परामर्शादि देकर बहुत ही सहयोग दिया। श्रीराधासर्वेश्वर भगवान् एवं बाबाजी महाराज जी इन दोनों महानुभावों का परममंगल-विधान करें, यही मंगलमयी कामना है।

श्रीमती शीला घोष तथा उनके भाइयों ने इस ग्रन्थ-प्रकाशन-कार्य में विशेष आर्थिक सहायता की। श्रीभगवत्कृपा से उनका तथा उनके परिवार का परम कल्याण हो, यही अभ्यर्थना है।

कार्तिक शुक्ला पंचमी — शुभचिन्तक इति
२० नवम्बर २००१ **श्रीरासबिहारीदास काठियाबाबा**

'श्रीजी'

वन्देमहापुरुष ते चरणारविन्दम् !

(डॉ० प्रेमनारायण श्रीवास्तव, पी-एच.डी.; डी.लिट्.)

सान्ता-महान्तो निवसन्ति-सन्तो वसंतवल्लोक हितं चरन्ताः।
तीर्णा स्वयं भीम भवार्णवंजनाः नहेतु नान्यानपि तारयन्ताः।।

'अर्थात् सन्त-महानुभाव इस लोक में वसन्त की भाँति आते हैं, वसन्त की भाँति रहते हैं और वसन्त की ही भाँति सम्पूर्ण लोक में महँकते हुए सर्वलोक का कल्याण करते हैं। वे स्वयं तो जीवन-मुक्त होते ही हैं, इस भयंकर-भवाटवी में भटके हुए जीवों को भी निर्हेतुकी मुक्ति का कल्याणकारी मार्ग प्रशस्त कर जाते हैं।'

ऐसे ही सन्त-महापुरुषों में अनन्त श्रीविभूषित-जगद्गुरु-निम्बार्काचार्य श्री स्वभूरामदेवाचार्य-परम्परानुवर्ती व्रजदूलह श्रीचतुर-चिन्तामणि देवाचार्य (श्रीनागाजी महाराज) पाद-पद्माश्रित एवं परम-तपोनिष्ठ, परम-वीतरागी, परमहंस श्री स्वामीरामदास काठिया बाबाजी महाराज-पाद-पीठादिपति श्रीस्वामी संतदास काठियाबाबा जी महाराज-चरणाश्रित व्रजविदेही-चतुःसम्प्रदाय-श्रीमहन्त श्री स्वामी धनञ्जयदास काठिया बाबाजी महाराज 'तर्क-तर्क-तीर्थ' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आपका जन्म पश्चिम बँगाल के बाँकुड़ा-जनपद में विष्णुपुर-मण्डल के 'भड़ा'-ग्रामस्थ चक्रवर्ती-ब्राह्मण परिवार में कार्तिक शुक्ला ५ वि.सं. १९५८ शनिवार को प्रातः ६ बजे हुआ था। बाल्यकाल में ही

अनेक गुण आपमें दृष्टिगोचर होते थे तथा घर में ही श्रीराधामाधव का मन्दिर होने से पूर्व-संस्कार से आपके मन में श्रीराधाकृष्ण की भक्ति जाग्रत हो उठी।

कहा जाता है कि महापुरुषों का जीवन संघर्ष से परिपूर्ण होता है। हमारे पूज्यपाद बाबाजी महाराज का जीवन भी संघर्ष से पृथक् नहीं कहा जा सकता। बाल्यकाल से लेकर जीवन-पर्यन्त आप नाना प्रकार के संघर्षों से जूझते रहे, पर क्या मज़ाल कि आप क्षणभर के लिए भी कभी विचलित हुए हों ! जिस प्रकार स्वर्ण को धधकती अग्नि में तपाने पर वह चमक उठता है, ऐसे ही पूज्य बाबाजी महाराज संघर्ष की अग्नि में तपकर कुन्दन की भाँति देदीप्यमान हो उठे। वे महामानव की उस कोटि में पहुँच गये, जहाँ से सारा संसार उन्हें वासुदेवमय दिखाई देने लगा। पूर्वजन्मों के संचित पुण्य-संस्कार से प्राप्त परमगुरुदेव श्री स्वामी रामदास काठियाबाबा और सद्गुरुदेवश्री स्वामी सन्तदास काठियाबाबा जी महाराज की अनुकम्पा से उन्हें जीवन का वह रहस्य समझ में आ गया था, जो सामान्य-जन को अत्यन्त दुर्लभ होता है। गो० तुलसीदासजी ने मानस की एक ही चौपाई में मानव-जीवन के उस रहस्य को प्रकट कर दिया है –

'देहे धरे को फल यह भाई।
भजिये राम सब काम बिहाई।।'

- मानस

यहाँ 'काम-बिहाई' से केवल वेद-निषिद्ध कर्म-त्याग की ओर इंगित किया गया है, वेद-विहित कर्म-त्याग की बात यहाँ नहीं कही गई है। पूज्य बाबाजी महाराज को भी सद्गुरुदेव की कृपा से यह दृढ़ निश्चय हो गया था कि मानव-देह एक मात्र भगवद्भजन-ध्यान व चिन्तन के लिए प्राप्त हुई है; अन्य किसी प्रयोजन के लिए नहीं। जो

प्राणी मानव-देह के करणीय-कर्तव्य को त्यागकर, अकरणीय (सांसारिक) कृत्यों में समय नष्ट करता है, उसका उद्धार कदापि संभव नहीं है। उनकी दृष्टि में यह संसार अपार दुःखों से ओत-प्रोत है। इससे उद्धार (मोक्ष) प्राप्तकर लेना ही मानव का एकमात्र कर्तव्य है। वे प्रायः इस पुराणोक्त-सूक्ति को बार-बार दुहराते रहेत थे–**'दुर्लभो मानुषो देहो, देहीनां न पुनः पुनः।'** पूज्य बाबाजी महाराज इस सूक्ति-वाक्य को भी अपने उपदेशों में प्रायः बोलते थे –

'गुरुमुखी सो अन्तर्मुखी, मनमुखी सो बहिर्मुखी।'

अर्थात् जो शिष्य श्रीगुरुदेव के शरणागत होकर सद्-असद् का विचार किए बिना उनके प्रत्येक उपदेश का तत्काल पालन करता है, उसे अन्तर का अर्थात् हृदयस्थ-आत्मा व परमात्मा का सारा रहस्य तत्काल समझ में आ जाता है और जो गुरु-वचन को महत्त्व न देकर अपने मन के मुताबिक (मनमुखी होकर) कार्य करता है, उसे बाहरी (सांसारिक) झँझावात का सतत सामना करना पड़ता है।

उक्त सूक्ति के अतिरिक्त वे यह सूक्ति भी प्रायः अपने शिष्यों के बीच कहते रहते थे –

'मनमुखी गँवारा, गुरुमुखी भगवत्प्यारा।'

'अर्थात् जो मनमुखी होकर चलता है, वह पूरा गँवार है और जो गुरुमुखी होकर चलता है, वह प्रभु का परम प्रिय पात्र होता है।'

पूज्य बाबाजी महाराज कहा करते थे कि गृहस्थी के गोरख-धंधे में फँसे मानव को शीघ्रातिशीघ्र सद्गुरु की प्राप्ति के लिए सतत चेष्टारत रहना चाहिए। वे मानवमात्र का सर्वप्रथम व सबसे बड़ा कर्तव्य यथाशीघ्र वैदिक-वैष्णव-सम्प्रदायनिष्ठ आचार्य-सद्गुरु की शरणग्रहण कर पंच-संस्कार (कंठी, मंत्र, तिलक, छाप व दासनाम) युक्त वैष्णवी-दीक्षा प्राप्त कर लेना ही मानते थे। इससे भगवत्-भक्ति का मार्ग प्रशस्त हो

जाता है। वे स्वयं चतुर्वेदिक (सनक, श्री, ब्रह्म, रुद्र) वैष्णव-सम्प्रदायों में अतिप्राचीन अनादिवैदिक सत्सम्प्रदाय श्रीसनक अथवा श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के श्रीस्वभूरामदेवाचार्य व श्रीव्रजदूलह-चतुरचिन्तामणि श्रीनागाजी महाराज की परम्परा में श्रीस्वामी सन्तदासजी काठिया बाबाजी महाराज द्वारा विरक्त वैष्णवीदीक्षा-प्राप्त परमनैष्ठिक वीतरागी संत थे। परमपूज्य श्री स्वामी सन्तदासजी महाराज ने सर्वगुण-सम्पन्न देखकर उन्हें न केवल अपना उत्तराधिकारी बनाया, वरन् चतुःसम्प्रदायी-खालसा का 'श्रीमहन्त' व 'व्रजविदेही' जैसे महान् पदोंपर भी अभिषिक्त किया। पूज्य बाबाजी महाराज ने जीवन-पर्यन्त अपने इन उत्तरदायित्वों का प्राणपण से पालन किया। व्रजचौरासी कोस की परिक्रमा का दायित्व भी उन्होंने जीवन-पर्यन्त निभाया।

व्यक्तित्व —

पूज्य बाबाजी महाराज का व्यक्तित्व बड़ा ही मनोरम व आकर्षक था। एक महान् संत के सर्वलक्षण उनमें विद्यमान थे। उनका मध्यम कद का सुगठित शरीर, चौड़ा वक्ष, आजानु बाहु, गोपीचन्दन का उर्ध्व-पौण्ड्र-तिलकयुक्त उन्नत ललाट, करुणा व प्रेम से परिप्लुत सुन्दर विशाल नेत्र, सिर पर वट-वृक्ष की जड़ों की भाँति लम्बी-लम्बी जटाओं का विशाल जटाजूट, कटि में काष्ठ-मेखला (आड़बन्द) व काष्ठ-कौपीन, शरीर के द्वादश अंगों में शोभायमान गोपीचन्दन के द्वादश तिलक, भुजमूलद्वय पर शोभायमान शंख-चक्र की सुन्दर छाप, हस्त में सुशोभित काष्ठ-कमंडल—ऐसा था उनका अद्भुत-आकर्षक व्यक्तित्व ! एक बार दर्शन कर लेने पर बार-बार दर्शन करने का मन करता था।

पूज्य बाबाजी महाराज वैष्णवीदीक्षा-प्राप्त अपने प्रत्येक गृहस्थ-विरक्त वैष्णव-शिष्य को शरीर पर तिलक, छाप व कंठी-माला निरन्तर धारण किए रहने की सलाह सदा देते रहते थे। उनका कहना

था कि इनके धारण करने से अनेक आधि-व्याधियों का शमन होता है और यम के दूतों से भी छुटकारा मिल जाता है। इस वेष को वे भगवान् का ही वेष मानते थे। इस सम्बन्ध में कालूभगत का यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है –

'बानों दीन दयाल कौ, तिलक छाप अरु माल।
जम डरपै कालू कहै, भय मानै भूपाल।।'

पूज्य बाबाजी महाराज ने अपने जीवनकाल में देश-विदेश में अनेक मठ-मन्दिरों व विभिन्न प्रकार की संस्थाओं की स्थापना की, जो उनके वर्तमान पूर्ण सुयोग्य शिष्य व उत्तराधिकारी व्रजविदेही-चतुःसम्प्रदायी श्री महन्त स्वामी श्री रासबिहारी दास काठियाबाबा जी महाराज की देखरेख व संरक्षकत्व में आज भी सुचारु रूप से चल रही हैं। पूज्य बाबाजी महाराज निःसन्देह त्याग, तपस्या, वैराग्य, शम, दम, शौच, क्षमा, सारल्य, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता आदि महान् गुणों से संगुम्फित थे। वे अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। वैष्णव-धर्म व दर्शन से सम्बन्धित उन्होंने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन कर भक्ति-साहित्य की अक्षुण्ण सेवा की है। उनके हजारों की संख्या में गृहस्थ-विरक्त वैष्णव-शिष्य हैं, जो आज भी उनके परम कृपालुदयालु स्वरूप का स्मरण कर अश्रुप्रवाह किए बिना नहीं रहते। पूज्यबाबा महाराज ने अपने जीवनकाल में वृन्दावन से 'सुदर्शन' व कोलकाता से 'वासुदेव' नामक मासिक-पत्रों का संचालन कर देश-विदेश में श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय का अक्षुण्ण प्रचार-प्रसार किया है। 'वासुदेव' मासिक-पत्र आज भी संचालित है।

इन पंक्तियों के लेखक पर पूज्यबाबा महाराज की अपार कृपा थी। जब मैंने सन् १९७५ ई. में पी-एच.डी. उपाधि के लिए लिखा गया अपना शोध-प्रबन्ध (निम्बार्क-सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य) उन्हें दिखाया, तो वे आनन्दित हो उठे और पीठ ठोककर उन्होंने मुझे सतत

साहित्य-सेवी होने का आशीर्वाद प्रदान किया; जिसके फलस्वरूप आज भी साम्प्रदायिक साहित्य-सेवा में सतत संलग्न हूँ। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि साम्प्रदाय के साहित्य के प्रति जो उच्च भावना पूज्य बाबाजी महाराज की थी; ठीक वैसी ही भावना उनके वर्तमान उत्तराधिकारी सर्वश्री स्वामी रासबिहारीदास काठियाबाबा जी महाराज में भी विद्यमान है।

तिरोधान —

बंगभूमिरत्न, परमकारुणीक, वैष्णव-श्रेष्ठ, परमयोगी, सनातन-वैष्णवधर्मानुयायी, हिन्दी-संस्कृत-अँग्रेजी-बँगला प्रभृति भाषा-निष्णात, विविध ग्रन्थ-प्रणेता, सनातन-वैष्णव-धर्मोपदेशक, विविध मठ-मन्दिर-संस्थान-संस्थापक, वासुदेवसर्वमिदंभावापन्न, श्रीराधाकृष्णा-चरणारविन्द-मकरन्दमधुप, बालब्रह्मचर्यनिष्ठ, परम वीतरागी, श्रीसर्वेश्वरप्रभु-अष्टयाम सेवा-निरत, अखिल भुवमण्डलस्थ-तीर्थाटनकर्ता, व्रजरजकणाभिलाषी-वृन्दावन-भूमि-वास्तव्य, अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीस्वभू-रामदेवाचार्य-पाद-पद्माश्रित-व्रजदूलह-चतुर-चिन्तामणि-श्रीनागाजी महाराज-परमानुयायी व्रजविदेही-चतुःसम्प्रदायी श्रीमहन्त स्वामी श्रीधनञ्जय-दास जी काठिया बाबाजी महाराज का तिरोधान कलिमल-नाशिनी-भक्ति-भागीरथी-गंगातटवर्ती सुखचर-आश्रम में दिनांक ११.०५.१९८३ को ८२ वर्ष की अवस्था में हुआ। आज ऐसे महापुरुष के जन्म शताब्दी-महामहोत्सव के पावन-पर्व पर उनके श्रीचरणारविन्दों में दास का कोटिशः प्रणाम !

- डॉ. प्रेमनारायण श्रीवास्तव 'डी.लिट्'
आचार्य तथा अध्यक्ष
स्नातकोत्तर-हिन्दीशोधविभाग
आई.ओ.पी. शोधकेन्द्र, वृन्दावन (उ.प्र.)

'भक्तमालकुटीर'
मोटेगणेशजी, वृन्दावन
दि. २५.१०.२००१

श्री श्रीगुरु वन्दना

काल वन्धन भय खण्डन हे,
पातकी जनगण पावन हे।
मम मानस चाहे सदा तव चरणं,
हे गुरो ! देहि तव पद शरणम्।।१।।

मन ध्वान्त विनाशन भाषण हे,
निवारण शमन शासन हे।
मम मानस चाहे सदा तव चरणम्,
हे गुरोः ! देहि तव पद शरणम्।।२।।

सौम्य मूरति चिर सुन्दर हे
अनुगत जन चित दुःख हर हे।
मम मानस चाहे सदा तव चरणं
हे गुरो ! देहि तव पद शरणम्।।३।।

जटाजूट विभूषण सिरपर हे,
योगी वर साक्षात् शंकर हे।
मम मानस चाहे सदा तव चरणम्,
हे गुरो ! देहि तव पद शरणम्।।४।।

सूरि-अरि वन्दित श्रीचरण हे,
भय नाशन भक्त रंजन हे
मम मानस चाहे सदा तव चरणं,
हे गुरो ! देहि तव पद शरणम्।।५।।

विधि विष्णु महेश्वर तुम गुरु हे,
सुर वर वान्छित सुरतरु हे।
मम मानस चाहे सदा तव चरणम्,
हे गुरो ! देहि तव पद शरणम्।।६।।

ब्रजविदेही ब्रजेश्वर प्रिय अति हे,
वृन्दावनधाम चिर ज्योति हे।
मम मानस चाहे सदा तव चरणम्,
हे गुरो ! देहि तव पद शरणम्।।७।।

श्रीराधाबिहारी ताप हरण हे,
तव प्रेम नवरूप धारण हे।
मम मानस चाहे सदा तव चरणम्,
हे गुरो ! देहि तव पद शरणम्।।८।।

तव गुण जनगण चितहारी हे,
प्रणत जन में सदा शुभकारी हे।
मम मानस चाहे सदा तव चरणम्,
हे गुरो ! देहि तव पद शरणम्।।९।।

मम चित निशिदिन चंचल हे,
करुणा कणा तव सम्बल हे।
मम मानस चाहे सदा तव चरणम्,
हे गुरो ! देहि तव पद शरणम्।।१०।।

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

प्रथम अध्याय- आविर्भाव व बाल्यावस्था, छात्र-जीवन, वैराग्य, दीक्षा तथा गुरुशक्ति का प्रभाव, शास्त्र-अध्ययन, शिवपुर-आश्रम प्रतिष्ठा में प्रतिनिधित्व, श्रीगुरु पूजा, श्रीश्रीरामदास काठियाबाबा के दर्शन, श्रीगुरुजी की आज्ञा-पालन। १७-८६

द्वितीय अध्याय- आश्रम के महन्त पद की प्राप्ति, कुम्भ में शास्त्रार्थ, विष्णुयज्ञ में भाषण, हरिद्वार-कुम्भ में श्रीमहन्ताई पद की प्राप्ति, प्रयागकुम्भ-नासिक-कुम्भ तथा उज्जयिनी कुम्भ में श्रीबाबाजी महाराज, श्री "श्रीजी" महाराज का प्रसंग, महान् व्यक्तित्व तथा अलौकिक शक्ति का प्रभाव। ८७-१२१

तृतीय अध्याय- प्रतिकूल भगवत्कृपा, निरवच्छिन्न भजन, श्रीमहाविष्णु यज्ञ में श्रीश्रीबाबाजी महाराज, युगल-विग्रह-दग्ध, नयी विग्रह की प्रतिष्ठा, श्रीनिम्बार्क-आश्रम-त्याग, अखण्ड भजन, प्रयागकुम्भ में श्रीबाबाजी महाराज, सम्प्रदाय-प्रचारार्थ आश्रम निर्माण, दिव्य साधना का प्रभाव तथा उसका विस्तार। १२२-२१०

द्वितीय खण्ड

प्रथम अध्याय- तीर्थ भ्रमण, देश-विदेशों में आश्रम निर्माण, विभिन्न संस्थाओं में भाषण, आश्रम में महन्ताई पद-प्रदान, प्रयाग कुम्भ में बाबाजी महाराज एवं श्रीमहन्ताई पद-प्रदान, सद्गुरुरूप में अलौकिक लीला। २११-२७३

द्वितीय अध्याय- विविध पत्रिका-प्रकाशन, श्रीसन्तदास-निम्बार्क-दर्शन-समिति का निर्माण, विभिन्न जनमंगलात्मक कार्यावली, स्मारिका तथा ग्रन्थ विमोचन, नागरिक अभिनन्दन। २७४-२९२

तृतीय अध्याय- दिव्य उपदेश, परमधामवास, अनुपम श्रद्धाञ्जलियाँ। २९३-३२०

श्री श्री १०८ स्वामी

धनञ्जयदास काठिया बाबाजी महाराज

का

जीवन-चरित्र

प्रथम अध्याय

आविर्भाव व बाल्यावस्था

आविर्भवन् कार्त्तिकपुण्यमासे
लोकार्त्तदूरीकरणाय योगी।
यो ब्रह्मचारी जनचित्तचारी
धनञ्जयाचार्यवरः स जीयात्।।

आविर्भाव-तिरोभावौ यल्लीलावशगौ सदा।
आचार्यपदवाच्यान् धनञ्जयमहं भजे।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

बंगदेश के बाँकुड़ा जिले में बिष्णुपर सब डिवीजन (उपमण्डल) के अन्तर्गत बी. एन. रेलवे के बिष्णुपर नामक स्टेशन से तीन कोस दूर उत्तर पूर्व कोण (दिशा) की ओर "भद्र" नाम का एक खण्डग्राम

(बड़ागाँव) है। यह गाँव पहले धन-जन से परिपूर्ण समृद्ध शाली गाँव था। परम विद्वान् किसी साधक कवि ने "भड़ा" गाँव के विषय में अतिसुन्दर कहा है-

वंगप्रदेश इह भाति भड़ाभिधानो
ग्रामोमहान् भुवि सदा नयनाभिरामः।
योऽयं स्वजन्मवशतस्तमलञ्चकार
सोऽयं धनञ्जयमुनिर्नितरामभीष्टः।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

इस समय गाँव में एक हाईस्कूल, एक एम. ई. स्कूल, एक चतुष्पाठी और एक नेत्र चिकित्सालय है। हर मोहल्ले में बहुत से शिव-मन्दिर विद्यमान हैं। 'चक्रवर्ती मोहल्ले' में पन्द्रह शिव-मन्दिर हैं। इनके अलावा इस मौहल्ले में 'राधामाधवजी' का पुराना तथा नया दो मन्दिर, नारायण के दो मन्दिर, रासमंच तथा होली का मंच है। ये सभी मन्दिर चक्रवर्ती-वंश के पूर्वजों के द्वारा स्थापित होकर अब भी उनकी पूर्व कीर्ति के साक्षी के रूप में खड़े हैं।

परमभक्त-वैष्णव इस चक्रवर्ती-वंश में बंगाब्द १३०८ कार्तिक के महीने की ३० तारीख शनिवार (१९०१ नवम्बर, कार्तिक शुक्ला पंचमी) प्रातः ५/६ घड़ी के समय (अनुमानतः ८ बजे) ब्रज-विदेही महन्त श्री श्री १०८ स्वामी धनंजय दास बाबाजी महाराज ने जन्म ग्रहण किया।

उस दिन कार्तिक-पूजा तथा संक्रान्ति थी। शुक्ल पंचमी तिथि को धनु राशि तथा धनु लग्न में वह भूमिष्ठ हुए थे। उनकी जन्म कुण्डली में दिखायी पड़ता है कि लग्न में पाँच ग्रहों के समावेश होने के कारण प्रबल प्रव्रज्या योग था।

इस जन्म कुण्डली के विचित्र ग्रह-सन्निवेश का विचार करके भृगु-संहिता ने जातक के धर्म, कर्म तथा शरीर के सम्बन्ध में जो फलादेश किया है, उसका सारांश संक्षेप में नीचे उद्धृत किया गया है-

धर्मात्मा धर्मसंबुद्धिः ईशभक्तिः रतिः सदा।
दानपुण्ये रतिश्चैव दीनानां पालनं चरेद्।।
पूर्णयोगः भवेत् सिद्धिः दिव्यचक्षुः प्रजायते।
आत्मज्ञानं प्रजायते दिव्यज्योतिर्भविष्यति।।
सर्वशक्तिः प्रजायते विजयी सर्वकर्मसु।
इच्छामृत्युः महाप्राज्ञ ! योगमध्ये विलीनस्तु।।
परम हंस-समाव्यातिः पूर्णायुः रस-सर्पकी।
ब्रह्मलीनः भवेदात्मा पुनर्जन्म न विद्यते।।

अर्थात् धर्मात्मा, धर्म-संबुद्धि, ईश्वर के प्रति भक्ति-रति (नाम में रुचि) जन्मेगी, (चित्त की मलिनता दूर होकर देव-द्विज में भक्ति-श्रद्धा उत्पन्न होगी। धर्म-कर्म में मन लगेगा) दान-पुण्य आदि कार्यों में रति की वृद्धि होगी, दरिद्रों के सेवक-पालक होंगे, पूर्णयोग घटेगा, सिद्धि-लाभ होगा, दिव्य चक्षु उन्मीलित होंगे (खुलेंगे), आत्म-ज्ञान उत्पन्न होगा, (भगवत्कृपा से दिव्य ज्ञान प्राप्त होगा), सभी प्रकार की शक्तियाँ प्रकाशित होंगी, सभी कार्यों में विजयी होंगे, इच्छा मृत्यु होगी, हे महाप्राज्ञ, (तन्त्र-अनुष्ठान में) योग में विलीन होंगे, परम हंस की ख्याति-प्राप्ति होगी। पूर्णायु ८६ वर्ष की होगी। आत्मा परम ब्रह्म में लीन होगी, (पूर्ण मुक्ति प्राप्त होगी) पुनर्जन्म नहीं होगा। उपरोक्त सभी दिव्य गुण तथा दिव्य लक्षण श्रीस्वामी धनञ्जयदास जी काठियाबाबा जी महाराज में विद्यमान थे। ऐसा समावेश अन्यत्र दुर्लभ है।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज के पूर्वाश्रम का नाम श्री धीरेन्द्र मोहन चक्रवर्ती था। उनके पिता स्व. पूर्णचन्द्र चक्रवर्ती तथा माँ स्व. क्षुदुमणि देवी की यह पाँचवीं सन्तान एवं चौथे पुत्र थे। उनके पिता-माता के छह पुत्र तथा पाँच पुत्रियाँ हुई थीं, जिनमें सबसे छोटी पुत्री की सूतिकागार में ही मृत्यु हो गयी।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज की उम्र जब पाँच वर्ष की थी, तब एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना घटी। वह मकान की दूसरी मंजिल पर शयन करते थे। उस दो मंजिले पर घर से लगा हुआ श्री राधा माधव का मन्दिर है। श्री श्री बाबाजी महाराज ने एक दिन शेष रात्रि को स्वप्न में देखा कि उनके माता-पिता की प्रार्थना पूरी करने के लिए उनके कुलदेवता, पूर्वपुरुषों के द्वारा प्रतिष्ठित विग्रह साक्षात् राधामाधव ने ही उनके रूप में इस परिवार में जन्म ग्रहण किया है, अर्थात् श्रीश्रीबाबाजी महाराज ही साक्षात् राधामाधव हैं–तं सन्तं ब्रजनन्दन प्रियतमं धीरेन्द्रवेशं नुमः। लेकिन घर में यह बात उन्होंने कभी किसी को नहीं बतायी, क्योंकि यह उनको अत्यन्त अद्‌भुत मालूम पड़ता।

श्रीश्रीबाबाजी की पाँच या साढ़े पाँच वर्ष की अवस्था में विद्यारम्भ हुआ। श्री श्रीराधामाधव मन्दिर के बरामदे में बैठकर पुरोहित जी ने पट्टी-पूजन कराया था। विद्यारम्भ होने के कुछ दिन बाद करीब छह साल की उम्र में उनको गाँव की पाठशाला में भर्ती किया गया, चक्रवर्ती मोहल्ले में ही पाठशाला थी, पाठशाला में वह दो पण्डितों से पढ़े थे। एक पण्डित का नाम था पूर्णचन्द्र रजक। वह उनके गाँव के ही थे। अक्रूर चन्द्र घोष १९६१ ई. में श्रीश्रीबाबाजी महाराज को विष्णुपुर ले जाने पर इन पण्डित महोदय ने तारीख १०/७/६१ को उनसे विशेष अनुरोधकर दीक्षा ली थी। उनकी उम्र तब ८० वर्ष से ऊपर होगी, नाम के दूसरे पण्डित थे। वह जात के ग्वाले थे। उनका घर करीब दो कोस दूर था। अक्रूर नामक पण्डित जी नॉर्मलि परीक्षा उत्तीर्ण थे तथा अच्छी गणित जानते थे। वह बच्चो को खूब पीटते थे।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज बचपन से ही किसी गलत संगत में नहीं पड़े थे तथा उनके मुख से कभी कोई गलत बात नहीं निकली,

यदि कभी कोई बुरी आलोचना करता तो उनको सहन नहीं होती थी; वह उसी क्षण वहाँ से चले जाते थे।

बचपन में उनकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी। कोई भी लड़का उनके साथ मुकाबला नहीं कर सकता था, कोई भी प्रश्न क्यों न हो एक अलौकिक शक्ति मानो उनका उत्तर देने में सहायता करती थी। पाठशाला में या माइनर स्कूल में किसी कठिन प्रश्न का उत्तर जब कोई लड़का नहीं दे पाता था, तब सबसे अन्त में वह प्रश्न उनसे पूछा जाता था एवं वह उसका सही उत्तर देते थे।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज जब माइनर स्कूल में पढ़ रहे थे, उसी समय उनके बड़े भाईसाहब ने मैट्रिकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण कर कुछ समय उस स्कूल में अध्यापन कार्य किया था। एक दिन सभी लड़कों की बुद्धि परीक्षा हुई, उसमें पाठ्यपुस्तक का कोई भी प्रश्न नहीं था, जिन प्रश्नों का उत्तर कोई भी लड़का नहीं दे सका था, उनका उत्तर भी वह अनायास ही देने लगे। यह देखकर उनके बड़े भाईसाहब यह देखने के लिए कि उनकी बुद्धि की तीक्ष्णता कितनी है, खूब कठिन प्रश्न पूछने लगे। उनके इन सभी प्रश्नों के उत्तर भी उन्होंने तुरन्त ही दिये थे।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज कक्षा की परीक्षा में हमेशा प्रथम आते थे। पाठ्यपुस्तकों के अलावा और कोई दूसरी पुस्तक वह नहीं पढ़ते थे। बचपन में स्कूल में पढ़ने के साथ-साथ कबड्डी खेलते थे। खेल में कोई भी लड़का उनकी शक्ति के आगे टिक नहीं पाता था। शारीरिक ताकत में भी अपने हमउम्र लड़कों से कमजोर नहीं थे, बल्कि अच्छे थे।

उनके बचपन के पढ़ाई के तथा खेल के साथी अपने ही गाँव के रहने वाले श्री युत भूदेवचन्द्र आचार्य महोदय ने उनके बचपन की कुछ घटनाओं का वर्णन किया है।

उन्हीं की भाषा में उन घटनाओं का वर्णन यहाँ किया जा रहा है। "धीरेन्द्र मोहन ही वर्तमान में श्री श्री धनंजय दास जी के नाम से जाने जाते हैं। वह मेरे बचपन के मित्र तथा सहपाठी हैं।" बचपन से ही वह मुझसे प्रेम करते थे, वह बचपन से ही अत्यन्त मेधावी थे। चाहे पढ़ाई-लिखाई हो या खेलकूद, सभी क्षेत्र में वह हमारे अग्रणी थे। कक्षा में ऐसा कोई भी छात्र नहीं था, जो धीरेन्द्र मोहन को पढ़ाई लिखाई में पराजित करता, प्रतिवर्ष प्रथम पुरस्कारपर उसी का अधिकार रहता था। उनका प्रधान गुण था कि वह कभी झूठ नहीं बोलते थे। कितने ही अपराध क्यों न हों जायें वह सत्य बोलते थे। इसी लिए स्कूल के सब अध्यापक उनको बहुत प्यार करते थे। साथियों में कोई अगर झूठ बोलता था तो वह चिढ़ जाते थे तथा गुस्सा दिखाकर कुछ समय तक उससे बातचीत बन्द कर देते थे। बचपन में बहुत सारे बालक इकट्ठे होकर फिंटुल (एक प्रकार का खेल, जिसमें रस्सी बाँधकर पत्थर के टुकड़े को ऊपर आसमान की ओर फेंका जाता है) खेलते वक्त हाथ से फिंटुल फिसलकर धीरेन्द्र मोहन की आँख में (चोट) लग गयी और खून की धार बह निकली। आँख खराब हो जाती, लेकिन अच्छी चिकित्सा के कारण उनकी आँख ठीक हो गयी। अभी तक उस चोट का निशान उनकी बाँयी आँख के नीचे मौजूद है। उस चोट लगाने वाले बालक को धीरेन्द्र मोहन के रिश्तेदार सजा देना चाहते थे, लेकिन धीरेन्द्र मोहन ने स्वयं उस बालक को क्षमा करने का अनुरोध किया तथा कहने लगे कि मेरे कर्म-फल के कारण यह सब हुआ है, बालक के मुँह से इस तरह की बातें सुनकर सब लोग अवाक् रह गये तथा उस चोट लगाने वाले बालक को माफ कर दिया। शैशव-काल से ही धीरेन्द्र मोहन जितने बुद्धिमान थे, उतने ही साहसी थे। बचपन में लंगूर को भगाते वक्त एक बलवान लंगूर ने उन पर हमला कर दिया, आज

भी उनकी दायीं बाँह पर खरोंच का निशान है। तैरने में भी वह खूब कुटाल थे। एक बार वह खड़े-खड़े तैर रहे थे। मैंने नहाने के लिए आकर देखा कि धीरेन्द्र मोहन छाती तक पानी में खड़े हैं, तैरने के लिए छाती तक पानी दीख रहा था, मैं तैरना नहीं जानता था। जैसे ही तैरने के लिए पानी में कूदा, तुरन्त डूब गया, धीरेन्द्र मोहन ने बड़ी चतुराई से मुझको डूबने से बचा लिया, बचपन से ही उसकी प्रतिभा को देखकर सभी आश्चर्यचकित होते थे और कहते थे कि "अगर जिन्दा रहा तो आगे चलकर एक आदर्श पुरुष बनेगा।" देव-द्विज के प्रति उनकी विशेष भक्ति थी, गुरुजनों के समक्ष वह हमेशा विनीतभाव से रहते थे। गाँव में साधु-संन्यासी के आने पर उसके दर्शन करने अवश्य ही जाते थे। समय-समय हम लोगों को भी अपने साथ ले जाते थे। अकेले रहने पर मालूम पड़ता था कि जैसे कुछ सोच रहे हों, उम्र बढ़ने के साथ-साथ नाटक, उपन्यास इत्यादि पढ़ने के बजाय धर्मग्रंथों का पाठ करना उनके जीवन का वैशिष्ट्य था। मेरे पिता स्व. श्यामानन्द आचार्य समय-समय पर मुझे तथा मेरे भाई को धीरेन्द्र के गुणों के बारे में बताते थे और उनको खूब स्नेह करते थे। शैशव में हमारे समवयस्कों के बीच कथोपकथन के समय कभी-कभी धीरेन्द्र कहते थे-"फलां के घर में झगड़ा हो रहा है, फलां के सभी भाई अलग-अलग हैं तथा सम्पत्ति को लेकर विरोध हो रहा है। यह सब मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता, मैं शादी नहीं करूँगा अथवा घर में भी नहीं रहूँगा। मैं बड़ा साधु होकर चला जाऊँगा।" मैं कहता था "तुम कहीं भी क्यों न रहो, मैं पकड़कर ले आऊँगा।" तब कहते थे-"मैं सारे शरीर में राख लपेटकर साधुओं के साथ धूनी जलाकर बैठा रहूँगा, मुझे पहचान ही नहीं पाओगे।" मैं कहता-"तुम्हारे नाक के बीच कटे का निशान देखकर पहचान लूंगा तथा पकड़कर ले आऊँगा।" तब वह फिर कहने

लगते-"साधु बनने पर ये सारे कटे के निशान मिट जायेंगे तथा मेरा चेहरा बदल जायेगा। मुझे नहीं पहचान सकोगे तथा कहाँ रहूँगा कैसे जान पाओगे, कितने तीर्थों में घूमता रहूँगा, पहाड़ की गुहा में बैठकर तपस्या करूँगा। शेर, भालू मुझे देखकर पालतू कुत्ते की भाँति घूमते फिरेंगे, खोजबीन करके यदि किसी तरह तुम लोग जाओगे भी तो ये सारे शेर भालू तुम लोगों की तरफ झपटते देखकर डर के मारे आगे नहीं बढ़ पाओगे" फिर एक बार कहा था-"कल रात को मैनें सपने में देखा एक जटाजूटधारी संन्यासी हाथ में कमण्डल लेकर मुझसे कह रहे थे-"ए धीरेन्द्र ! मेरे साथ आ ! तुरन्त नींद खुल गई, देखा कुछ भी नहीं है।"

छात्र-जीवन

माता चाभूत खुदुमणिरिति ख्यातनाम्नी पवित्रा,
तातश्चासीद् विदितगुणकः पूर्णचन्द्रः प्रसन्नः।
बाल्यात् स्निग्धो मृदुगुणगणो बालको दिव्यतेजा,
जातो भूमौ सकलसुखदो धीर-धीरेन्द्रनामा।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

श्रीश्रीबाबाजी महाराज का यज्ञोपवीत संस्कार अधिक उम्र में हुआ था। ब्राह्मण के लड़के के लिए यज्ञोपवीत संस्कार की निर्दिष्ट उम्र पार हो जाने के कारण उनको व्रात्य दोष लगा था। इसलिए व्रात्य दोष के खण्डन के लिए उनको प्रायश्चित्त करना पड़ा था। उपनयन के समय दो कदम चलने का नियम है, दो कदम से अधिक नहीं चलना चाहिए क्योंकि दो कदम के बाद आगे कदम बढ़ाने पर संसार छूट जाता है। यह सुनकर वह जानबूझ कर दो कदम पारकर तीन कदम चले थे।

उपनयन होने के पश्चात् वे बड़ी निष्ठा के साथ सन्ध्या-पूजा करते थे। उसी समय से उनके मन में साधु होने की आकांक्षा जागृत हुई। उनके मन में बचपन से ही भगवान् को देखने की, उनको पाने की इच्छा होती थी। कभी-कभी ऐसी इच्छा भी होती थी कि हिमालय पर जाकर साधन-भजन करेंगे।

पाठशाला की पढ़ाई खत्म करके श्री श्री बाबाजी महाराज गाँव के माइनर स्कूल में भर्ती हो गये। माइनर कक्षा में अँग्रेजी Bengal Reader IV पढ़ाई जाती थी। अंग्रेजी में उनका बहुत अच्छा अधिकार था। माइनर कक्षा में पढ़ते वक्त मैट्रिक परीक्षा के प्रश्न पत्र

का बँगला से अँग्रेजी रूपान्तर आदि बहुत अच्छी तरह से कर लेते थे। माइनर के वजीफा (Scholar Ship) की परीक्षा देने के लिए वजीफा परीक्षार्थियों को पहले एक निर्वाचनी परीक्षा देनी पड़ती थी। स्कूल समूह के इन्स्पैक्टर (निरीक्षक) स्कूल में आकर वह परीक्षा लेते थे। उस निर्वाचनी परीक्षा को उत्तीर्ण करने पर ही वजीफा परीक्षार्थियों को वजीफा की परीक्षा देने की अनुमति मिलती थी। उनके स्कूल से तीन विद्यार्थी वजीफा-परीक्षा के लिए तैयार हो रहे थे–श्री श्री बाबाजी महाराज एक हिन्दू छात्र तथा एक मुसलमान छात्र।

स्कूल के इंस्पैक्टर ने गाँव के स्कूल में आकर उन तीनों विद्यार्थियों की परीक्षा ली। श्री श्री बाबाजी महाराज के जवाब से वह अत्यन्त प्रसन्न हुए थे तथा मौखिक रूप से कह गये थे कि वह वजीफा की परीक्षा के लिए अवश्य ही चुने जायेंगे। इसके बाद दुर्गा-पूजा के उपलक्ष्य में विद्यालय बन्द हो गया। छुट्टी के दौरान ही परीक्षा से २०/२२ दिन पहले खबर आयी कि वह तथा मुसलमान छात्र दोनों वृत्ति-परीक्षा के लिए चुन लिये गये हैं। इस खबर के आने के दो दिन पहले से ही वह तेज बुखार से पीड़ित हो गये। परीक्षा से दो दिन पहले तक तेज बुखार लगातार एक सा ही बना रहा। विष्णुपुर हाईस्कूल में वृत्तिपरीक्षा का केन्द्र था। विष्णुपुर उनके गाँव से तीन कोस दूर है। परीक्षा दिलाने के लिए उनके पिताजी बैल गाड़ी में बैठाकर उनको विष्णुपुर ले गये। रोटी खाकर कमजोर शरीर तथा कमजोर दिमाग से ही उन्होंने परीक्षा दी थी। भले ही उन्होंने कमजोर शरीर के साथ परीक्षा दी थी, लेकिन फिर भी प्रश्नों के उत्तर बहुत अच्छे लिखे थे। परीक्षा के बाद उनसे उत्तर सुनकर सभी अध्यापकों ने कहा था कि उनके उत्तर सही हुए हैं, लेकिन जब परिणाम निकला तो मालूम पड़ा कि

छात्रवृत्ति नहीं मिली। इससे सभी अत्यन्त आश्चर्य-चकित हुए थे। उनको माइनर में वृत्ति क्यों नहीं मिली इसका कारण रहस्यपूर्ण है।

उनके बड़े भाईसाहब उस समय मधुपुर स्टेशन पर सिग्नेला (संकेतक) की नौकरी करते थे। पिताजी की उस समय आर्थिक स्थिति मजबूत न होने के कारण उनको अँग्रेजी स्कूल में पढ़ाने का सामर्थ्य नहीं था। उनकी पढ़ाई की व्यवस्था करने के लिए उनके बड़े भाई साहब को लिखा गया। उन्होंने बताया कि मधुपुर रेल के हाईस्कूल में उनको भर्ती करने की कोशिश करेंगे, खैर किसी भी कारण से हो, वहाँ के स्कूल में भर्ती होने की व्यवस्था में अकारण विलम्ब होने लगा। बिना कारण घर में बैठकर समय बर्बाद होते तथा बिल्कुल पढ़ाई-लिखाई न होते देखकर उनके बड़े भाई के भरोसे का और इंतजार करने की इच्छा न रही। श्री श्री बाबाजी महाराज ने निश्चय किया कि टोल में भर्ती होकर संस्कृत पढ़ेंगे तथा सोचने लगे कि बाद में यदि बड़े भाई के प्रयत्न से हाईस्कूल में पढ़ने की सुविधा मिली तो भी यहाँ की संस्कृत की पढ़ाई बेकार नहीं जायेगी। मैट्रिक में भी संस्कृत पढ़ना पड़ता है। उनकी अभिलाषा पिताजी को बतलाकर उनके गाँव से एक कोस दूर शाहपुर गाँव में अनंगमोहन तर्क भूषण महोदय के टोल में भर्ती हो गये तथा उनसे मुग्ध-बोध-व्याकरण पढ़ने लगे। कुछ दिन संस्कृत पढ़ने पर ही उनको संस्कृत के प्रति अत्यन्त अनुराग उत्पन्न हो गया तथा अँग्रेजी पढ़ने की इच्छा दूर हो गई। तब अँग्रेजी हाईस्कूल में भर्ती होने की अनिच्छा के बारे में पिताजी तथा बड़े भाई साहब को बता दिया। वह घर से ही शाहापुर-टोल के लिए आवागमन करते थे। टोल में भी वह सर्वश्रेष्ठ छात्र थे। शाहापुर-टोल में पढ़ते वक्त वह आमाशय (ऐंठा) की तकलीफ के कारण करीब ८/१० महीने परेशान रहे। बहुत से प्रसिद्ध डॉक्टर तथा वैद्यों के इलाज से भी बीमारी ठीक नहीं हुई। उनके

बचपन में पिताजी रोज सुबह आधा पाव गर्म घी पीते थे। पिताजी के साथ वे भी रोज घी का सेवन करते थे। उनके अन्दर से एक प्रेरणा आयी कि बचपन में वे रोज घी का सेवन करते थे, लेकिन अब घी नहीं लेते हैं। इसी कारण उनको आमाशय की बीमारी हुई है। पुनः घी का सेवन आरम्भ करते ही बीमारी दूर ही जायेगी। आमाशय की बीमारी में घी का सेवन करना वैद्यों के द्वारा सम्पूर्ण रूप से निषेध है। काफी समय से बहुत सी चिकित्सा के बावजूद बीमारी से बिल्कुल फायदा नहीं हो रहा था, अतः उनका दृढ़ विश्वास देखकर पिताजी ने उनको घी सेवन की व्यवस्था कर दी। घी का सेवन करके वह पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गये।

खैर जो भी हो १६२० ई. में अनंगमोहन तर्क भूषण महोदय के टोल से मेदिनीपुर केन्द्र में जाकर व्याकरण की आद्य परीक्षा दी तथा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर उच्च स्थान पर उन्होंने अधिकार कर लिया, शाहापुर के टोल में करीब एक वर्ष पढ़े थे।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज के अध्यापक अनंगभूषण तर्कभूषण महोदय ने इसके बाद शाहापुर छोड़कर गोपीनाथपुर में जाकर टोल खोल लिया, व्याकरण का मध्य पढ़ने के लिए वह वहाँ जाकर उपस्थित हो गये। अध्यापक महोदय एक विद्यार्थी को काव्य पढ़ाते थे, व्याकरण के साथ-साथ काव्य पढ़ने का श्री श्री बाबाजी महाराज को उपदेश दिया। काव्य की उनके पास न तो कोई पुस्तक ही थी और न ही पुस्तक खरीदने का सामर्थ्य ही था। यह जानकर अध्यापक महोदय बोले–"मैं जब काव्य पढ़ाऊँ तब तुम केवल सुनते रहना। आशा करता हूँ कि इसी से तुम्हारा काव्य पढ़ने का काम हो जायेगा। अगर सम्भव हो तो काव्य की आद्य की परीक्षा भी देना" उनके उपदेश के अनुसार वह उनका काव्य पढ़ाना भी सुननें लगे।

गोपीनाथपुर मे कुछ दिन अध्यापन का कार्य करने के पश्चात् अध्यापक अनंगमोहन तर्कभूषण महोदय हरे कृष्ण मारवाड़ी के आमन्त्रण पर उनके द्वारा प्रतिष्ठित नृसिंह चतुष्पाठी में पढ़ाने के लिए बाँकुड़ा शहर चले गये। तब श्रीश्री बाबाजी महाराज बाकुँड़ा जाकर नृसिंह चतुष्पाठी में भर्ती हो गये तथा उनसे पहले की भाँति व्याकरण का मध्य पढ़ने लगे तथा काव्य के आद्य की पढ़ाई भी सुनते रहे।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज की स्मरण शक्ति बहुत अच्छी थी। काव्य के आद्य की परीक्षा के समय साराहितोपदेश पुस्तक उनको कण्ठस्थ थी। व्याकरण का मध्य पढ़ते समय सारा कृदन्त-प्रकरण एक दिन में याद किया था। इसके एक वर्ष बाद १६२२ ई. उन्होंने मुग्धबोध व्याकरण की उपाधि परीक्षा देकर "व्याकरणतीर्थ" की उपाधि प्राप्त की थी। इसके अलावा इस व्याकरण की उपाधि-परीक्षा नवद्वीप के जिस पण्डित-सभा से होती है, उस पण्डित सभा की भी व्याकरण को उपाधि अलग से दी थी तथा उस परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर एक पदक पुरस्कार प्राप्त किया था। लेकिन साधु होने के लिए उस मैडल को प्राप्त करने का अवसर और नहीं आया।

व्याकरण की उपाधि-परीक्षा देने के बाद श्री श्री बाबाजी महाराज काव्य के मध्य की पढ़ाई पढ़ने लगे। इसी बीच उनकी मानसिक हालत बिगड़ गई। मन में तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया। घर में रहना विष के समान लगने लगा। विद्या की चर्चा करना भस्म में घी उँड़ेलने के समान महसूस होने लगा। अतः ऐसी परिस्थिति में काव्य के मध्य की परीक्षा देना सम्भव नहीं हो सका। परीक्षा से केवल २०/२१ दिन पहले १६२३ ई. में किसी से कुछ भी न कहकर साधु बनने का स्थिर संकल्प करके श्री वृन्दावन की यात्रा पर निकल पड़े।

वैराग्य, दीक्षा तथा गुरुशक्ति का प्रभाव

संसारं विजहद् विषोपममहो वाचं सुधावद् गुरोः,
पीत्वा पीतपटाङ्घ्रिफुल्लकमले चेतोऽलिमुल्लासयन् ।
नित्यं नैष्ठिकमिष्टमन्त्रजपकृद् यो ब्रह्मचर्यं चर-
त्युच्चैर्देशिकसत्तमः स जयतात् सत्त्वप्रधानः पुमान् ।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

दीक्षामाप्य धनञ्जयेति गुरुणा लब्धात्मसंज्ञः सुधी-
भूर्त्वानैष्ठिकब्रह्मचारिचरितस्तूचोचचशिक्षाकृते ।
लब्धाज्ञः सुमतिः स दौलतपुरं गत्वाऽऽप्ततर्कद्वयो,
तीर्थोपाधिरगात् पुनः गुरुवरं वृन्दावनालंकृतिम् ।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

भारत के पुण्य तीर्थ, श्री मन्महाप्रभु गौरांगदेव की जन्म भूमि और लीला क्षेत्र, साधु और वैष्णवों की वास भूमि व संस्कृत शिक्षा के विशिष्ट केन्द्र श्रीधाम नवद्वीप नगरी में परम श्रद्धेय पण्डिताग्रगण्य श्रीयुतत्रिपथनाथ काव्य-व्याकरण-स्मृतितीर्थ महोदय के टोल में रहकर श्रीयुत बाबाजी महाराज ने कई वर्ष अध्ययन किया था। विद्या-शिक्षा की ओर से उनके नवद्वीप-वास का समय अत्यन्त मूल्यवान था, ऐसा विवेचन न करने पर भी कोई खास नुकसान नहीं होगा, लेकिन आध्यात्मिकता की दृष्टि से देखने पर यह समय उनके भविष्य-जीवन की सन्धि के क्षण के रूप में माना जा सकता है, क्योंकि जिस विशाल

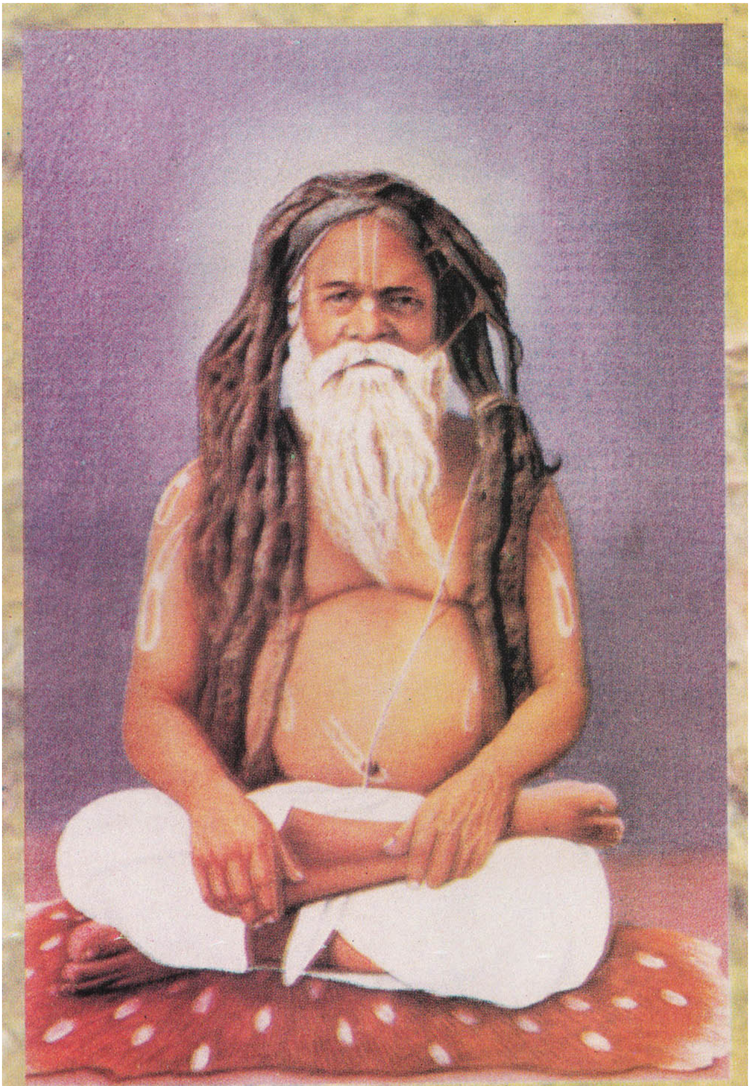

अनन्त श्रीविभूषित

स्वामी सन्तदास काठिया बाबाजी महाराज

वृक्ष ने बहुत सी शाखा-पल्लवों से सुशोभित होकर उत्तर काल में त्रिताप से तापित अगणित नर-नारियों की उसकी सुशीतल छाया में आश्रय प्रदान कर उनको भागवत चैतन्य तथा नवजीवन दानकर संजीवित किया था; उसका क्षुद्र बीज रोपित हुआ था, इस श्री धाम नवद्वीप की उर्वरक मिट्टी में।

शायद बंगाब्द का १३२८/२६ सन् रहा होगा, युवक धीरेन्द्र मोहन इस समय नवद्वीप धाम में पण्डित श्रीयुत त्रिपथनाथ काव्य-व्याकरण-स्मृति-तीर्थ महोदय के टोल में एक उदीयमान छात्र थे एवं पण्डित महोदय के भविष्य की आशा-भरोसा के केन्द्र थे। तीक्ष्णधी, मेधावी, अध्यवसायशील, सदाचारी, सुमिष्ट भाषी और सच्चरित्र छात्र के रूप में वह अध्यापक एवं सहपाठी सभी के अत्यन्त प्रिय पात्र थे।

इस समय उनकी आत्मचेतना ने उनको व्यापकरूप से सचेतन कर दिया, जीवन जिज्ञासा में उनका मन-प्राण हिल उठा, "यह कहाँ आया हूँ? घर कहाँ हैं? कौन पिता हैं? कौन भाई हैं? जीवन का रहस्य क्या है? पढ़ लिखकर क्या होगा? कल्याण का पथ क्या है? जीवन का लक्ष्य क्या है? भगवान् कौन है? क्या उसको प्राप्त किया जा सकता है?" इस प्रकार की सनातन जिज्ञासा ने उनको गहन चिन्तन में डुबो दिया। पिता, भाई तथा नाते-रिश्तेदारों को वह और अपना नहीं समझ सके। लेकिन उनके असली अपने कौन हैं? वह कहाँ हैं? कहाँ जाने पर वो मिलेंगे? इस प्रकार के प्रश्न उनके अन्तर में जगकर उनको बेचैन करने लगे। उनकी धर्म, बुद्धि जाग्रत होकर जमने लगी। श्री श्री राधाकृष्ण विग्रह के प्रति वह आकृष्ट हुए।

उनके इस समय के दैनिक क्रिया-कलापों को उनके तात्कालिक मनोभावों के प्रतिबिम्ब के रूप मे माना जा सकता है। नवद्वीप में जब रहते थे तब वे नित्य दो बार गंगा स्नान करते थे। गंगा के प्रभाव तथा

पवित्रता को वे विशेष रूप से अनुभव करते थे। प्रतिदिन ब्राह्म-मुहूर्त में उठकर शौच के बाद गंगा-स्नान के लिए जाते थे। गंगा-स्नान के बाद सद्‌गुरु की प्राप्ति तथा वैराग्याश्रम की प्राप्ति के लिए वह प्रतिदिन गंगा देवी के सम्मुख आकुल प्रार्थना करते थे। सद्‌ब्राह्मणोचित सारे आचार अनुष्ठानों का अत्यन्त निष्ठा के साथ पालन करते थे। उनके पास विद्याधिष्ठात्री देवी सरस्वती का चित्र था। प्रतिदिन दोनों समय गीता-पाठ के बाद वाग्देवी की आराधना करते थे तथा अत्यन्त व्याकुल मन से श्री भगवान् के निकट प्रार्थना करते थे-"प्रभो ! तुम मेरे प्रति प्रसन्न होओ। तुम्हारे श्रीचरणों में मुझको स्थान दो, असली सद्‌गुरु प्राप्त करना अत्यन्त कठिन विषय है, लेकिन तुम्हारी कृपा से तो सब कुछ हो सकता है। तुम्हारी कृपा से 'पंगुम् लंघयते गिरिम्' मेरे प्रति प्रसन्न होकर सद्‌गुरु के रूप में आविर्भूत होओ।"

भगवान् का आसन डोलने लगा। भक्त-वांछा-कल्पतरु वह उनके भक्त की एकान्त इच्छा को पूर्ण करने हेतु व्यस्त हो पड़े।

सहपाठी सतीश चन्द्र से उनको अपने आकांक्षित सद्‌गुरु का पता मिला। सतीश चन्द्र के साथ ताराकिशोर चौधरी की मुलाकात के बाद लगभग दो वर्ष बीत गये। अब शायद दीक्षा दे सकते हैं, ऐसा सोचकर धीरेन्द्र मोहन ने स्वभाव-सुलभ सरलता, व्याकुलता तथा व्यग्रता के साथ मन की सारी वेदना, उनकी तत्कालीन परिस्थिति, मन की अवस्था और आकांक्षा इत्यादि को विस्तार पूर्वक मर्मस्पर्शी भाषा में व्यक्त करते हुए श्रीवृन्दावन में श्रीयुत ताराकिशोर चौधरी के नाम एक पत्र भेजा। उस पत्र को लिखने की तारीख १३ अगहन १३२९ बँगला थी। उक्त पत्र में उन्होंने यह भी लिखा कि यदि वह वास्तव में सद्‌गुरु हों तथा विधिनिर्दिष्ट गुरु हों तो पत्र का उत्तर अवश्य प्रदान करें। पत्र को डाक से भेजकर आशा तथा निराशा के घातप्रतिघात के बीच उत्तर

की प्रतीक्षा में व्याकुलता के साथ वह दिन गिनने लगे। यथा समय १ पौष १३२६ बंगला को पत्र का जवाब आया। पत्र के प्रारम्भ में ही उनको बाबा कहकर मधुर संभाषण किया है, मानो कितना पुराना परिचय हो। अन्य बातों के पश्चात् उन्होंने उनको नियमित रूप से पाठाभ्यास करने के लिए एक भगवन्नाम पत्र में लिख दिया तथा उसी को तत्काल से जप करने का उपदेश दिया, कालपूर्ण होने पर उपर्युक्त समय पर संन्यास दीक्षा भी देंगे ऐसा आश्वासन भी उक्त पत्र में दिया।

यह पत्र और श्री भगवन्नाम पाकर धीरेन्द्र मोहन को लगा जैसे उनको सभी कुछ प्राप्त हो गया है। वह अत्यन्त श्रद्धा तथा निष्ठा के साथ गुरुदत्त नाम जप करने लगे तथा गुरु के आदेशानुसार काव्य के मध्य परीक्षा की तैयारी करने लगे। लेकिन उनका यह भाव अधिक दिनों तक स्थायी नहीं रह सका।

वह अकसर सारे समय ही जप करते थे। एक दिन जप करते करते उनकी आँख खुल गई। जगत् (संसार) के विचित्र दृश्य उनकी आँखों के सामने तैरने लगे। उनका संसार छूट गया। विद्या-अध्ययन की निष्फलता तथा संसार की असारता ने पुनः उनके विवेकी मन पर अधिकार कर लिया। उन्होंने दीक्षा तथा वैराग्याश्रम की प्राप्ति की प्रार्थना करते हुए २६ पौष १३२६ बँगला तारीख को पुनः गुरुदेव के समीप वृन्दावन में पत्र प्रेषित किया। तब पौष का महीना था। फाल्गुन के महीने में उनको काव्य की परीक्षा देनी होगी। उनके पत्र को पाकर सन्तदास जी महाराज ने जो जवाब उनको दिया था, वह यहाँ उद्धृत किया जा रहा है-

श्रीवृन्दावन, २६ पौष १३२६

परम कल्याण वर,

चिरंजीव धीरेन, तुम्हारा पत्र मिला। तुम जल्दबाजी मत करो;

जो नाम मैंने पहले पत्र में तुमको जप करने के लिए लिखा है, उसे तुम जपते रहो, उसी से तुम्हारे सारे अमंगल दूर हो जायेंगे, बाद में समयानुसार तुमको दीक्षा दे दी जायेगी, गुरु-शक्ति से कार्य होता है; विश्वास होने पर शीघ्र फल दिखाई पड़ता है। तुम परीक्षा दो, यह अच्छा ही है, इससे कुछ भी नुकसान नहीं होगा। १०/१२ दिन बाद ही मेरी यहाँ से पंजाब इत्यादि स्थानों पर जाने की इच्छा है। तुम भी परीक्षा समाप्त होने पर फागुन के महीने में यहाँ आ सकते हो। अन्तर में वैराग्य के उदय होने पर सारे सांसारिक दायित्व समाप्त हो जाते हैं उसे कोई बाधा नहीं पहुँचा सकता, लेकिन वास्तव में वैराग्य उत्पन्न हुआ है कि नहीं इसके लिए अनेक परीक्षायें आती हैं। उनसे बचे रहने पर ही विषय-वैराग्य दृढता को प्राप्त होता है। लेकिन केवल घर, मकान तथा स्वजनों का परित्याग ही वैराग्य नहीं है, अपितु अन्तर से सभी प्रकार की भोग-लालसा तथा यश की इच्छा इत्यादि दूर होने पर ही वास्तविक वैराग्य उत्पन्न होता है। श्रुति ने स्वयं व्यवस्था की है कि जब भी अन्तर में वास्तविक वैराग्य आये, तभी संसार-आश्रम का परित्याग करना चाहिए, इसमें कोई भी बाधा नहीं है। अतः तुम्हारे यहाँ आने पर ही तुम्हारे बारे में व्यवस्था करने की इच्छा है। लेकिन तुम चिन्ता मत करो। धैर्य के साथ अध्ययन करो तथा नाम जप करते रहो। तुम आते वक्त बिस्तर, कपड़े, लोटा, कटोरी इत्यादि साथ लेकर आ सकते हो, कोई एतराज नहीं है। आरब्ध में कोई भी व्यवधान नहीं आयेगा और यह निश्चित ही जानना कि शुभ संकल्प उदय होने पर भगवत्-कृपा आकर रक्षा करेगी। बाधा-विघ्न केवल उस संकल्प की स्थिरता की परीक्षा करती है। तुम मेरा शुभाशीर्वाद लेना।

आशीर्वादक

श्री सन्तदास

गुरुदेव के इस पत्र को पढ़कर भी धीरेन्द्र का अधीर मन शान्त नहीं हुआ। दीक्षा-प्राप्त कर साधु होने की उसकी व्याकुलता क्रमशः बढ़ने लगी। सभी साथी परीक्षा की पढ़ाई को लेकर व्यस्त थे। केवल वही उस बारे में सम्पूर्ण उदासीन होकर किस प्रकार सद्गुरु की कृपा प्राप्त कर आप्त काम होंगे, दिन रात केवल वही चिन्ता करने लगे। उनके गुरुजी ने लिखा है कि थोड़े दिनों के पश्चात् ही वह आश्रम छोड़कर सुदूर पंजाब की तरफ घूमने निकल जायेंगे। लौटने में शायद फाल्गुन का महीना खत्म हो जायेगा। उनके (धीरेन्द्र मोहन के) लिए यह लम्बा दो महीने का समय इंतजार करते हुए मानसिक यातना भोगना अत्यन्त क्लेशदायक होगा। अतः उन्होंने शीघ्र ही श्रीवृन्दावन जाकर दीक्षित होने का निश्चय कर उसी सन्दर्भ में अपने गुरुदेव को पत्र प्रेषित किया और उनके वृन्दावन पहुँचने तक उनकी प्रतिक्षा करने के लिए विशेष रूप से प्रार्थना की। उन्होंने मन-ही-मन हिसाब लगाया कि जिस दिन सन्तदास महाराज के वृन्दावन छोड़ने की बात है, उसी दिन या उससे पहले दिन उनका पत्र वहाँ पहुचेगा। खैर, जो भी हो, होनी के ऊपर भरोसा करके श्रीभगवान का नाम-स्मरण कर अविलम्ब श्रीधाम वृन्दावन के लिए रवाना होंगे यही स्थिर संकल्प किया। उनकी गुप्त अभिलाषा केवल अपने धर्म-बन्धु सहपाठी सतीश चन्द्र आचार्य को बताकर उनसे इसे गुप्त रखने का अनुरोध किया। सतीश चन्द्र ने उनको परीक्षा तक इंतजार करके परीक्षा देकर जाने के लिए बहुत समझाया। लेकिन उनको उनके संकल्प से विचलित नहीं कर सके। नवद्वीप से रात को ग्यारह बजे एक गाड़ी छूटती थी। धीरेन्द्र मोहन के पास कोई घड़ी नहीं थी; अतः गाड़ी छूटने का समय ठीक से निर्धारित नहीं कर सके। उत्कण्ठित चित्त, पलायन पर बालक के स्टेशन पहुँचने के आधे रास्ते पर ही भाप की गाड़ी सीटी बजाती हुई मानो उसका

उपहास कर गरजती हुई चली गई। स्टेशन पर पूछताछ कर मालूम पड़ा कि दूसरे दिन दोपहर से पहले कोई गाड़ी नहीं है। कोई अन्य उपाय न देखकर दुःखी मन से टोल के आवास स्थान पर लौट आये। रात अधिक होने की वजह से घर के सभी लोग गहरी नींद में सोये हुए थे। अतः उनके भागने की व्यर्थता की खबर कोई भी न जान सका। केवल सतीशचन्द्र ही उनसे निष्फलता की करुण कहानी जान सके। उन्होंने पुनः उनको उनके संकल्प से हटाने की कोशिश करते हुए समझाने लगे कि परीक्षा दिये बिना इस समय वृन्दावन जाना उनके गुरुदेव की इच्छा नहीं है, इसलिए वह गाड़ी नहीं पकड़ सके। अतः उस समय तक के लिए वृन्दावन जाना स्थगित रखकर परीक्षा के लिए तैयारी करना ही उनका कर्तव्य है। धीरेन्द्र मोहन उनका अनुरोध नहीं रख सके। दूसरे दिन समय से पहले ही स्टेशन पहुँच गये तथा गाड़ी में चढ़कर परीक्षा के केवल २०/२१ दिन पहले वृन्दावन के लिए रवाना हो गये।

पहले दिन-रात को यदि गाड़ी पकड़ सकते तो जिस दिन वह वृन्दावन पहुँचते, उसी दिन सन्तदास जी महाराज की पंजाब रवाना होने की बात थी। लेकिन धीरेन्द्र मोहन का पत्र पाकर उन्होंने उसदिन यात्रा स्थगित रखकर दूसरे दिन रवाना होने का निश्चय किया। पत्र के अनुसार जिस दिन धीरेन्द्र मोहन के वृन्दावन पहुँचने की बात थी, उस दिन सन्तदासजी महाराज ने अपने दो शिष्यों को स्टेशन भेजते हुए कहा कि एक साधु-शिष्य उनके बिस्तर इत्यादि सामान ले आयेगा तथा दूसरा शिष्य उनको लेकर स्टेशन से ही सीधे यमुनाजी ले जायेगा तथा वहाँ उनका मस्तक मुण्डन कर यमुना में स्नान कराकर दीक्षा के लिए तैयार कर ले आयेगा। दीक्षा देने के बाद उनको साथ लेकर ही पंजाब भ्रमण के लिए जायेंगे। लेकिन गुरुदेव के साथ उस बार पंजाब तीर्थ

भ्रमण उनके भाग्य में नहीं था। इसीलिए जिस दिन धीरेन्द्र मोहन वृन्दावन आश्रम में पहुँचे, उसी दिन सुबह सन्तदास महाराज जी शिष्य के साथ उत्तराखण्ड की ओर रवाना हो गये। जाने से पहले आश्रम के खजांची को निर्देश दे गये कि धीरेन्द्र मोहन के वृन्दावन पहुँचने पर अत्यन्त देखभाल पूर्वक आश्रम में रखा जाये। अगर वह उनके पास जाने के इच्छुक हों तो आवश्यक खर्च देकर उनके पास पहुँचा दिया जाये।

पूर्व निर्दिष्ट तारीख के दूसरे दिन धीरेन्द्र मोहन ने आश्रम पहुँचकर सुना कि उनके लिखित पत्रानुसार एक दिन इंतजार कर उनके गुरुदेव ने उसी दिन सुबह आश्रम छोड़ दिया। डेढ़ महीने बाद लौटेंगे। क्षोभ तथा दुःख से उनका कोमल हृदय विदीर्ण होने लगा, लेकिन आश्रम के साधुओं के आन्तरिक आदर सत्कार के कारण शीघ्र ही उनका यह भाव दूर हो गया। साधुओं के साथ मिलकर वह आनन्दित मन से श्री श्री ठाकुरजी की सेवा का कार्य में अपने को लगाने लगे तथा गुरुदेव की लौटने तक प्रतिक्षा करने लगे। उसी समय श्रीमत् स्वामी अर्जुन दास जी महाराज भी वैराग्याश्रम-ग्रहण करने के लिए आश्रम में आकर गुरुजी महाराज के लौटने की प्रतीक्षा में थे। दोनों की दीक्षा एक ही दिन हुई, अर्जुनदास जी की दीक्षा पहले हुई बाद में बाबाजी महाराज की दीक्षा हुई।

संन्यास-मंत्र के द्वारा दीक्षा दानकर गुरुदेव ने धीरेन्द्र मोहन का नया नामकरण किया-"धनंजय दास"। दीक्षा के समय उनको उन्होंने एकके बाद एक तीन अलग-अलग मंत्रों का उपदेश दिया। पहले मंत्र का उपदेश देकर उसका हमेशा हर वक्त जप करने तथा सभी जगह भगवद्बुद्धि आरोपित करते हुए "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इस वाक्य की यथार्थता का अनुभव करने के लिए कहा था। दूसरे मंत्र का

उपदेश देकर कहा था कि उसको जपने की आवश्यकता नहीं है। यह समायानुसार स्वयं ही प्रकाशित होगा और तीसरे मन्त्र का उपदेश देकर उसे केवल सुनकर रखने को कहा था, दीक्षा के समय उन्होंने उनको नैष्ठिक ब्रह्मचर्य भी दान किया था।

दीक्षा के पश्चात् लगभग डेढ़ महीना बीत गया। एक दिन श्रीयुत बाबाजी महाराज ने रात को श्री श्री ठाकुरजी के मन्दिर से लगे हुए जग मोहन में सोते हुए एक अद्भुत सपना देखा। उन्होंने देखा कि उनके पिता की मृत्यु हो गई है। देवी-देवता उनके पिताजी को एक सुसज्जित विमान में वैकुण्ठ ले जा रहे हैं। दूसरे दिन जगने के बाद भी वह सपने की बात भूल नहीं पाये। उसी दिन डाक से उनके कुल-पुरोहित का पत्र नवद्वीप से उनको मिला, उन्होंने लिखा कि गाँव के मकान में उनके पिताजी बहुत बीमार हैं; मृत्यु शैया पर पड़े हुए हैं। कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी, वह साधु हो गये हैं। साधु-पुत्र का अन्तिम समय पिता के समीप रहकर उनके कान में श्रीभगवन्नाम सुनाना कर्तव्य है। अतः वह पत्र पाते ही घर चले जायें तथा साधु-पुत्र के यथा-कर्तव्य का पालन करें इत्यादि। इस पत्र को पढ़कर तथा पूर्व रात्रि के सपने की बात मन-ही-मन आलोचना कर दोनों ही घटनाओं के बारे में गुरुदेव को बताना आवश्यक समझा, गुरुदेव को दोनों घटनाओं के सम्बन्ध में बताते ही वह आग बबूला हो गये तथा बोले-"मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारा माया-मोह पूर्ण रूप से मौजूद है। ऐसी अवस्था में साधु होने क्यों चले आये? घर तथा पिताजी के प्रति इतना ही आकर्षण यदि रह गया है तो घर पर ही रह सकते थे, यह सब ढोंग करने की क्या आवश्यकता थी? इत्यादि।"

उन्होंने प्रत्युत्तर में उनसे कहा-"घर या पिताजी के लिए मेरा कोई मोह या आकर्षण नहीं है। मैंने माया त्यागकर ही संसार छोड़कर

आपके श्रीचरणों में आश्रय ग्रहण किया है। केवल कर्तव्य-बोध के कारण ही दोनों घटनाओं को आपके श्रीचरणों में निवेदन करने की आवश्यकता महसूस की। घर जाने की मेरी कोई इच्छा भी नहीं है।" इतना कहकर गुरुदेव उनके प्रति असन्तुष्ट हो गये हैं, सोचकर दुःखी मन से वहाँ से बाहर निकलकर फाटक के सामने जाकर खड़े हो गये, तथा अपने मन में जप करने लगे तथा सारे विश्व को भगवद्रूप में चिन्तन करने की चेष्टा करने लगे। उसी समय एक हृष्ट-पुष्ट गाय उनके सामने राजपथ पर मृदु-मन्थर गति से जा रही थी। गाय को देखकर उनके मन मे ऐसा भाव आया कि जब सब कुछ ब्रह्म है तो यह भी ब्रह्म है। इसमें भी परमात्मा विद्यमान है। विशेषकर यह मातृजाति है, अतः स्वभावतः ही स्नेहमयी है। भगवान् ही गाय के रूप मे करुणामयी जननी के रूप में मेरे सामने से जा रहे हैं। अगर वो चाहें तो मेरी पुकार पर आवाज दे सकते हैं। वह लौटकर मेरे पास आकर अवश्य ही मुझको माँ की तरह दुलार कर जायेंगे। मन ही मन ऐसी चिन्ता तथा संकल्प कर के उन्होंने गाय के प्रति अनुरूप प्रार्थना की तथा उसी स्थान पर खड़े रहकर पहले की भाँति जप करने लगे, इस दौरान गाय बहुत दूर चली गयी, लेकिन पहली बार प्रार्थना तथा आवाहन करने पर गाय अचानक चौंककर खड़ी हो गयी, दूसरी बार प्रार्थना के परिणाम-स्वरूप धीरे-धीरे उनके पास आयी तथा तीसरी बार प्रार्थना पर जीभ से कुछ देर तक वात्सल्य स्नेह के साथ उनके शरीर को चाटकर पुनः अपने गन्तव्य-पथ पर धीरे-धीरे चली गयी। इस घटना से बाबाजी महाराज ने सर्वत्र गुरुशक्ति एवं भगवत्-शक्ति के प्रभाव की उपलब्धि की।

इस सन्दर्भ में दूसरी एक और घटना का यहाँ वर्णन किया जा रहा है। एक दिन वह मन्दिर के पीछे कुएँ पर स्नान करने गये,

वहाँ पर देखा एक मोर कुएँ के पास उनके लिए रखे हुए एक निर्दिष्ट पात्र में से पानी-पीने के लिए वहाँ आया। उनको देखकर मोर पास की एक दीवार के ऊपर जा कर बैठा रहा । इस पर उन्होंने सोचा कि मोर भी तो भगवान् हैं, फिर मेरे भीतर जो भगवान् हैं, उन्हें देखकर यह चले क्यों गये? मोर के भीतर एक ही भगवत्सत्ता का विकास है कि नहीं, इसकी सत्यता की पुनः परीक्षा करने की उनकी इच्छा हुई। तब उन्होंने मन-ही-मन इस प्रकार प्रार्थना की-"प्रभो ! तुम्हारे और मेरे अन्दर एक ही परमात्मा विराजमान हैं। फिर मुझको देखकर तुम भयभीत और चकित होकर भाग क्यों गये? मेरे अन्दर जो वास कर रहे हैं, यदि तुम्हारे अन्दर भी वही विराजमान हों तो तुम इस दीवार पर जो टूटा हुआ हिस्सा है, वहाँ उतरकर अपने सुन्दर पंख फैलाकर नृत्य करो।" इस प्रकार प्रार्थना करके वह अपने इष्ट मंत्र का जप करने लगे। कैसा आश्चर्य ! मोर तभी दीवार से उतरकर उस टूटे हुए हिस्से पर आया तथा पंख फैलाकर कुछ देर नृत्य करके पुनः दीवार के ऊपर जा बैठा। तब बाबाजी महाराज ने सोचा कि यह नृत्य किसी आकस्मिक कारण से भी हो सकता है? किसी भी विषय की सत्यता प्रमाणित करने के लिए कम-से-कम तीन बार परीक्षा करके देखनी चाहिये। इसीलिए उन्होंने दो बार और पूर्वोक्ति रूप से मोर से प्रार्थना की तथा मोर ने भी दोनों बार पंख फैलाकर नृत्य किया।

इस प्रकार गाय और मोर की घटना प्रत्यक्ष करके "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" गुरुदेव की इस उक्ति तथा सर्वत्र भगवत्-शक्ति की लीला चल रही है, इन दोनों विषयों में उनका दृढ़ विश्वास हुआ। स्वप्न दर्शन तथा पिताजी के रोग से सम्बन्धित पत्र की बात अपने गुरुजी से कहकर जिस दिन वह तिरस्कृत हुए थे, उसके दूसरे ही दिन गुरुजी ने उनको बुलाकर तभी घर जाकर पिताजी की सेवा शुश्रुषा करने का

आदेश दिया। बाबाजी महाराज ने कहा कि गाड़ी छूटने में और देरी नहीं है तथा श्री श्री ठाकुरजी का भोग लगने में अभी बहुत देरी है, अतः उस दिन जाना सम्भव नहीं होगा। उस पर उनके गुरुदेव ने पहले दिन की प्रसादी रोटी रसोइये से माँगकर खाने के लिए कहा तथा उसके हाथ पर एक रुपया देकर बोले–"इसे रख लो रास्ते में खाने की चीज खरीद कर खाना।" तब बाबाजी महाराज ने गुरुजी का आदेश शिरोधार्य कर पहले दिन की प्रसादी रोटी माँगकर खायी तथा नवद्वीप से आने के बाद उनके पास जो कुछ रुपये थे तथा जो उनके नाम से खंजाची-खाने में अलग से जमा करके रखे हुए थे, उन्हें माँगकर लेकर हाँफते हुए रेल-स्टेशन की तरफ दौड़ पड़े तथा गाड़ी छूटने से पहले ही टिकिट लेकर गाड़ी में चढ़कर रवाना हो गये।

यथा समय घर आकर पहुँचने पर उनके पिताजी खूब हँसते हुए उनके पास आये तथा सादर सम्भाषण कर कुशल-क्षेम पूछने लगे। वह अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर अपने पिताजी से तनिक क्रोध के साथ ही बोले–"आपको तो खूब कठिन बीमारी है? मैं तो आपके कोई बीमारी नहीं देख रहा हूँ? तब इस प्रकार झूठा और धोखा-धड़ी का पत्र लिखाकर मुझे इस प्रकार से क्यों बुलवाया? मैं अब साधु हो गया हूँ। मुझसे धोखा-धड़ी करना क्या गलत नहीं है?" उसके जबाव में उनके पिताजी बोले–"बेटे सचमुच मुझे अत्यन्त जटिल बीमारी हुई थी। खूनी ऐंठा (रक्तामाशय) तक हुआ था। बचने की कोई आशा नहीं थी। बीमारी का जो कुछ अवशिष्ट था, वह भी तुम्हारे घर आने पर तुम्हें देखकर चला गया तथा अब मैं पूर्णरूप से स्वस्थ महसूस कर रहा हूँ। इसके बाद वह और कुछ पिताजी से न कह सके।" कुल-देवता राधामाधव का प्रसाद ग्रहण, जपध्यान तथा गीता आदि का पाठकर सदाचार के साथ एकान्त मे दिन बिताने लगे।

उनके तीसरे नम्बर के भाई हीरेन्द्र मोहन उस इलाके के एक प्रसिद्ध गायक तथा कीर्त्तन करने वाले थे। इसीलिए अपने तथा आसपास के गाँवों में गायक के रूप में उनका खूब नाम तथा प्रसिद्धि है। उन्होंने एकदिन उनको (बाबाजी महाराज को) बुला भेजा, उस समय वह आँगन में एक तख्त पर लेटे हुए थे तथा बात के दर्द के कारण चीत्कार कर रहे थे। बाबाजी महाराज के उनके पास जाते ही उन्होंने उनसे कहा-"भाई तुम साधु हो गये हो, मेरे प्राणों की रक्षा करो। यह दर्द मैं और नहीं सह सकता हूँ।" बाबाजी महाराज ने उसके जवाब में कहा–"मै क्या कर सकता हूँ, बताइये? मैं तो चिकित्सक नहीं हूँ तथा इस बीमारी का कोई इलाज भी नहीं जानता हूँ।आप डॉक्टर या वैद्य को बुलाइये, वे कुछ-न-कुछ प्रतीकार अवश्य ही कर सकेंगे।" वह यह सुनकर बोले-"भाई ! डाक्टर या वैद्य मेरी इस बीमारी को ठीक नहीं कर सकते हैं, बहुत इलाज कराया है। मैं जानता हूँ कि तुम अगर चाहो तो अभी इसी वक्त मुझे अच्छा कर सकते हो। तुम तो साधु हुए हो, बड़े भाई के प्रति क्या तुम्हारी बिल्कुल दया या ममता नहीं है? मेरे प्राण निकले जा रहे हैं, मुझे बचाओ।" वह इस प्रकार से कातरोक्ति करने लगे कि बाबाजी महाराज के कोमल हृदय को चोट लगी। उन्होंने तब अपने गुरुदेव का स्मरण कर बड़े भाई से बोले-"मैं अभी आपकी बीमारी ठीक कर सकता हूँ, लेकिन मैं जो कुछ कहूँ वह आपको पालन करना होगा; अगर आप यह बात स्वीकार करें तो मैं अभी आपको स्वस्थ कर देता हूँ।"

भाई साहब बोले-"तुम जो भी कहोगे, मैं अवश्य ही पालन करूँगा। तुम्हारी बात के खिलाफ कभी नहीं करूँगा।" तब बाबाजी महाराज ने अपने गुरुदेव के निकट मन-ही-मन इस प्रकार प्रार्थना की-"गुरुदेव, इनके इनका पूर्वजन्म का कर्मफल भोगना ही पड़ेगा,

लेकिन इनका गुरु एवं गुरु-शक्ति में विश्वास नहीं है, इसी के निमित्त इनको आपकी महिमा थोड़ी सी दिखाने की इच्छा है, आप प्रसन्न हों।" उक्त प्रकार से प्रार्थना करके उन्होंने कुछ समय इष्टमन्त्र का जप करके अपने भाई साहब के दर्द वाले स्थान पर हाथ फेर दिया तथा तीन बार फूँक मार दिया। तीसरी बार फूँक मारने के साथ ही उनके भाईसाहब सम्पूर्ण स्वस्थ हो गये। उनके दर्द का निशान भी नहीं रहा। तब बाबाजी महाराज ने उनसे कहा—"स्वस्थ तो हो गये, अब बताइये मेरी बात आप रखेंगे कि नहीं।" उन्होंने कहा—"हाँ अवश्य ही तुम्हारी बात रखूँगा, बोलो क्या करना होगा।"

बाबाजी महाराज उनसे क्या कहेंगे इस बारे में पहले से कुछ भी सोचकर नहीं रखा था, अचानक उनके मुँह से निकला—"आप कीर्तन में कभी भी नृत्य नहीं कर सकेगें, अगर आप नृत्य करेंगे तो पुनः आपकी इस बीमारी का आक्रमण होगा।" भाई साहब अत्यन्त खुश होकर "ऐसा ही होगा" कहकर काम पर निकल गये। इस घटना के दो-एक दिन बाद ही हीरेन्द्र मोहन के कुछ मित्र तथा कीर्तन के साथी आकर उनको दूसरे किसी गाँव में प्रहर कीर्तन में जाने के लिए विशेष रूप से अनुरोध करने लगे। हीरेन्द्र मोहन पहले जाने के लिए राजी नहीं हुए, लेकिन उन्होंने इस प्रकार न छोड़बन्दा होकर पकड़ लिया कि अन्त में उनको जाना ही पड़ा। उन्होंने जाने से पहले उन लोगों से सौगन्ध ले ली कि उनको कोई नाचने के लिए अनुरोध नहीं कर सकेगा। हीरेन्द्र मोहन के कीर्तन-मण्डप में जाते ही उनके गले में मृदंग लटका दी गयी। मृदंग बजाकर उन्होंने कीर्तन आरम्भ किया। जल्दी ही कीर्तन का कार्यक्रम जमने लगा। हीरेन्द्र मोहन कीर्तन में आत्मविस्मृत हो गये। कब उन्होंने नृत्य आरम्भ कर दिया, वह जान नहीं पाये। कीर्तन खत्म हो गया, वह घर लौट आये। उनके मकान से

दो मील दूर तक रास्ते में आते वक्त कोई तकलीफ महसूस नहीं हुई। लेकिन घर पहुँचते ही पुनः बात का दर्द अनुभव होने लगा तथा तुरन्त ही पूर्ण रूप से आक्रमण करके उनको पुनः बिस्तर पर लिटा दिया। तब उनको होश आया, कनिष्ठ भ्राता के सामने प्रतिज्ञा कर वह प्रतिज्ञा भंग की है। आत्मानुसोचना की ग्लानि से उनका मन व्याकुल हो गया, लेकिन उससे भी ज्यादा तकलीफ उनको बीमारी के तेज दर्द के कारण होने लगी। वह उस दर्द के सहन न कर सकने के कारण चीखने चिल्लाने लगे। विशेष लज्जित और अनुतप्त होकर बाबाजी महाराज को बुलाकर उनका अपराध क्षमा करने तथा एकबार और उनको स्वस्थ करने के लिए विशेष रूप से उन्होंने अनुरोध किया। बाबाजी महाराज ने उनसे कहा कि-"अब स्वस्थ करना मेरी शक्ति के बाहर है। आपने मेरे गुरुदेव का अपमान किया है। बात देकर आपने प्रतिज्ञा नहीं रखी। अब मै कुछ भी नहीं कर सकूँगा। मेरे गुरुदेव ने ही आपको रोग-मुक्त कर स्वस्थ कर दिया था। लेकिन उनके आदेश~~का~~ आपने पालन नहीं किया, उसके कारण फल आपको भोगना ही पड़ेगा।"

श्रीश्रीबाबाजी महाराज अपने विनयी स्वभाव, मधुर प्रकृति तथा साधु चरित्र के लिए गाँव के सभी के प्रियपात्र थे। पिता के भी वह अत्यन्त स्नेही पुत्र थे। खोये हुए पुत्र को पास में पाकर पिता का स्वाभाविक स्नेह और मोह उनके ऊपर दोगुना होकर दिखाई दिया। पिता ने निश्चित् किया कि पुत्र को वैराग्य-आश्रम त्याग कराकर उसके बाद अपने पास अपने घर में ही रखेंगे। अपने अभिप्राय को कार्य में परिणत करने के लिए उन्होंने श्री वृन्दावन मे श्री सन्तदास महाराज को बहुत विनती करते हुए एक पत्र भेजा। उसमें यह भी बताया कि बाबाजी महाराज के नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-पालन में किसी भी प्रकार की कोई विघ्न बाधा नहीं आये, उसके प्रति विशेष दृष्टि रखेंगे तथा

सावधानी रखेंगे। उनके अलग रहने के लिए राधामाधव मन्दिर के साथ लगे हुए दालान मे व्यवस्था करेंगे इत्यादि। उसके जबाव में सन्तदासजी महाराज ने लिखा कि उनका पुत्र अपनी इच्छा से ऋषि-प्रदर्शित पथ पर चालित होकर साधु हुआ है। पिता का कर्तव्य है पुत्र को उसके यथार्थ कल्याण के पथ पर जीवन के श्रेष्ठ पथ पर चलने के लिए उत्साहित करना, वैसा न करके वह उसको एक सीमा-रेखा के भीतर आबद्ध (बाँधकर) करके रखना चाहते हैं। वृन्दावन में श्रीनिम्बार्क-आश्रम की गद्दी जो अलंकृत करते हैं, वह वैष्णव चार-सम्प्रदाय के भी नेता होते हैं। श्रीनिम्बार्क-आश्रम में प्रतिदिन सैकड़ों साधुओं की सेवा होती है इसलिए जो महन्त रहते हैं, वह प्रतिदिन बहुत से साधुओं का संग तथा सेवा का सुअवसर पाते हैं। श्रीभगवदिच्छा से उनके पुत्र का भी भविष्य में महन्त के पद को अलंकृत करने का मौका मिल सकता है तथा उसके द्वारा जगत् के बहुत से लोगों का कल्याण हो सकता है। वह पुत्र के प्रति मोहवश उसके यथार्थ कल्याण के पथ को देख तथा समझ नहीं पा रहे हैं इत्यादि। बाबाजी महाराज से सुना है कि वे जब उन्माद की हालत में दूसरी बार पिताजी के घर जाकर कुछ दिन रहे थे, उस उस समय उन्होंने उस मूल्यवान पत्र को फाड़कर जला दिया था। अगर वह पत्र रहता तो निःसंदेह यह प्रमाणित किया जा सकता था कि उत्तरकाल में वह अपने गुरुदेव का स्थान-अधिकार ग्रहण कर त्रिताप-दग्ध शत सहस्र नर-नारियों का उद्धार करेंगे, यह संकेत उनके पिताजी को उनके गुरुदेव ने बहुत वर्ष पहले ही दे दिया था।

घर आने के बाद लगभग तीन सप्ताह बीत गये हैं, पिताजी भी पूर्णरूपेण स्वस्थ हो गये हैं। बाबाजी का व्याकुल मन गुरुदेव के समीप जाने के लिए व्यस्त हो गया, गुरुदेव तब कलकत्ता आये हुए थे। वैराग्याश्रम-ग्रहण करने के बाद लम्बे समय तक स्वजनों के साथ रहना

भी शास्त्र-सम्मत कार्य नहीं है। अतः उन्होंने रवाना होने के लिए दिन निश्चित कर लिया। बाबाजी महाराज ने जिस दिन यात्रा करने के लिए निश्चित किया, उस दिन सुबह से ही प्रकृति देवी ने भीषणकार रूप धारण किया।

आसमान मानो टूटकर बरसने लगा, घनघोर घटा तथा बज्रपात से घर के अन्दर बैठे व्यक्ति के मन में भी त्रास पैदा करने लगा, सारे दिन एक ही रूप में प्रकृतिदेवी की ताण्डव लीला चलने लगी। बाबाजी महाराज के पिताजी तथा घर के रिश्तेदार सभी उस दिन खराब मौसम के लिए मन-ही-मन खुश थे; क्योंकि ऐसे में घर से बाहर निकलना मुश्किल है। गाड़ी का समय रात को है। विष्णुपुर रेल-स्टेशन भड़ा गाँव से चार कोस दूर है। ऐसे खराब मौसम में इतनी लम्बी दूरी पैदल चलने की हिम्मत किसी पागल के अलावा और कोई नहीं कर सकता। बाबाजी महाराज अपने जाने के बारे में निश्चिन्त थे। उनकी धारणा थी कि उनके रवाना होने के वक्त बरसात थम जायेगी, प्रकृतिदेवी शान्त भाव धारण करेगी। वास्तव में वैसा ही हुआ। शाम होने से पहले बरसात पूरी तरह से बन्द हो गयी। बाबाजी महाराज किसी की बाधा को न मानकर स्टेशन की ओर रवाना हो गये। वृद्ध पिता प्रिय पुत्र को खराब मौसम में रात के अँधेरे में इतनी लम्बी दूरी अकेले जाने न दे सके। कई संगी-साथियों को लेकर वे आगे-आगे चलने लगे। अन्धकार, रात्रि, गाँव का सँकरा रास्ता वह भी पानी तथा कीचड़ से भरा हुआ। रास्ते के दोनों ओर कतार से लगे हुए पेड़ों के घने पत्तों से अँधेरा और भी गहरा हो गया था। एक हाथ की दूरी पर भी सामने कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता था। साथ में कोई रोशनी भी नहीं है कि देखकर रास्ता चला जाये। बाबाजी महाराज निश्चिन्त निर्भय होकर रास्ता चलने लगे। गुरुदेव साथ में हैं, यही उनका दृढ़विश्वास था।

उनके दुर्गम-पथ को सुगम करने के लिए मानो बार-बार बिजली चमकने लगी। एक बार बिजली चमकने पर जितना रास्ता दिखायी पड़ता था, उतना आगे बढ़ने पर फिर बिजली चमकने लगी। इस प्रकार वे रास्ता चलने लगे। एक जगह रास्ते के बीच में गहरा गढ्ढा था। वृद्ध पिता आगे चल रहे थे। गढ्ढे में गिरने पर हाथ पैर टूटकर विकलांग होने की निश्चित् सम्भावना थी। गढ्ढा किसी को भी दिखायी नहीं दिया। गढ्ढे के पास जाने पर पुनः बिजली चमकने से आने वाली विपत्ति से सभी लोग सुरक्षित बच गये। अटूट विश्वास के बल पर लम्बा रास्ता बिना किसी परेशानी के चलकर बाबाजी महाराज स्टेशन पर उपस्थित हुए तथा यथासमय रवाना होकर और कलकत्ता पहुँचकर श्रीगुरुदेव के चरणों में प्रणाम किया। इसके बाद श्री श्री बाबाजी महाराज कलकत्ते में अपने गुरुदेव के साथ कुछ दिन रहकर उनके साथ ही वृन्दावन चले गये।

बंगाल से श्रीवृन्दावन-आश्रम में लौटने के कुछ दिन बाद गुरुदेव के आदेश देने पर बाबाजी महाराज श्री द्वारकानाथ जी के दर्शन करने के लिए द्वारकाधाम की यात्रा की (सन् १९२३ के अन्त में)। वहाँ जाकर समुद्र में स्नान कर तथा तर्पण कर तप्त मुद्रा अपने अंगों पर धारण कर श्री द्वारकानाथ जी के दर्शन किये। श्री श्री द्वारकानाथ जी ने वहाँ साक्षात् वर्तमान रहकर उनको दर्शन दिया है, उनको ऐसा दृढ़-विश्वास हुआ। अत्यन्त अद्भुत प्रकार की शक्ति की सिहरन उनके देह मन के भीतर से प्रवाहित होकर अंदर तथा बाहर एक अभूतपूर्व शक्ति की क्रिया चलने लगी। एक नया भाव तथा उन्मादना लेकर वृन्दावन आश्रम लौटे।

बाबाजी महाराज जब द्वारका धाम से लौटकर आये, उस समय श्री सन्तदासजी महाराज के एक शिष्य, दौलतपुर कॉलेज के उस

समय के अँग्रेजी के अध्यापक, श्रीयुत् सुधीर गोपाल मुखोपाध्याय, एम. ए. पूजा की छुट्टी में (१३३० सन् १९२३ ई.) गुरुजी के निकट वृन्दावन आश्रम में आये। उनके मन में उस समय धर्म से सम्बन्धित कुछ जटिल प्रश्नों के उदय होने पर एक-एक करके श्रीगुरुदेव के चरणों में निवेदन कर उनके समाध.न के लिए उन्होंने प्रार्थना की। श्रीसन्तदास महाराज ने उनके दो-एक प्रश्नों का समाधान बताकर उनसे बोले-"जो कुछ समझे हो वह लिखकर मुझे दिखाओ।" सुधीर गोपाल बाबू को जैसा समझ में आया था, उसी प्रकार लिखकर लाकर उनको दिखाने पर वह बोले-"जो लिखा है, कुछ भी नहीं हुआ है। एक काम करो, मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर बोलता हूँ, तुम लिखकर रखो।" सन्तदासजी महाराज बोलते जाते और सुधीर बाबू लिखते रहते। इस प्रकार ४ प्रश्नों के उत्तर लिखे जाने पर सुधीर बाबू के कॉलेज खुलने का समय हो जाने पर वह दौलतपुर चले जाने के लिए मजबूर हो गये। जाने से पहले उनका प्रारम्भ किया हुआ कार्य समाप्त करने का दायित्व बाबाजी महाराज को सौंप गये। तब से बाबाजी महाराज ने प्रश्नोत्तर लिखना प्रारम्भ किया। वही बाद में "गुरु-शिष्य-संवाद" के नाम से ग्रंथ के रूप में प्रकाशित हुआ है। "गुरु-शिष्य-संवाद" लिखना प्रारम्भ करके बाबाजी महाराज के मन में नयी-नयी चिन्ताधारा उठकर नये-नये प्रश्न जागने लगे। इस प्रकार क्रमशः ग्रंथ का कलेवर बढ़ने लगा। श्रीसन्तदासजी एक प्रश्न का उत्तर लिखवाकर उसे सम्यक् रूप से धारण करने के लिए बाबाजी महाराज को उपदेश देते थे। बाबाजी महाराज भी वह सम्यक् धारणा करके ही दूसरा प्रश्न करते थे। इस तरह ब्रह्म की चित्शक्ति की धारणा होने पर उनकी अन्तर्दृष्टि सम्यक् रूप से खुल गयी। उसके बाद "सर्वं-खल्विदं-ब्रह्म" इसकी व्याख्या करके उनके गुरुदेव ने उनको सर्वत्र ब्रह्म-बुद्धि स्थापित करने तथा

उसको सम्यक् रूप से धारणा करने का उपदेश दिया। गुरु के उपदेशानुसार वह-"अनन्त जीव समन्वित यह ब्रह्माण्ड सारा ही ब्रह्म है; वह अनन्त शक्तिमान है, उसी अनन्तशक्ति के द्वारा उन्होंने अनन्त जीवमय विश्वरूप धारण किया है-"इस ऋषि-वाक्य की सत्यता के निर्धारण में एकाग्रचित्त से ध्यानस्थ हो गये। दिन रात यह एक चिन्ता करते हुए उनका दिमाग थोड़ा सा गरम हो गया। इस समय एक दिन उन्होंने देखा के श्री द्वारकानाथ जी ने ज्योतिर्मय मूर्ति में प्रकाशित होकर उनके ब्रह्मरन्ध्र में होकर देह के भीतर प्रवेश किया। इसके बाद ही उनका उन्मादन क्रमशः बढ़कर उन्मत्तता के सारे लक्षण क्रमशः बढ़ने लगे। "गुरुशिष्यसंवाद लिखने का कार्य लगभग समाप्ति की ओर था, लेकिन तब भी समाप्त नहीं हुआ था। उनके द्वारा लिखने का काम और नहीं चलेगा देखकर उनके साधु गुरु-भ्राता बनमाली दासजी ने बचे हुए अंश को लिखकर ग्रंथ सम्पूर्ण किया।"

उन्माद-रोग के प्रथम आक्रमण के बाद एक दिन मन्दिर में जाकर श्री श्री राधा बिहारीजी को भोग निवेदन कर दरवाजे पर परदा लगा दिया एवं बाहर आकर दरवाजे के सामने ऐसी जगह पर बैठ गये कि निकटस्थ हनुमानजी की मूर्त्ति के भी स्पष्ट दर्शन हों। वहाँ बैठकर उन्होंने मन-ही-मन ऐसा दृढ़ संकल्प किया कि जब तक श्रीश्री ठाकुरजी तथा श्री श्री राधा रानी स्वयं प्रकाशित होकर साक्षात् रूप से भोग-ग्रहण नहीं करते तथा हनुमान जी भी श्री श्री ठाकुरजी का प्रसाद ग्रहण करने के लिए साक्षात् रूप से आविर्भूत नहीं होते, तब तक वह किसी भी तरह से भोग नहीं हटायेंगे। अपने संकल्प के अनुसार वह वहाँ आसन लगाकर चुपचाप बैठे रहे। समय बीतने लगा। श्रीश्री ठाकुरजी या हनुमान जी में से कोई भी प्रकाशित नहीं हुए तथा वह भी नहीं उठे। उधर आश्रम में स्थित साधुओं के प्रसाद पाने का समय

समाप्त होकर भी बहुत समय बीत गया। भोग हटने में विलम्ब देखकर श्रीसन्तदास जी महाराज स्वयं मन्दिर में आकर उपस्थित हुए तथा वहाँ उनको बैठा हुआ देखकर मामला क्या है, जानना चाहा। वह निरुत्तर होकर आँखें मूँदकर बैठे रहे। कई बार प्रश्न करने पर भी जवाब न पाकर सन्तदास महाराज ने स्वयं ही श्री ठाकुरजी के सामने से भोग उसारकर (हटाकर) उसे काठियाबाबाजी महाराज, गरुड़ जी तथा हनुमानजी आदि हरेक के सामने ले जाकर निवेदित किया। उसके बाद साधुओं के भोजन के लिए पंगत हुई। प्रसाद पाने के लिए बाबाजी महाराज को कई बार बुलाया गया। उन्होंने कोई भी जवाब नहीं दिया तथा प्रसाद पाने भी नहीं गये। सारा दिन तथा वह रात भी उन्होंने बिना भोजन किये ही पानी तक ग्रहण न करके बितायी। उस दिन रात को उनके मन में ऐसी निश्चित धारणा हुई कि सभी कुछ ब्रह्म ही है, उसके सिवा जगत् में और कुछ भी नहीं है। मन के आनन्द के कारण वह "सर्व-सर्व" कहकर जोर-जोर से चीखने लगे। उनकी चीख से उनके बड़े गुरुभाई अनन्तदासजी की नींद टूट गई। उनकी ऐसी हालत देखकर अनन्त दासजी करुणा से गल गये। उनके स्नेह से पूर्ण हृदय में भ्रातृस्नेह उच्छ्वसित हो उठा। वह तुरन्त अपना बिस्तर त्यागकर बाबाजी महाराज के पास गये और अत्यन्त ममता के साथ उनको अपने बिस्तर पर लाकर नाना प्रकार से सुलाने का प्रयत्न करने लगे, लेकिन उनकी सभी तरह की कोशिशें बेकार हो गयीं। बाबाजी महाराज एक ही तरह से "सर्वं-सर्वं" कहकर चीखने लगे और कोई उपाय न देखकर अनन्त दासजी तब उनको लेकर सन्तदासजी महाराज को तत्कालीन हालत के बारे में बताया। श्रीसन्तदासजी महाराज ने उनको तख्त पर अपने बिस्तर पर अपने बगल में सुला दिया तथा चुपचाप रहने का आदेश दिया। सुबह जब वह बिस्तर छोड़कर शौच आदि के

लिए बाहर गये, उस समय भी उनको शान्त होकर सोये रहने का आदेश दे गये। उसी समय से बाबाजी महाराज के उन्माद के लक्षण दिखायी पड़ने लगे।

उपर्युक्त घटना से कुछ दिन पहले एक और उल्लेख-योग्य घटना घटी। बाबाजी महाराज को एक दिन अचानक ख्याल आया कि उनके गुरुदेव सर्वज्ञ हैं कि नहीं इसकी परीक्षा करके देखनी चाहिए। उन्होंने मन-ही-मन स्थिर किया कि गुप्तरूप से ऐसे एक कार्य की सूचना करनी चाहिए कि जिससे उनके गुरुदेव श्री सन्तदासजी महाराज अपनी सर्वज्ञ-शक्ति के द्वारा ज्ञात होने पर किसी भी प्रकार से स्थिर न रह सकने पर तुरन्त उनके पास दौड़कर आयेंगे। इस प्रकार सोच-विचार कर उन्होंने अपनी कार्य-पद्धति निश्चित कर ली तथा अविलम्ब वह कार्य में परिणत कर लिया।

बरामदे में फर्श के गढ्ढे में धूनी की आग थी। उन्होंने धीरे-धीरे जाकर फर्श पर लेटकर उस गढ्ढे के ऊपर अपना सिर रख दिया। अग्नि-स्पर्श के कारण सिर के बाल जलने लगे तथा गर्मी से सिर में तेजदर्द महसूस होने लगा। इतने दर्द के बीच भी बाबाजी महाराज निश्चल तथा निर्भीक बने रहे। अग्निदेव धीरे-धीरे अपनी लपलपाती जीभ फैलाकर बाबाजी महाराज के सिर को निगलने के लिए उद्यत थे। ठीक उसी समय सुनाई पड़ी बज्र-गम्भीर वाणी–"धनञ्जय दास ! धनञ्जय दास !!" सत्तर वर्ष के वृद्ध श्री सन्तदासजी लाठी खट्-खट् करते हुए अत्यन्त व्यस्तता के साथ श्री श्री ठाकुरजी के विराट् प्रासाद के इधर-से-उधर दौड़ रहे थे तथा व्याकुल स्वर में पुकार रहे थे–"धनञ्जय दास ! धनञ्जय दास !!" प्रतिध्वनि ने करुण स्वर में जवाब दिया–"धनञ्जय दास ! धनञ्जय दास !!" उन्मत्त शिष्य को कहीं भी न देखकर श्रीसन्तदासजी अन्त में धूनी की जगह उपस्थित होकर

उनको उस हालत में देखा। क्रोध के कारण वृद्ध का सर्वांग थर-थर काँपने लगा। तुरन्त उनको धूनी से हटा कर कई थप्पड़ मारे एवं शिष्य के अन्तर में गुरु के अन्तर्यामित्व की शक्ति का प्रवेश करा दिया।

इसी हालत में बाबाजी महाराज को सर्वदा ऐसा अनुभव होता कि सभी कुछ ब्रह्म-स्वरूप है। उनके सिवाय इस संसार में और कुछ भी नहीं है। इस प्रकार के ध्यान में वह दिन रात डूबे रहते थे। इस समय उनके गुरुदेव उनसे कहते-"तू पागल हो गया हैं।" उसके जवाब में वह उनसे कहते-"मैं सब कुछ भगवत्-रूप में प्रत्यक्ष कर रहा हूँ तथा इससे परमानन्द में ही हूँ। आप मुझे पागल क्यों कह रहे हैं मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। इस प्रकार की सदानन्दमय अवस्था में रहने को यदि आप पागलपन की अवस्था कहते हैं तो ठीक है, ऐसा ही हो। लेकिन मैं हमेशा इस हालत में ही रहना चाहता हूँ।" श्री सन्तदासजी उनसे कहते-"अरे ऐसा नहीं है। तू समझ नहीं पा रहा है कि तू पागल है। वास्तव में ही तू पागल हो गया है। अरे मूर्ख, पागल क्या कभी स्वयं समझ पाता है कि वह पागल हुआ है?" श्री सन्तदासजी इस प्रकार बार-बार वह पागल हुए हैं, कहकर वह वास्तव में पागलपन की हालत को प्राप्त हुए हैं, यह भाव उनके दिल में बैठा दिया। गुरुदेव के मुख से निकली इस तरह की वाणी बार-बार सुनकर बाबाजी महाराज को भी विश्वास हो गया कि वह सच में पागल हो गये हैं। क्योंकि उनके गुरुदेव कभी झूठ नहीं बोलेंगे। वह पागलपन की अवस्था को प्राप्त हुए हैं, यह धारणा उनके मन में बैठने के साथ-साथ ही उनके पागलपन की तीव्रता में कमी आना प्रारम्भ हो गया। यह सब [illegible]गुरुदेव की लीला है।

वह देखते कि स्वयं राधारानी आकर अपने श्रीहस्तों के द्वारा उनके (बाबाजी महाराज) के सारे काम-काज कर रही हैं। श्रीश्री

ठाकुरजी और श्रीश्री राधारानी ज्योतिर्मय रूप में विमान में आरूढ़ होकर श्रीवृन्दावन से वैकुण्ठ में गमनागमन कर रहे हैं, यह भी वह प्रत्यक्ष देखते। वह स्पष्टरूप से देखते कि आरती के समय देवदेवी वहाँ आकर आरती दर्शन कर रहे हैं एवं आरती-दर्शन के पश्चात् श्रीठाकुरजी के सम्मुख स्तव कर रहे हैं। एक दिन हनुमान जी ने कृपाकरके अपना विराट् स्वरूप (सागर लाँघते समय जो मूर्ति उन्होने धारण की थी) दर्शन कराया। गन्धर्वों का दिव्य संगीत वह हमेशा ही सुनते थे।

बाहरी तौर पर उनमें पागलपन के सारे ही लक्षण दिखाई दिये थे, लेकिन वह स्वयं हमेशा हर क्षण दिव्यानन्द में विभोर रहते थे। किसी भी प्रकार का शारीरिक कष्ट उनको महसूस नहीं होता था। भूख-प्यास से भी वह बेचैन नहीं होते थे। बातचीत जो भी करते सभी कुछ उच्चावस्था में साधन-लब्ध ज्ञान की ही बातें होती थी।

इस समय उनके प्रति उनके गुरुदेव का व्यवहार भी रहस्यमय था। श्रीसन्तदासजी उनके साधन-लब्ध अवस्था की बात जानते थे। इसी कारण प्रिय शिष्य के प्रति एक आन्तरिक स्नेह की पीयूषधारा उनके प्रेमी हृदय से क्षरित होती रहती थी। इस समय प्रेमी गुरु मातृ-स्नेह के आवरण के द्वारा अपने शिशु को हमेशा ढककर रखते थे। उनकी सजग सतर्क दृष्टि भावलब्ध नवीन साधन के प्रति हर समय ही आरोपित रहती थी।

श्रीसन्तदासजी महाराज बाबाजी महाराज को छोटे बच्चे की ही भाँति अपनी गोदी में सुलाकर अपने हाथ से उनके सिर पर स्निग्ध तैल (मध्यम नारायण, महानारायण) प्रेम के साथ मालिश करते तथा अत्यन्त स्नेह के साथ उनके सर्वांग पर हाथ फेरते थे। इस अवस्था में उनके अन्तर में पूरे बेग के साथ जप चलता रहता था। वह स्वयं

चाहकर या कोशिश कर जप नहीं करते थे। कभी-कभी जप बन्द करने का आदेश देते थे। लेकिन वह प्रयास करके भी जप बन्द करने में सक्षम नहीं होते थे। एक समय उनको प्रतीत होता कि मानो सभी शून्य है, सभी खाली है। इस जगत् मे कुछ भी नहीं है। अपना अन्तर्-बाहर सभी कुछ वह शून्य देखते। योग-शास्त्र में निर्विकल्प समाधि की अवस्था में जिस प्रकार के भाव का वर्णन दिया हुआ है, उनका भी वैसा ही भाव होता था। स्वस्थ होने के बाद उस समय के भाव की बात सोचकर वह यह समझ पाये थे। यहशून्यता उनको उत्कंठित कर देती थी। उन्होंने अपनी यह अवस्था गुरुदेव के चरणों में निवेदित कर उसे दूर करने के लिए देश जाकर रिश्तेदारों के बीच वास करने की इच्छा व्यक्त की थी। पिता तथा अपने परिजनों के पास रहकर उनके संस्पर्श में आकर उनका खोया हुआ मन शायद नीचे उतर कर पुनः अपनी जगह आ सकता है।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज को देश भेजने के बाद श्रीश्रीसन्तदासजी महाराज ने कहा था कि बाबाजी महाराज श्री वृन्दावन में अपने श्रीगुरुदेव के पास रहते समय अत्यन्त निष्ठा और भक्ति के साथ रात ३ बजे से प्रारम्भ कर सुबह ६ बजे तक श्री श्री ठाकुरजी की सेवा करते थे तथा सर्वदा ब्रह्म ध्यान में डूबे रहते थे। सेवा के समय के अलावा बाकी समय अकसर अपने गुरुजी की सेवा में लगे रहते थे। श्री श्री सन्तदास जी अपने शरीर के निकट अधिक समय तक रहने तथा लगातार ब्रह्मध्यान करने को उनको बारम्बार निषेध करते थे एवं कभी-कभी भ्राताओं के साथ बैठकर बातचीत करने या किसी कार्य के लिए उनको दूसरी जगह भेज देते थे, लेकिन बाबाजी महाराज थोड़ी देर बाद ही लौट आते थे, ब्रह्मचिन्ता, ब्रह्मवार्त्ता, ब्रह्म-ध्यान धीरे-धीरे बढ़ता ही चला गया। इसके अलावा श्रीगुरु के निकट उनके शरीर का

संसर्ग, प्रभाव और तेज सहन करना अत्यन्त कठिन हो गया, उनका मस्तिष्क विकृत हो गया, श्रीसन्तदासजी ने कहा था–"देखा यहाँ रहकर उसका यह भाव तो कम होगा नहीं, इसीलिए जन्म-स्थान में विषयी के संसर्ग में भेज दिया।"

खैर जो भी हो, बाबाजी महाराज अपने बड़े भाई के घर रहते हुए काफी कुछ प्रकृतिस्थ हुए थे। लेकिन उनके अन्तर की शून्यता तब भी पहले की ही भाँति बनी रही। पागलपन की अवस्था में बिना आहार किये या आधा भोजन करने के कारण उनका शरीर सूख गया था। इसीलिए उनके भाई साहब ने उनके दिमाग तथा शरीर की पुष्टि के लिए पूड़ी, मोहन भोग तथा चाय इत्यादि की अच्छी मात्रा में भोजन की व्यवस्था कर रखी थी। इस सब उग्र और तेजयुक्त आहार के फलस्वरूप थोड़े दिनों मे ही उनका उन्माद रोग पुनः बढ़कर पहले की सी हालत हो गयी।

अपने-आपको वह अत्यन्त शक्तिमान पुरुष के रूप में समझने लगे। वह अनुभव करते थे कि एक प्रचण्ड शक्ति उनके अन्दर मौजूद है। "नीमचा बर्मोक हट" स्टेंशन पर गाड़ी रुकती नहीं थी। उनके भाई साहब रेलवे क्वार्टर में रहते थे। मकान के सामने से रेल लाइन गुजरती है। एक दिन एक गाड़ी पूरी गति के साथ चली जा रही है, देखकर उनको गुस्सा आया, उनकी शक्तिमत्ता के सामने गाड़ी की शक्ति कुछ भी नही है। लेकिन उनकी उपेक्षा करके ही मानो गाड़ी अपनी शक्ति जाहिर करके गर्व के साथ चल रही है, यही उनके गुस्से का कारण था। भापकी गाड़ी का अहंकार चूर्ण करने के लिए उन्होंने बिड़-बिड़ करके कुछ मन्त्रों का उच्चारण कर गाड़ी को रुकने का आदेश किया। आश्चर्य की बात है कि वह लम्बी गाड़ी की पूर्ण गति तुरन्त बन्द हो गयी। चलती हुई गाड़ी इस प्रकार अचानक बन्द हो

जाने पर गाड़ी का चालक तथा यात्रीगण सभी विस्मित हो गये। गाड़ी का चालक गाड़ी से उतरकर कलपुर्जों के परीक्षण में लग गया। लेकिन कहीं कोई खराबी नहीं पकड़ पाया। कुछ देर गाड़ी बन्द होकर वहाँ रुकी रहने पर गाड़ी के प्रति बाबाजी महाराज का गुस्सा और नहीं रहा, क्योंकि उनकी शक्ति के आगे गाड़ी पराजित हो गयी थी। इसीलिए कुछ देर बाद उन्होंने पुनः मन्त्रोंचारण करके गाड़ी को चले जाने का आदेश दिया, गाड़ी भी जैसे अचानक रुक गयी थी, वैसे ही अचानक चलने लगी।

इस समय एक दिन रात में वह पिताजी के बिस्तर पर चढ़कर सोये हुए पिताजी के पैर के ऊपर पैर रखकर श्रीकृष्ण की भाँति त्रिभंग होकर बंशी हाथ में लेकर खड़े होने की मुद्रा में खड़े रहे। पिताजी की नींद खुल गई, उन्होंने कहा–"यह क्या धीरु ! यह क्या कर रहा है?" जवाब में बाबाजी महाराज ने कहा–"क्यों पिताजी, आप क्या नहीं देख रहे कि आपके अंग पर कृष्ण खड़े हैं?"

उनकी हालत बताते हुए उनके पिताजी ने श्री वृन्दावन में श्री सन्तदासजी महाराज को पत्र लिखा, उसके जबाब में मक्खन १०८ बार पानी में मथकर उनके सिर पर रखने का उन्होंने निर्देश दिया, इससे कोई उल्लेख-योग्य असर नहीं हुआ। उनके पिताजी ने सुना था कि बर्द्धमान जिले के तिलकचन्दनपुर नामक गाँव में किसी देवता के द्वारा स्वप्न में दिया हुआ वायु का तेल मिलता है। उसका इस्तेमाल करने पर उन्माद-रोग ठीक हो जाता है। उन्होंने वह तेल मँगवाकर अपने पुत्र को इस्तेमाल करवाया एवं उसी से तीन दिन में श्री बाबाजी महाराज सम्पूर्ण प्रकृतिस्थ हो गये।

इसके बाद विवाह करके संसार-धर्म का आचरण करेंगे ऐसी प्रवृत्ति श्रीबाबाजी महाराज के मन में जागी। इस सम्बन्ध मे उन्होंने

अपने गुरुदेव को पत्र लिखा। गुरुदेव ने उपदेश दिया-"इस समय तुम्हारा मस्तिष्क प्रकृतिस्थ नहीं हुआ है, ऐसा समझना। तुमने जो सुख का आदर्श लिखा है, वह सांसारिक मनुष्य सुख है, यह ब्रह्मानन्द नहीं है, इसकी तुलना में और अधिक देवलोक में है, तुमने जो दुःख पाये हैं लिखा है तथा सोच रहे हो कि किसी-किसी ने कष्ट दिये हैं, वह तुम्हारी भलाई के लिए हैं, किसी ने दुश्मनी निकालने के लिए तुमको कष्ट नहीं दिया है, यह तुम्हारे जन्मान्तर के कर्म के निमित्त समझना, लेकिन यह क्लेश तुम्हारे लिए श्रीभगवत् कृपा से तुम्हारे उपकार का ही कारण हुआ है, यह प्रकृतिस्थ होने पर समझ सकोगे।" (२५-४-२४)

पत्र पाकर धीरे-धीरे बाबाजी महाराज के मानसिक विकार में मानो परिवर्तन हो रहा है, मालूम पड़ा, मोह रूपी दुर्ग के भीतर रहकर वह सोच रहे हैं-"मैं विवाह करूँगा संसारी होऊँगा," दूसरे ही क्षण सोच रहे हैं-"मैं क्यों भ्रान्ति के पथ पर अग्रसर हो रहा हूँ?" उनके अन्दर जब इस प्रकार की दोलायमान अवस्था थी, तभी मानो किसी एक ऐसी शक्ति की प्रेरणा जाग उठी। उन्होंने श्रीगुरुदेव की शरण ली-"हे दयालु गुरु ! आप मेरी रक्षा करें। आप मेरा मोह दूर करें—**'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।'"**

महापुरुषों को भी कभी-कभी शायद ऐसी हालत का सामना करना पड़ता है। हमारे परात्पर गुरु श्री १०८ स्वामी रामदास काठिया बाबाजी महाराज भी एक बार इस प्रकार की अवस्था में पड़ गये थे। श्रीश्रीकाठियाबाबाजी महाराज की भी बालवैराग्य अवस्था में संन्यास-ग्रहण के पश्चात् एक स्त्री के आकर्षण में फँसकर उसके साथ नियत वास की इच्छा उनके मन में जागी थी। वह एक रूपवती विधवा युवती रमणी की सेवा और भक्ति से क्रमशः अलक्षित भाव से आकृष्ट होकर उस रमणी के "आप मेरे साथ अब से नियत रूप से रहें तथा मेरा सारा

राज्य भोग करें।" इस प्रस्ताव पर पहले प्रसन्न ही हुए थे। लेकिन दूसरे ही पल उनको अपने वैराग्याश्रम की बात याद आने पर उनके अन्तर में घृणा उत्पन्न हुई तथा उस रमणी के मोह से परित्राण के लिए दूसरे स्थान पर चले गये। दूसरे स्थान पर जाते-जाते भी उस रमणी के हाव-भाव तथा भक्ति उनके अन्तर में जाग उठी एवं उसके पास लौटकर जाने के लिए उनका मन व्याकुल हो उठा, बाद में भगवत्-कृपा से उनका मोह भंग हो गया। उसके बाद उन्होंने कहा था-"स्त्री जाति की आकर्षणी शक्ति का उल्लंघन करना पुरुषों के लिए विशेष रूप से युवा पुरुषों के लिए अत्यन्त दुस्साध्य है, वह मैं इस प्रकार से अवगत हुआ था; भगवत्-कृपा के बिना जीव इससे छुटकारा नही पा सकता है।" (श्रीसन्त दास बाबाजी महाराज द्वारा प्रणीत "श्री १०८ स्वामी रामदास काठियाबाबाजी महाराज का जीवन चरित" ग्रंथ के १५-१६ पृष्ठ पर द्रष्टव्य।) इसके द्वारा ही प्रतीत होता है कि श्रीभगवान् वास्तविक साधक की परीक्षा लेने के लिए ही इस तरह की घटना घटित कराते हैं तथा बाद में श्री गुरुरूप में उस साधक को परित्राण करते हैं-**तत्पदंदर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।**

श्रीबाबाजी महाराज ने अपनी पूर्वोक्त अवस्था में श्री गुरुदेव को अनेक पत्र लिखे थे। उनके गुरुदेव के लिखे हुए पत्र के उत्तर का सारांश नीचे दिया गया है, जिससे उपलब्धि हो सकती है कि किस प्रकार से उनकी मानसिक वृत्ति का परिवर्तन किया था तथा उनके आध्यात्मिक परमानन्द-प्राप्ति के पथ पर अग्रसंर होने के संबंध में भविष्यवाणी की थी। ऐसे पत्ररूप महावाक्यों का अनुशीलन करना प्रत्येक साधकों के लिए परम अपेक्षित है। अतः उनका अनुध्यान करते हैं-"अन्तर में सम्पूर्ण वैराग्य न आने पर वह व्यक्ति संसार का पारगामी नहीं हो सकता है।-तुम्हारा मान-अपमान-बोध, सुख के प्रति

लिप्सा एवं शारीरिक दुःख के प्रति असहिष्णुता-निवारण के लिए बहुत तरह की ताड़ना इस समय सहन करने पड़ सकती है। दुनिया में बड़ा आदमी बनूँगा, नाम यश होगा, यदि इस प्रकार की इच्छा हो तो इस वैराग्य के पथ का अवलम्बन न करना ही श्रेयस्कर है। तुमने जब पहले वैराग्याश्रम-अवलम्बन करना चाहा था, तब मैंने और कुछ दिन देर करने के लिए कहा था, वह तुम्हारे दिल में नहीं बैठी, इस समय उसके कारण दुःख पा रहे हो, अतः स्वयं स्थिरता पूर्वक सोचकर अपना पथ निश्चित करो।" (८-५-१६२४)

"तुमने लिखा अवश्य है कि तुमने अपना सब कुछ समर्पण कर दिया है, लेकिन वास्तव में वैसा तुम नही कर सके हो। अपने मन को अपना कर्त्ता कार्यवश बनाया है। देखो, तुम देश जाने के लिए व्यस्त हुए थे तो मैंने तुम्हारे देश जाने की व्यवस्था की थी, लेकिन तुमने क्या एक बार भी मुझसे पूछा था कि देश जाना उचित है या नहीं? नवद्वीप ज़ाकर पढ़ोगे निश्चित किया था, वह भी पहले एक बार भी पत्र के द्वारा पूछा था कि वहाँ जाओगे या नहीं? इस तरह लगभग सभी विषयों में अपने मन में जो कुछ होता है, वही करने के लिए व्यस्त हो जाते हो। अपना हित किसमें होता है, वह अगर समझते हो कि नहीं जानते तो स्वयं इस प्रकार के कार्य करने के लिए क्यों प्रवृत्त हो जाते हो? जब देश में रहने की चाहत मिट जायेगी, तब लिखकर बताने पर कर्तव्य के बारे में पत्र लिख सकूँगा।" (१२-५-१६२४)

"तुम्हारे मन में घर जाने के लिए इच्छा है, देखकर तुमको घर लौट जाने की अनुमति दी थी। तुम घर की हालत देख लेने पर तुम्हारी संसार-भोग-तृष्णा मिट जाने पर......तुम्हारे अन्दर यथार्थ वैराग्य आने पर पिताजी को समझाकर कहना कि तुम्हारे द्वारा सांसारिक कर्म नहीं होंगे, क्योंकि तुम्हारा लगाव नहीं है। उनको

नम्र-भाव से समझाकर कहने पर वह तुम्हारे कल्याण-प्राप्ति के पथ पर बाधा नहीं देंगे।" (११-८-१९२४)

"जब सद्गुरु ने तुमको ग्रहण किया है, तब अवश्य ही परा-गति प्राप्त होगी जानना। किसी प्रकार का संशय मन में मत रखना। लेकिन जन्मान्तर के जो कर्म हैं, उनका फल अवश्य भोगना पड़ता है। सम्पूर्ण ब्रह्मज्ञ पुरुषों का भी भोग के द्वारा ही वह कर्म क्षय होता है, यदि स्त्री-सम्भोग और विवाह नहीं करोगे, इस प्रकार मन में दृढ़ प्रतिज्ञा हो सके तो जब चाहो यहाँ चले आ सकते हो। वस्तुतः इच्छा का बीज ध्वंस करना कठिन है। दृढ़ प्रतिज्ञ व्यक्ति के प्रति भगवत्कृपा उत्पन्न होती है तथा वह इससे उत्तीर्ण हो सकता है। यही संसार-बन्धन मूल है। इसी के द्वारा माया-मय संसार की बृद्धि होती है। इसका परित्याग न करने पर माया का बंधन काटना बड़ा ही कठिन है।" (३-११-१९२४)

"प्रवृत्ति मार्ग में स्थित पुरुष पिता-माता की सेवा छोड़कर उनकी इच्छा के विरुद्ध वन में जाकर यदि किसी सिद्धि को प्राप्त करने के लिए तपस्या करता है तो वह उत्कृष्ट धर्म में नही गिना जाता है; यही ब्राह्मण कुमार, साध्वी स्त्री और धर्म-व्याध के उपाख्यान में महाभारत मे वर्णित हुआ है। भगवत् अनुरागी व्यक्ति को भगवत्-आराधना के लिए पितृवाक्य, मातृवाक्य-लंघन करने पर कोई दोष नहीं होता है, यह प्रह्लाद आदि के दृष्टान्त के द्वारा ऋषियों ने प्रमाणित किया है। कर्म-बंधन तथा ब्राह्म-कर्म का आकर्षण सम्पूर्ण रूप से छिन्न करके भगवत्-सेवा और भजन में मन लगा सको, यही आशीर्वाद करता हूँ।" (१३-१२-१९२४)

श्रीभगवान् से प्रतिदिन प्रार्थना करना-"मेरे प्रभु ! मैं आपसे क्या माँगू? जो आप मेरे लिए उचित समझें, वहीं मुझे दे दीजिए। किन्तु

मुझे साथ में वह शक्ति और बुद्धि दीजिए कि मुझे आप जो भी दें या जहाँ और जिस भी हाल में रखें, मैं उसी में खुश रहूँ। मुझे पूर्णतः अपनी शरण में ले लीजिए। मेरे जीवन का सम्पूर्ण भार अब आपके ऊपर है। मुझे सदैव ऐसी बुद्धि दीजिए कि मैं अपने जीवनकाल में अच्छे कर्म रूपी श्रेष्ठ बीज बोऊँ, ताकि मुझे अच्छा ही काटने की आशा हो। मुझे पलभर के लिए भी अपने से अलग न होने दीजिए। प्रभु, मुझे आपके अनुशासन पर पूर्ण विश्वास है। मुझे सदा अपने अनुशासन में रखिए ताकि आप मेरे लिए सदैव सुलभ रहें। हे भक्तवत्सल भगवान्, मैं अनन्य भाव से कर्म और भक्ति के दो हाथ जोड़कर आपकी ओर आ रहा हूँ। आप चारों हाथों से मेरा कल्याण कीजिए। मुझे अपनी अनन्य भक्ति का वरदान देकर सदा के लिए अपनी शरण में ले लीजिए, ताकि मैं आपका हो जाऊँ और आप मेरे।

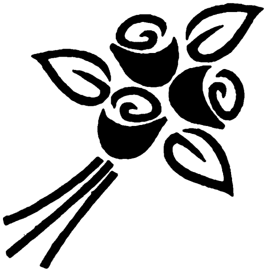

शास्त्र–अध्ययन

तर्कव्याकरणार्षदर्शनपथे यः संचरन् नित्यशो,
ज्योतिद् युतिनया स्वया प्रतिभया जाज्वल्यमानः सदा।
मोहध्वान्तहरो हरोपमगुणग्रामः क्षमामण्डितः,
नानाशास्त्रसुपण्डितो विजयते नास्तिक्यनाशक्षमः।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

श्रीयुत बाबाजी महाराज भी पूर्व कर्मफल के कारण ही उन्माद रोग से आक्रान्त होकर दो तीन महीने मात्र भोग कर सम्पूर्ण स्वस्थ हो गये। स्वस्थ होने के बाद उनकी पुनः अध्ययन की इच्छा तेज हुई। बातचीत के दौरान उन्होंने जाना कि भाटपाड़ा निवासी श्रीयुत पंचानन तर्क रत्न महोदय न्याय और वेदान्तादि दर्शनशास्त्र के एक प्रसिद्ध पण्डित एवं आचारनिष्ठ सद् ब्राह्मण व साधक हैं। यह सुनकर उन्होंने स्वयं को श्री सन्तदास जी महाराज के शिष्य के रूप में परिचय देकर तर्करत्न महोदय के निकट शास्त्र-अध्ययन की आकांक्षा जताई तथा पत्र के द्वारा उनकी अनुमति की प्रार्थना की। उनकी आज्ञा प्राप्त कर पुनः अध्ययन के निमित्त श्रीसन्तदासजी महाराज का आदेश प्राप्त करने हेतु वृन्दावन में पत्र दिया, श्रीगुरुदेव की अनुमति भी यथा समय मिल गयी। तब शुभ दिन देखकर भाटपाड़ा की ओर रवाना हो गये तथा वहाँ श्रीयुत पंचानन तर्करत्न महोदय के घर पर रहकर उनके पास शास्त्र-अध्ययन करना प्रारम्भ किया।

पहले ही कहा जा चुका है कि दीक्षा के समय बाबाजी महाराज को उनके गुरुदेव ने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-व्रत दिया था। तदनुसार

वह भाटपाड़ा जाकर प्रतिदिन तीन बार गंगा स्नान, त्रिसन्ध्या, आह्निक जप-ध्यान व स्वपाक-आहार करते थे। शास्त्र के अनुसार सारे आचार और नियम अत्यन्त-अत्यन्त निष्ठा के साथ पालन करते थे। तर्करत्न महोदय नवीन छात्र की आचार-निष्ठा, मधुर स्वभाव, पूत चरित्र, सुशील व्यवहार और उसमें सद् ब्राह्मणोचित सारे लक्षण देखकर एवं उसकी प्रतिभा, अपूर्व-धी-शक्ति तथा विद्या के प्रति लगन देखकर मोहित होकर बहुत थोड़े ही समय में उसके प्रति अत्यन्त आकृष्ट हो गये। तर्करत्न महोदय दर्शनशास्त्र के पण्डित होने पर भी काव्य में उनका विशेष अधिकार तथा व्युत्पत्ति थी, लेकिन वह किसी को भी काव्य नहीं पढ़ाते थे। उनको जब पता लगा कि बाबाजी महाराज काव्य की आद्य परीक्षा विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण करके आये हैं, तब स्वतः प्रवृत्त होकर उनको काव्य का मध्य पढ़ाना प्रारम्भ किया, इस प्रकार साल भर से अधिक समय भाटपाड़ा में रहकर बाबाजी महाराज ने वहाँ संस्कृत का अध्ययन किया तथा सन् १९२५ ई. में काव्य की मध्य परीक्षा में प्रथम श्रेणी में विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण हुए, काव्य की उपाधि-परीक्षा की पढ़ाई आरम्भ करने से पहले उनके गुरुदेव की ओर से निषेधाज्ञा आ गयी। उन्होंने लिखा–"साधु के लिए अधिक काव्यालोचना नुकसान दायक होती है, जहाँ तक काव्य-अध्ययन किया है, वह ही काफी है।" अतः गुरुदेव के आदेशानुसार उनका काव्य पढ़ना बन्द हो गया।

बाबाजी महाराज भाटपाड़ा में श्रीयुत पंचानन तर्करत्न महोदय के घर पर रहकर अध्ययन कर रहे हैं। यह समाचार जानकर उनके पूर्व अध्यापक पण्डित प्रवर श्रीयुत त्रिपथ नाथ काव्य-व्याकरण स्मृति-तीर्थ श्रीयुत पंचानन तर्करत्न महोदय के घर आकर उपस्थित हुए। उस समय बातचीत के दौरान उन्होंने पंचानन तर्करत्न महोदय से कहा कि बाबाजी महाराज जैसा

सर्वगुणों से अलंकृत चरित्रवान् और सुशील छात्र उनको कभी नहीं मिला तथा भविष्य में भी नहीं मिलेगा। अतः इस प्रकार के छात्र को इतनी कम उम्र में वैराग्याश्रम में प्रवेश करने देना, क़िसी भी तरह से युक्ति-युक्त नही है। अविलम्ब एक योग्य, सुन्दर, सुशील बालिका के साथ उनको परिणय-सूत्र में बाँधकर पुनः संसार-आश्रम में प्रवेश करवाना सभी प्रकार से उचित है तथा यह उन दोनों का आवश्यक कर्तव्य है। स्मृति-तीर्थ महोदय की तरफ से इस प्रकार का प्रस्ताव पाकर तर्करत्न महोदय अत्यन्त प्रसन्न हुए। तब उन दोनों ने मिलकर बाबाजी महाराज को विवाह करके संसाराश्रम में प्रवेश करने के लिए तरह-तरह से अनुरोध किया तथा अपने उपदेश के पक्ष में समर्थनकारी बहुत से शास्त्रों का अनुशासन तथा बहुत से शास्त्रीय दृष्टान्त उपस्थित किये। दोनों ही अध्यापक बाबाजी महाराज को पुत्र से बढ़कर स्नेह करते थे। उनके प्रति इन दोनों की आन्तरिकता में किसी भी तरह का लेश मात्र भी सन्देह नही था। बाबाजी महाराज भी अपने उक्त दोनों अध्यापकों को अत्यन्त श्रद्धा की आंखों से देखते थे तथा भक्ति करते थे। अतः ऐसे क्षेत्र में साधारण छात्र की हालत कैसी हो सकती है, वह अनुभव करना बिन्दु मात्र भी असम्भव नहीं है। लेकिन बाबाजी महाराज जैसे एक तरफ कोमलप्राण परदुःखकातर, गुरुभक्ति-परायण एवं दूसरी तरफ वैराग्ययुक्त नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रतधारी छात्र के मनोभावों को अनुभव करना सहज साध्य कर्म नहीं है। अतः उनके तत्कालीन आचरण के द्वारा उनको समझने की कोशिश करना ही युक्ति-संगत हैं। उन्होंने दोनों अध्यापकों के संसाराश्रम में पुनः प्रवेश करने के सम्बन्ध में शास्त्रानुमोदित सारी युक्तियों तथा उपदेशों को अविचलित भाव से धैर्य के साथ सुना। उसके बाद विनीत भाव से उनके उपदेशों के पालन में अपनी अनासक्ति जताते हुए उनको उस सन्दर्भ में क्षमा

करने की प्रार्थना की। उनके विनीत भाव तथा वैराग्याश्रम के प्रति प्रबल अनुराग देखकर दोनों अध्यापक विस्मित होने पर भी अत्यन्त प्रसन्न हुए एवम् उनके स्वधर्मानुष्ठान में पूर्ण सफलता के लिए आन्तरिक आशीर्वाद दिया। ऐसी कई परीक्षाओं में श्रीश्री बाबाजी महाराज श्रीगुरुदेव की कृपा से उत्तीर्ण हुए थे।

सन् १९२५ ई. में श्रीयुत बाबाजी महाराज खुलना जिले के दौलतपुर में संस्कृत चतुष्पाठी में भर्त्ती हुए। उस समय अध्यापक श्रीयुत यामिनी कान्त तर्क-तीर्थ महोदय वहाँ न्याय-शास्त्र पढ़ाते थे। उनके पास न्याय-शास्त्र के शब्द-खण्ड की आद्य व मध्य परीक्षा एक साथ देने के लिए पढ़ना प्रारम्भ किया। पहले ही कहा जा चुका है कि भाट-पाड़ा से तार पाकर उनके गुरु भ्राता दौलतपुर कॉलेज के अँग्रेजी के अध्यापक श्रीसुधीर गोपाल मुखोपाध्याय एम. ए. उनको दौलतपुर ले जाते हैं। दौलतपुर जाकर वह सुधीर बाबू के घर पर ही ठहरते हैं तथा तब से लगभग तीन वर्ष उनके ही घर पर रहकर अध्ययन करते हैं। सुधीर बाबू के घर पर रहते वक्त वह रात के ३ बजे शय्या त्यागकर शौच-स्नान आदि समाप्त कर जप-ध्यान आदि करते थे। उसके बाद श्री श्री ठाकुरजी की पूजा में बैठते थे। पूजा इत्यादि समाप्त करने में करीब ८ बज जाते थे। उसके बाद अध्ययन के लिए चतुष्पाठी जाते थे, अध्ययन समाप्त कर घर लौटने में किसी दिन १२ किसी दिन १ बज जाता था। सुधीर बाबू की पत्नी बीच-बीच में अपने पिता के घर जाने पर श्री श्री ठाकुरजी की सेवा, भोग की रसोई आदि सारे कार्य बाबाजी महाराज ही अपने हाथों से प्रेम के साथ करते थे। उस वक्त अपना जप-ध्यान-अध्ययन, श्री श्री ठाकुरजी की सेवा-पूजा और भोग की रसोई आदि सारे कार्य निष्ठा के साथ समाप्त कर प्रसाद पाते पाते २.३०-३.०० बज जाते थे। दौलतपुर जाने के बाद ही मलेरिया

के विष ने उनके शरीर में प्रवेश किया। हमेशा ही बुखार आता था। करीब एक साल तक इस प्रकार हमेशा बुखार से पीड़ित रहकर अत्यन्त कमजोर व अस्थिचर्म-सार हो गये। शरीर के प्रति कोई ध्यान नही था, रोग से पीड़ित कमजोर शरीर लेकर भी नित्य नैमित्तिक सेवा पूजा-जपध्यान इत्यादि कर्म तथा अपना पाठ-अभ्यास करना नही छोड़ते थे। उनके गुरुदेव के आदेशानुसार ही वह न्याय-शास्त्र के शब्द-खण्ड की आद्य व मध्य परीक्षा की पढाई एक साथ कर रहे थे। उन्होंने इस बात की चिन्ता नहीं की कि उनका कमजोर शरीर इस गुरुभार को बहन करने में असमर्थ है। लेकिन उनका सहृदय अध्यापक प्रिय छात्र की असहनशीलता का समर्थन न कर पाने के कारण उसका तीव्र प्रतिवाद किया। अध्यापक की आपत्ति का खण्डन करने में असमर्थ हुए। अन्तिम समाधान के लिए गुरुदेव के चरणों में दैहिक अस्वस्थता निवदेन करते हुए कर्तव्य-निर्धारण के लिए प्रार्थना जताई। उसके जबाब में श्री सन्तदासजी ने लिखा-"तुम्हारा शरीर अस्वस्थ है, वह भगवत् कृपा से ठीक हो जायेगा। जितना परिश्रम शरीर को सहन हो उतना ही परिश्रम करना उससे अधिक नही, अधिक कष्ट करने के लिए तो मैंने नहीं कहा है, शरीर अस्वस्थ होने पर तो कोई भी परीक्षा नही दी जा सकेगी। शरीर को जितना सहन हो, उतना परिश्रम करके यदि परीक्षा इस वर्ष दे सको तो देना, न दे सको तो मत देना, तुम्हारा पढ़ाई-लिखाई करके शास्त्र-विद् होना आवश्यक है, इसमें तुम्हारा कल्याण ही होगा तथा दूसरों का भी उपकार तुम्हारे द्वारा भगवान् करवा सकते हैं। इसीलिए तुमको परीक्षा देने के लिए कहा है।........इस क्षण के समय में शास्त्र-ज्ञान न रहने पर तथा शास्त्र-ज्ञान है, ऐसी धारणा मनुष्यों की न होने पर लोगों के बीच किसी विश्वास को स्थापित करना कठिन है, केवल सिद्धि

दिखाकर जो विश्वास उत्पन्न करते हैं, उसमें अपना विशेष नुकसान होता है।.......अध्ययन एवं अध्यापन इन दोनों कार्यों में ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण का व्रत रहना उचित है, कहकर श्रुति ने भी आदेश किया है। अतः तुमको अध्ययन के कार्य में नियुक्त किया है तथा लोगों के विश्वास के लिए इस क्षण के समय के नियमानुसार परीक्षा देने के लिए कहा है। तुम्हारे प्रथम अध्ययन का कार्य शीघ्र समाप्त करने के लिए दो परीक्षा एक साथ देने के लिए कहा है; क्योंकि मेरे शरीर की अन्तिम अवस्था आने के करीब है। तुम्हारी प्राथमिक पढ़ाई समाप्त होने पर अन्तिम शिक्षा स्वयं देकर जा सकूँ, वैसा ही करने की इच्छा है। तुम ये सब बातें स्थिर चित्त से विवेचना करके कार्य करना। शरीर खराब करके अतिरिक्त परिश्रम मत करना, जितना सहन हो उतना करके कर्म भगवच्चरणों में अर्पण करना, फलदाता वही हैं; वह इच्छा करने पर इस तरह की पढ़ाई से ही परीक्षा में उत्तीर्ण कर सकते हैं। इच्छा न करने पर नहीं भी कर सकते हैं। उसमें तुम्हारे सोचने का कोई कारण नही है। अपना कर्तव्य-कार्य करके ही सन्तुष्ट रहना।" (२५-११-१९२५)

इस पत्र को पढ़कर दो चिन्ताओं ने उनके मन पर अधिकार कर लिया। पहली गुरुदेव के शरीर की अन्तिम अवस्था आगतप्राय है; दूसरी-उनकी अन्तिम शिक्षा स्वयं देकर जाने की इच्छा करते हैं। गुरुजी ने उनको सारी बातें स्थिर चित्त से विवेचना कर कार्य करने का उपदेश दिया है। अतः प्राणों की बाजी लगाकर भी दोनों परीक्षायें एक साथ देकर शीघ्र जाकर गुरुचरणों में बैठकर अन्तिम शिक्षा ग्रहण करेंगे, ऐसा निश्चित कर दोनों ही परीक्षाओं के लिए प्रस्तुत होने लगे। अध्यापक की निषेध वाणी शिरोधार्य करने के लिए उनका गुरुगत प्राण स्वीकृत नहीं हुआ। इधर उनका शरीर दिनों दिन और भी खराब होने

लगा। बुखार से हमेशा ही पीड़ित रहते तथा कमजोरी भी क्रमशः ही बढ़ रही थी। लेकिन उनका इन सबकी तरफ ख्याल ही नहीं है। छात्र की हालत देखकर (दर्दी) अध्यापक का दिल रो उठा, छात्र को किसी भी तरह निरस्त न कर पाकर वह उनके गुरुदेव के शरणापन्न हो गये तथा उनको आत्महत्या जैसा कार्य करने से अलग करने के लिए विशेष रूप से अनुरोध किया।

अध्यापक का पत्र पढ़कर ही श्री सन्तदासजी ने उनकी मध्य परीक्षा देना बन्द कर दिया। शरीर को सँभालकर जितना सम्भव हो उतनी पढ़ाई कर केवल शब्द-खण्ड की आद्य-परीक्षा में प्रथम स्थान अधिकार कर सकें ऐसा प्रयत्न करने का भी उपदेश दिया। गुरुदेव के आदेशानुसार उन्होनें शब्द-खण्ड की केवल आद्य-परीक्षा ही दी। यह सन् १९२६ ई में हुई थी। परीक्षा का प्रश्न पत्र पाकर पहले वह कुछ देर अपने गुरुदेव का ध्यान करते थे, उसके बाद लिखना प्रारम्भ करते। उनकी कलम कमजोरी में भी बिना थकावट के चलती रहती थीं। सारा उत्तर न लिखे जाने तक उसका और विराम नहीं होता था। उनको लगता जैसे एंक अदृश्य शक्ति उनकी लेखनी का परिचालन कर रही है। परीक्षा के बाद उनके अध्यापक ने उनको बताया कि वह किसी तरह इस बार परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकते हैं। उनकी उत्तर पुस्तिका उन्होंने देखी है। अस्वस्थ शरीर लेकर उन्होने परीक्षा दी है। अस्वस्थता के कारण पढ़ाई-लिखाई भी वैसी नहीं कर पाये हैं। अतः अच्छे फल की आशा नहीं की जा सकती है। किसी भी तरह उत्तीर्ण होने पर ही वह खुश होंगे। उसके जबाब में बाबाजी महाराज ने दृढ़ता के साथ उनसे कहा-"यह आप क्या कह रहे हैं? मेरे गुरुदेव ने 'मैं प्रथम होऊँ' ऐसी इच्छा की है। देखना मैं प्रथम ही होऊँगा। गुरुदेव की इच्छा अन्यथा होने की सामर्थ्य नहीं है।"

इसके कुछ दिन बाद ही श्री सन्तदास जी महाराज वृन्दावन से कलकत्ता आये हैं, जानकर गुरु-सन्निधान में बास करने के लिए वह कलकत्ता चले आये एवं गुरुदेव और गुरु भ्राताओं के साथ आनन्द के साथ दिन बिताते रहे। इस तरह कुछ दिन बीतने पर श्रीसन्तदास जी महाराज ने अचानक एक दिन उनसे कहा-"तेरी परीक्षा का परिणाम कुछ जान पाया?" उन्होने जवाब में कहा-"गजट तो अभी नही हुआ है, गजट होने पर ही जाना जा सकेगा।"

कुछ दिन बाद ही गजट निकला, तब देखा गया कि सारे परीक्षार्थियों में वही सर्वप्रथम होकर दो वर्ष के लिए दो रुपये मासिक के हिसाब से एक वृत्ति प्राप्त की है तथा उनके अध्यापक श्रीयुत् यामिनी कान्त तर्क-तीर्थ महोदय ने उनका छात्र प्रथम आने के कारण आठ रुपये मासिक के हिसाब से एक वर्ष के लिए एक वृत्ति प्राप्त की है। सद्गुरु की इच्छा-शक्ति तथा उसमें शिष्य के दृढ़ विश्वास का फल दोनों का ही युगवत् प्रमाण हो गया।

इसके एक बर्ष पश्चात् सन् १९२७ ई. में उन्होंने न्याय के शब्दखण्ड की मध्य परीक्षा दी। पहले की भाँति इस बार भी उनके अध्यापक ने उनका प्रश्नोत्तर पढ़कर असन्तोष जाहिर किया। बाबाजी महाराज के भी पहले की भाँति इस बार भी परीक्षा में प्रथम होंगे कहने पर अध्यापक महोदय ने हँसकर उत्तर दिया-"वह किस तरह सम्भव होगा?" गजट में परिणाम निकलने पर देखा गया कि वह ही प्रथम हुए हैं तथा तीन वर्ष के लिए तीन रुपये के हिसाब से सब वृत्ति प्राप्त की है। उनके अध्यापक ने भी छात्र के कारनामे के लिए बारह रुपये के हिसाब से एक वर्ष के लिए एक वृत्ति प्राप्त की।

इसके दो वर्ष पश्चात् सन् १९२९ ई. में उन्होंने न्याय के शब्द खण्ड (ख विभाग) की उपाधि परीक्षा देकर प्रथम स्थान अधिकार

में किया तथा एक वर्ष के लिए सात रुपये मासिक के हिसाब से एक वृत्ति, दो रौप्य पदक एवं सरकार से पच्चीस रुपये का पुरस्कार प्राप्त किया। इस बार उनके अध्यापक महोदय ने एक सौ रुपये पुरस्कार प्राप्त किया।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज के गुरुदेव ने उनसे कहा था कि न्याय शास्त्र की आद्य, मध्य व उपाधि-परीक्षा समाप्त होते ही वह बाबाजी महाराज को अपने हाथों अन्तिम शिक्षा देंगे। अतः श्रीश्रीबाबाजी महाराज आद्य, मध्य व उपाधि ये तीनों परीक्षायें समाप्त कर वृन्दावन चले आये। वृन्दावन आकर उनके गुरुदेव के साथ मुलाकात होने के बाद ही घटना जो बाबाजी महाराज ने बतायी थी, वह उन्हीं की भाषा में नीचे दी जा रही है-

"बाबा (श्रीगुरुदेव) के पास जाते ही उन्होंने कहा, "बेटा ये तीनों परीक्षायें देने पर भी अनुमान खण्ड न पढ़ने पर न्याय शास्त्र में पूर्ण ज्ञान नही होता है। यह बाकी रह जाना ठीक नही है। अतः जाओ उस अनुमान खण्ड की उपाधि परीक्षा भी देकर समाप्त करके आओ।" तब मैंने उनसे कहा-"आपने ही तो कहा था- तीनों परीक्षायें समाप्त होने पर आप स्वयं मुझे अन्तिम शिक्षा देंगे। तब अबआप फिर यह क्या कह रहे हैं?" उस पर उन्होंने कहा-"नहीं जाओ" अनुमान खण्ड पढ़ना जरुरी है।"

उनके आदेश करने पर फिर दौलतपुर गया। लेकिन इस उपाधि परीक्षा के कई महीने पहले अत्यधिक परिश्रम होने के कारण दिमाग इतना गरम हो गया कि लगने लगा कि और बाबा (गुरुदेव) की बात नही सुनूँगा। उन्होंने मुझे इस कठिन शास्त्र के अध्ययन में जबर्दस्ती लगा दिया है। अब मैं और नहीं पढ़ूँगा। साधु होकर इस प्रकार के शुष्क शास्त्र को पढ़ने की कोई आवश्यकता नही है। मैंने

निश्चय किया कि अब और श्रीगुरुदेव के निकट न जाकर हिमालय जाकर वहाँ कठोर तपस्या करूँगा। उसके बाद रवाना होने का दिन निश्चित करके उसके दो दिन पहले बाबा को चिट्ठी लिखकर यह बात बता दी कि यहाँ से सीधा हिमालय चला जाऊँगा, आपके पास और नहीं जाऊँगा। चिट्ठी सिर्फ दो दिन पहले लिखने का उद्देश्य यही है कि वह खबर जाये, लेकिन उसका जवाब बाबा न दे सकें। जाने की व्यवस्था भी कर ली। लेकिन उस दिन जाने में विशेष बाधा पड़ने के कारण वहाँ कुछ दिन और रुकना पड़ा। इस हालत में बाबा की ओर से चिट्ठी आ पहुँची। उन्होंने लिखा-"भगवान् ने तुमको ग्रहण किया है, ग्रहण करके वह और परित्याग नहीं करते हैं।"

इस चिट्ठी को पाकर मेरी जिद और बढ़ गयी कि देखूँ कैसे भगवान् मेरा हिमालय जाना रोक सकते हैं। मैं उसी दिन रात के मेल से दौलतपुर से रवाना होकर दूसरे दिन सुबह शियालदा स्टेशन पर उतरा। उसके बाद हावड़ा स्टेशन जाने के लिए बस में चढ़ा। चितरंजन एवेन्यू के मोड़ पर बस रुकने पर हमारे एक विशिष्ट गुरु भाई श्रीयुत (गाड़ी परीक्षक) उस बस में चढ़कर मेरे सामने ही बैठ गये। मेरा माथा गरम हो जाने के कारण कुछ दिन पहले मैंने सिर की सारी जटायें काटकर फेंक दी थीं, इसी कारण पहले वह मुझे पहचान नहीं पाये; लेकिन बहुत देर तक मुझे देखते रहने के बाद अन्त में बोल उठे-"धनंजय दास हैं क्या? आप कहाँ जायेंगे? मैं हरिद्वार जाऊँगा कहने पर उन्होंने कहा, "हरिद्वार की गाड़ी तो रात को मिलेगी, अब शिवुपर में बाबू के घर जायें, वहाँ स्नान-भोजन आदि करके शाम के बाद हावड़ा स्टेशन आकर हरिद्वार जाना।" उसके बाद हावड़ा में उतरकर उस घर में जाने की अनिच्छा होने पर भी ऐसी घटना घटी कि वहाँ जाने को मजबूर हो गया। वह सब घटना यहाँ पर कहना अनावश्यक है।

शिवपुर में बाबू के घर पहुँचने पर उनकी माँ के अचानक मैं क्यों आया हूँ, कहाँ जाऊँगा पूछने पर, मैंने कहा 'हरिद्वार जाऊँगा' वह सुनकर उन्होंने कहा, "और कहीं मत जाना, या तो दौलतपुर लौटकर पढ़ाई-लिखाई कीजिए नहीं तो (अगर जाना ही है) श्री गुरुदेव के पास जाइये। पागलपन मत कीजिए।' बाबू की माँ मुझसे बहुत स्नेह करती थीं और स्नेह वश भलाई के लिए ही ऐसा कहा, वह मैं समझने पर भी, मैं हरिद्वार होकर हिमालय जाऊँगा ही यह दृढ़ मनोभाव मेरा है ही वह और उनको न बताकर चुप रहा ।

शाम के बाद प्रसाद पाकर हावड़ा स्टेशन आकर टिकट खरीदने गया, रुपये देकर हरिद्वार का ही टिकट माँगा मुझे ऐसा लगा, लेकिन मुझको दिया वृन्दावन का टिकट। तब मैंने कहा, "माँगा हरिद्वार का टिकट आपने मुझे वृन्दावन का टिकट क्यों दिया?" उन्होंने कहा, "आपने तो वृन्दावन का ही टिकट माँगा था।" उस टिकट को बदल कर वृन्दावन का टिकट देने का अनुरोध किया। वह राजी नहीं हुए। स्टेशन के दो प्लेटफार्म पर पास-पास दो गाड़ियाँ खड़ी थीं; एक देहरादून एक्सप्रेस; और दूसरी देहली एक्सप्रेस, उसमें वृन्दावन जाना पड़ता है। वृन्दावन का टिकट देने पर बहुत तर्क-वितर्क हुआ, लेकिन जब किसी तरह भी टिकट नहीं बदलेगा तब मन में सोचा इस टिकट से ही हरिद्वार चला जाऊँगा, उसके बाद जो होना है वह होगा। इतने में देहरादून एक्सप्रेस चल पड़ी। दौड़ लगाकर जाकर भी किसी भी तरह उस गाड़ी में नहीं चढ़ पाया। तब सोचा दिल्ली एक्सप्रेस से ही मुगल सराय जाकर दूसरी गाड़ी से हरिद्वार जाऊँगा। यह सोचकर दिल्ली एक्सप्रेस में ही चढ़ गया। रात में खूब भीड़ रहने पर सारी रात तथा दूसरे दिन भी बहुत देर तक खड़ा रहना पड़ा। मुगल सराय पहुँचने से कुछ समय पहले जगह मिलने पर सो गया। जब नींद टूटी तब देखा

गाड़ी इलाहाबाद छोड़कर चली आयी है। हरिद्वार जाने की और कोई सुविधा नहीं है, देखकर निश्चित किया कि वृन्दावन जाऊँगा और श्रीगुरुदेव के दर्शन कर उनकी अनुमति लेकर हरिद्वार जाऊँगा।

श्रीवृन्दावन पहुँचकर बाबा के पास जाते ही बाबा बोले, "आ गये ! कहाँ जाओगे?" तब उनकी चिट्ठी में लिखी-"भगवान् ने तुमको ग्रहण किया है, ग्रहण करके वह फिर परित्याग नहीं करते हैं; यह बात स्मरण हो गयी तथा घटना के द्वारा यह सत्य है, यह मुझको समझा दिया, ऐसी धारणा हुई, तब मैंने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। उस समय हमारी विशिष्टा ब्रह्मचारिणी गुरुभग्नी श्रीयुक्तादेवी बाबा के पास जाकर आश्रम मे थीं। मेरे प्रणाम कर उठने पर बाबा ने उनसे कहा-"धनंजय दास का माथा गरम हो गया है, कुछ दिन रात को चना भिगोकर सुबह गुड़ के साथ भीगे चने खाने को देना। उसके बाद प्रतिदिन ही स्नेह के साथ मधुर भाषा में शास्त्र-अध्ययन की आवश्यकता के सम्बन्ध में तरह-तरह के उपदेश देने लगे तथा थोड़ा समय बाकी है, किसी तरह धैर्य धारण करके परीक्षा देकर आरब्ध कार्य समाप्त करना चाहिए, न करने पर भोग रह जायेगा" ऐसा समझाने लगे। उनकी सेवा में भी लगा दिया, मैं उनकी सेवा करते वक्त अनेकों आध्यात्मिक प्रसंग छेड़कर उनके गुरुदेव के जीवन की अनेक घटना बताकर खूब आनन्द देने लगीं। उससे मैं अपने कष्ट की बात भूल गया। तब एक दिन उन्होंने कहा-"बेटा ! तुम्हारी परीक्षा के और ज्यादा दिन बाकी नहीं है। तुम्हारी चतुष्पाठी भी अब बन्द हो गयी है। अतः अब यहीं पर पढ़ो। इस वृन्दावन में ही श्री अमोलक राम शास्त्री तर्क-तीर्थ नामक एक नव्य न्याय के अनुमान खण्ड के पण्डित हैं, उनके पास जाकर इस छुट्टी के वक्त एक पाठ्य पुस्तक पढ़ लो।" बाबा के आदेश के अनुसार उन पण्डित जी के पास जाकर कुंसुमांजलि

नामक ग्रन्थ पढ़ा, लेकिन तृप्ति नहीं हुई। दौलतपुर की चतुष्पाठी खुलने पर फिर बाबा ने मुझको मधुर स्नेह पूर्ण भाषा में समझाकर दौलतपुर भेज दिया।

गुरुदेव की इच्छानुसार उन्होंने दौलतपुर जाकर न्याय शास्त्र का अनुमान खण्ड पढ़ना प्रारम्भ किया, अनुमान खण्ड के साथ और मध्य परीक्षा की सारी पाठ्य पुस्तकें अच्छी तरह से पढ़कर उपाधि परीक्षा के लिए तैयार होने लगे। आद्य व मध्य परीक्षा न देकर ही चार वर्ष बाद, १६३३ ई. में एक बार में उपाधि परीक्षा दी। उपाधि-परीक्षा में भी सर्वप्रथम होकर "तर्क-तीर्थ" उपाधि प्राप्त की तथा दो पदक तथा पच्चीस रुपये सरकारी वजीफा (वृत्ति) प्राप्त की थी। परीक्षा के बाद ही वह वृन्दावन चले गये, दौलतपुर फिर नहीं लौटे। इसीलिए पुरस्कार में प्राप्त दोनों पदक ग्रहण करने का और अवसर नहीं हुआ।

सन् १६३३ ई. में अनुमान खण्ड की उपाधि परीक्षा देने के बाद ही बाबाजी महाराज के दौलतपुर में वास तथा छात्र जीवन के ऊपर परदा गिर गया (यवनिका-पत्तन)। न्यायशास्त्र के शब्द-खण्ड और अनुमान-खण्ड की उपाधि-परीक्षा देने तक उनका करीब ८ वर्ष का समय लगा था, सन् १६२५ ई. में वह दौलतपुर संस्कृत चतुष्पाठी में भर्ती हुए थे तथा १६३३ ई. में वह छोड़ दिया।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज के दौलतपुर में अवस्थान-कालीन उनकी दैनिक दिनचर्या, **स्वभाव चरित्र,** अध्ययन इत्यादि के बारे में उनके अध्यापक श्रीयुत् यामिनी कान्त तर्क-तीर्थ महोदय लिख रहे हैं–"विशेष सौभाग्य के बल पर ही मुझे श्रीयुत धनंजय दासजी जैसे अन्तेवासी को पढ़ाने को पढ़ाने का सुअवसर मिला था, उन्होंने नवद्वीप में पण्डित प्रवर श्रीयुत् त्रिपथनाथ स्मृति-तीर्थ महोदय के पास व्याकरण में उपाधि तथा काव्य की मध्य-परीक्षा उत्तीर्ण होकर भट्टपल्ली के सुप्रसिद्ध पण्डित विविध विद्या-विशारद स्वर्गीय पंचानन तर्क-रत्न

महोदय के समीप न्याय-शास्त्र का अध्ययन आरम्भ किया। उस जगह उनके सम्प्रदाय का दूसरा कोई न होने के कारण अस्वस्थ होकर भी उनको ही अपने पथ्य इत्यादि की व्यवस्था करनी पड़ती थी। इस असुविधा के लिए उन्होंने अपने गुरु भ्राता दौलतपुर हिन्दू अकादमी के अँग्रेजी के अन्यतम अध्यापक श्रीयुत सुधीर गोपाल मुखोपाध्याय को उनको पढ़ाने के बारे में मेरी सम्मति जानने के लिए लिखा। सुधीर बाबू के मेरी सम्मति जानकर लिखने पर साधुजी दौलतपुर आकर पहले कुछ दिन सुधीर बाबू के घर पर ही रहे। सुधीर बाबू गृहस्थी थे। स्त्री-पुत्र के साथ वास करते थे। सम्भवतः वह साधुजी के मन-माफिक नहीं बैठता था, यह जानकर हिन्दू-अकादमी के प्रतिष्ठाता विख्यात व्यवहारजीवी स्वनामधन्य ब्रजलाल शास्त्री महोदय ने चतुष्पाठी के प्रांगणस्थित श्री श्री दधि वामन विग्रह के मन्दिर के बगल में स्थित एक कुटिया उनके लिए निर्दिष्ट कर दी। साधुजी रात के अन्त में शय्या त्यागकर (खन्ता) मिट्टी खोदने का यन्त्र लेकर मैदान में जाकर गढ्ढा खोदकर प्रतिदिन मल त्यागकर फिर उस गढ्ढे को मिट्टी से ढक देते थे। बाद में मुँह धोकर स्नान करके उपासना करते थे। सूर्योदय होने पर फूल तोड़कर पूजा का आयोजन करके नारायण की-पूजा करके पढ़ाई में मन लगाते थे। यथा समय भृत्य अलग अँगीठी में कोयला डालकर आग जलाकर बाहर रख जाता था। निर्दिष्ट समय पर अँगीठी जलने पर वह रसोई घर में जाकर भोग-रसोई करके स्नान के बाद नारायण का भोग लगाते थे। बहुत समय स्वयं बाहर आकर दरवाजा बन्द करके रखते थे। बाद में प्रसाद ग्रहण करते थे। भोजन के बाद विश्राम करके मेरे पास नया पाठ पढ़ते थे तथा दूसरे छात्रों के साथ भी आलोचना करते थे। खाली समय में धर्म-ग्रन्थ-पाठ एवं धर्म प्राण दो एक अध्यापक के साथ धर्म के सम्बन्ध में आलोचना भी करते थे।"

शिवपुर–आश्रम प्रतिष्ठा में प्रतिनिधित्व

निम्बार्कसंज्ञक - सुसम्मतसम्प्रदायः,
श्रीरामदास - घृतभूमविभूतिकायः।
श्रीसन्तदास-कृतिधन्य-धनञ्जयात्मा,
जीयादसौ जनमनस्तमसां विभेत्ता।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

न्याय-शास्त्र के अनुमान-खण्ड की सबसे अन्तिम परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर श्री बाबाजी महाराज ने तर्क-तीर्थ की उपाधि प्राप्त की तथा सन् १९३३ ई. में उनके अध्ययन-जीवन की समाप्ति हुई।

अब कुछ समय श्री गुरुदेव की सेवा में आत्मनियोग कर सकेंगे सोचकर उनको यथार्थ में ही आनन्द हुआ, उस समय शिवपुर के आश्रम-निर्माण का कार्य लगभग समाप्त होने पर आश्रम-मन्दिर में श्रीश्रीठाकुरजी की प्रतिष्ठा का दिन निश्चित् हुआ। श्रीश्री सन्तदासजी ने आश्रम का स्थान-निर्वाचन एवं जमीन खरीद कर बँगला १३३९ सन् के माघी श्रीपंचमी (वसन्त पंचमी) के दिन आश्रम-प्रतिष्ठा करेंगे निश्चित् किया। तब कार्तिक का महीना था। श्रीयुत कान्ति मजूमदार (कॉन्ट्रैक्टर) महोदय को आश्रम-निर्माण के कार्य में नियुक्त किया। बँगला १३३९ सन् के कार्तिक महीने की १४ तारीख भ्रातृ द्वितीया (भैया दूज) के दिन उन्होंने अपने हाथों से मन्दिर की नींव रखी। तब भी प्रतिष्ठा के ढाई महीने बाकी थे। इसीलिए कई दिन बाद स्वास्थ्य

की उन्नति के लिए वह मधुपुर चले गये। वहाँ दो महीने रहकर माघ महीने के प्रथम भाग में श्रीपंचमी से कुछ दिन पहले वह मधुपुर से शिवपुर-आश्रम में लौटे। जयपुर से श्री श्री राधाबिहारी जी की युगल मूर्त्ति, गरुड़जी की मूर्त्ति एवं महावीरजी की मूर्ति मँगाई गयी। श्रीवृन्दावन से दो शास्त्रज्ञ ब्राह्मण आये। महा धूमधाम और आडम्बर के साथ मन्दिर प्रतिष्ठा का कार्य आरम्भ हुआ।

श्रीश्रीसन्तदासजी की तब वृद्धावस्था थी। देहजीर्ण था। उसके ऊपर प्रतिष्ठा से पहले दिन लगातार दस्त लगने के कारण शरीर अत्यन्त कमजोर हो गया था। अतः गुरुदेव के प्रतिनिधि के रूप में बाबाजी महाराज को ही प्रतिष्ठा से सम्बन्धित पूजा का सारा कार्य करना पड़ा। इस सम्बन्ध में बाबाजी महाराज ने अपने गुरुदेव की जीवनी में लिखा है-"मैं तब केवल अध्ययन समाप्त कर बाबा के पास आया था। उन्होंनें मुझको ही उनके प्रतिनिधि के रूप मे प्रतिष्ठा से सम्बन्धित यज्ञ-कार्य मे व्रती होने का आदेश दिया। वह कैसा अदम्य उत्साह था। कैसी उन्मादना थी।" हबिगंज से श्री श्री बाबाजी महाराज और भी कई स्थानों पर पदधूलि देकर गुरु-पूर्णिमा से कुछ दिन पूर्व शिवपुर आश्रम पहुँचे। उस समय मैं दौलतपुरमें अध्ययन करता था। मेरी चतुष्पाठी (टोल) खुल जाने के कारण मुझे दौलतपुर चला जाना पड़ा। मैं दोलतपुर गया अवश्य था, लेकिन मेरा मन-प्राण सब कुछ दिन शिवपुर-आश्रम में श्री श्री गुरुदेव के श्रीपाद-पद्मों में पड़ा रहा।

ब्रह्मचारी शिशिर कुमार एवं मनोहर दास आदि साधु गुरु-भ्राताओं के मुँह से श्रीहट्ट और हबिगंज में गुरुपूजा का विवरण सुनकर कलकत्ता और शिवपुर के गुरु-भ्राताओं एवं आश्रम स्थित साधु गुरु-भ्राताओं की भी गुरुपूर्णिमा के उपलक्ष्य में शिवपुर-आश्रम में गुरु-पूजा करने की प्रबल इच्छा हुई। श्रीयुत बाबाजी महाराज से प्रार्थना करके

उनकी अनुमति ली गई। पूजा करने के लिए दौलतपुर से मुझे बुलाने की अनुमति माँगी गई। बाबा ने हँसकर कहा—"वह तो आने के लिए तैयार होकर बैठा है।"

गुरु-पूर्णिमा के उपलक्ष्य में आश्रम में गुरुपूजा का संकल्प बताते हुए मुझे आने के लिए तुरन्त दौलतपुर पत्र लिखा गया। जिस दिन मुझे पत्र प्राप्त हुआ उसी दिन रात की गाड़ी से गुरु-भ्राता श्रीयुत सुधीर गोपाल मुखोपाध्याय के साथ रवाना होकर दूसरे दिन सुबह शिवपुर आश्रम पहुँच गया। बाबाजी महाराज के निकट जाते ही वह मुझे देखकर हँसकर बोले—"चलो, बोटेनिकल-गार्डन से कमल के फूल ले आयें।" हम दोनों निकल पड़े। रास्ते में सुधीर बाबू से बोला—"वहाँ जो कड़े नियम हैं, हमें कमल के फूल नहीं देंगे।" वह बोले—"चलो, गुरुदेव का ध्यान करते हुए चलें, उसके बाद वहाँ जाने पर जो होना है होगा।" हम बोटेनिकल-गार्डन जाकर ड्यूटी पर तैनात कर्मचारी के पास जाकर अपना उद्देश्य और संकल्प बताकर कमल का फूल माँगा। उन्होंने हमारी सब बातें सुनकर अत्यन्त श्रद्धा के साथ आशातीत भाव से हमको कई तरह के कमल के फूल दिये। हम भी फूल लेकर आनन्दित मन से आश्रम लौट आये।

श्रीगुरु पूजा

पूर्णं भारतदेशमात्मगुरुणा सार्धं पदातिः गतः,
साक्षात् श्रीगुरुपूजनाय मिलितो भक्तैरमुष्यैः महः।
भक्त्याकारि यथा गुरुस्तुतिमयी पूजा, प्रसन्नो गुरुः,
याता नौस्तव रे धनञ्जय ! परं पारं वरं दत्तवान्।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

पूजा के वक्त पद्मासन में बैठे थे। उनको कमल के फूलों से सजाने की इच्छा से मैं मन्त्रोच्चारण करते हुए पैरों तथा शरीर के विभिन्न जगह फूल दे रहा था। कोई कोई फूल लुढ़ककर गिर जाता था। बाबा तुरन्त अपने हाथ से उसको उठाकर जिस जगह जो फूल रखना चाहिए, ठीक उसी तरह उसी स्थान पर फूल रख रहे थे। फूल देना समाप्त होने पर देखा गया कि बाबा ने फूलों की सजावट से एक अपरूप शोभा को धारण किया है। बाबा की मनोहर मूर्ति देखकर दर्शक-मण्डली विस्मय-विमुग्ध होकर एक दृष्टि से नयनानन्दकर रूप को निहारने लगी। बार-बार देखकर भी किसी को तृप्ति नहीं हुई। जितना ही देखते हैं। उतना ही और देखने की इच्छा होती है।

पूजा समाप्त होने पर बाबा की आरती कर मैं स्तुति-पाठ करने लगा। स्तुति पाठ के समय बाबा की आँखों से अविरल धारा से आनन्दाश्रु बहने लगे। मेरी भी आँखों से अविरक्त धारा से अश्रुपात होने लगा।

दिव्य-भाव का अपूर्व प्रभाव उपस्थित सभी के ऊपर विस्तृत हो गया। वहाँ पर ऐसा कोई भी नहीं रहा, जिसकी कि आँखें सजल

नहीं हुई हों; उस स्वर्गीय भाव का भाषा में वर्णन नहीं किया जा सकता। स्तुति-पाठ के बाद बाबा से कहा–"भोग ग्रहण करें।" बाबा बोले-"भोग तो ग्रहण किया है।" मैंने कहा–"नहीं बाबा, यह नहीं हो सकता, आप साक्षात् में हैं, खायें।" बाबा के चारों तरफ पर्दा लगाकर घेर दिया गया, बाबा ने हमारे प्रति खूब प्रसन्न होकर अपना बैठने का आसन प्रसाद स्वरूप मुझको दिया तथा बोले–"तुम्हारा खेया पास लग गया" (तुम्हारी नैया पार लग गयी)।

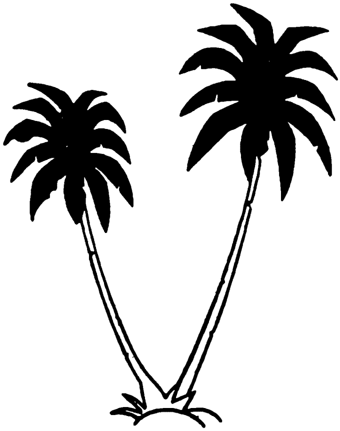

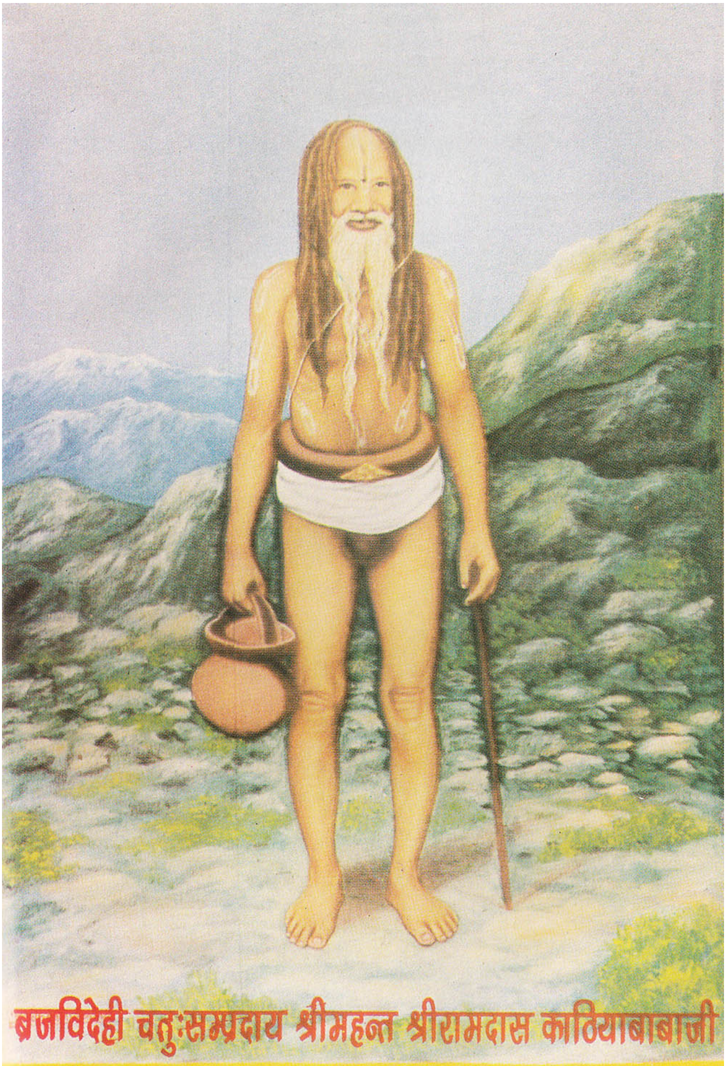

ব্রজবিদেহী ও চতুঃসম্প্রদায় শ্রীমহন্ত শ্রীরামদাসজী কাঠিয়া বাবা মহারাজ

श्रीश्रीरामदास काठियाबाबा के दर्शन

तत्राभवज्जगति कोऽपि मुनीन्द्रवर्यः,
श्रीरामदासपदभृद् ननु काठियाख्यः।
पर्यङ्कचालनविधौ प्रति रात्रदिवं,
भोगीद्वयं व्रजति सेवकतां स्म यस्य।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

बँगला १३४० सन् के बैशाख के महीने में उज्जयिनी में कुम्भ का मेला लगा, श्री श्रीसन्तदास जी तब अस्वस्थ थे, कुम्भ के मेले में जाने की शक्ति नहीं थी। इसीलिए उन्होंने अपने सर्वज्येष्ठ शिष्य श्रीयुत स्वामी अनन्त दास जी महाराज को अपने प्रतिनिधि के रूप में कुम्भ के मेले में भेजा। बाबाजी महारजा मुझसे बोले–"तुम्हारा भी कुम्भ के मेले में जाना जरूरी है, तुम भी जाओ।" शिप्रा नदी के किनारे समस्त भारत वर्ष के साधुओं का महा सम्मेलन होता है। उस बार भी हुआ था। निम्बार्क-सम्प्रदाय के ब्रज-विदेही महन्त के लिए निर्दिष्ट स्थान पर श्री श्रीसन्तदासजी द्वारा व्यवहृत छत्र के नीचे श्री श्रीअनन्त दासजी और बाबाजी महाराज ने अपना आसन स्थापित किया।

जयपुर के सिद्ध बाबा भी कुम्भ के मेल में आये थे। वह निम्बार्क-सम्प्रदाय के मुक्त एवं सिद्ध महापुरुष थे। उनके दर्शन करने के लिए एक दिन बाबाजी महाराज उनके छाते मे गये। दूसरी इधर-उधर की बातचीत के पश्चात् बाबाजी महाराज ने उनसे पूछा–"महाराज, सुना है कुम्भ के मेले में बहुत महात्मा, कोई सूक्ष्म देह में, या कोई

गुप्तरूप में आते हैं, काठिया बाबाजी महाराज आये हैं क्या?" सिद्धबाबा अत्यन्त तेजी के साथ बोले-"जरूर आया है और गोस्वामी प्रभु भी आया है।" इस पर बाबाजी महाराज बोले-"लेकिन मैं तो उनको नहीं देख पा रहा हूँ।" सिद्ध बाबा ने हँसकर कहा-"उनका तो हर वक्त तुम दोनों के पास आना जाना है। तुम्हारी दृष्टि नहीं है, इसलिए तुम्हें दर्शन नहीं मिलता है।" तब बाबाजी महाराज ने अत्यन्त कातर भाव से काठिया बाबाके दर्शन किस प्रकार मिल सकते हैं, उसका उपाय बताने के लिए सिद्ध बाबा से अनुरोध किया। उसके जवाब में सिद्ध बाबा ने उनसे कहा कि काठिया बाबा के दर्शन करने के लिए वह यदि सवा लाख जप कर सकें तभी उनके दर्शन होंगे।

यह बात सुनकर बाबाजी महाराज ने जप करना प्रारम्भ किया। जिस दिनउनका एक लाख जप पूर्ण हुआ उस दिन उन्होंने सुबह के वक्त शिप्रा नदी के किनारे होकर दूसरे एक छाते में जाते समय देखा दो साधु महात्मा विपरीत दिशा से उनकी ओर आ रहे हैं। उन दोनों के मुख पर मधुर हँसी थी। देखकर दोनों मानो कितने पुराने परिचित हों लेकिन कहाँ उनको देखा है, क्या उनका परिचय है, कुछ भी स्मरण नहीं कर सके। उन दोनों ने उनके पास आते हुए पूछा-"बच्चा गंगाजी जाने का पथ कौन है? इधर से जाने सकंगे?" बाबाजी महाराज जवाब में बोले-"यह तो रास्ता नहीं है। इधर कहाँ जाने पायेंगे? देख नहीं रहे इधर कैसे कँटीले पेड़ सब हैं? पैदल चलने का तो रास्ता ही नहीं है। बल्कि उधर से सदर रास्ते होकर जायें, इधर से जाने पर काँटे से शरीर क्षत-विक्षत हो जायगा।"

उन दोनों में जो अब तक बातचीत कर रहे थे वह बड़े तेज के साथ बोले-"काहे नहीं सकेंगे। इस तरफ से ही जायेंगे।" यह बात कहकर वे दोनों उसी कँटीले रास्ते पर ही चलने लगे तथा कुछ दूर

जाकर अचानक अदृश्य हो गये। उनके अदृश्य होने के बाद बाबाजी महाराज के मन में एक अनुभूति हुई एवं दृढ़ धारणा हुई कि वही काठिया बाबा हैं। बाद में जयपुर के सिद्ध बाबा से उन महात्माओं के बारे में बताने पर वह बोले-"वही तो काठिया बाबा, तुम्हारा दर्शन के लिए आया था।"

कुम्भ-मेला समाप्त होने पर बाबाजी महाराज वृन्दावन आश्रम में लौट आये तथा उसके बाद कलकत्ता श्रीगुरु जी के निकट चले गये। श्री श्रीसन्तदासजी उस समय शिवपुर-आश्रम मे रह रहे थे। उसके बाद भादों के महीने में गुरुदेव के आदेश पर वह ब्रज-परिक्रमा में गये।

श्रीगुरुजी की आज्ञा–पालन

ब्रजपरिक्रमासिद्धो ब्रजवासिभिरादृतः।
श्रीधनञ्जयदासोऽयं जयतादृभुवि सर्वदा।।
सन्तदासकृपापात्रं सन्तं परमशोभनम्।
वैराग्यमूर्तिमन्तञ्च वन्दे ब्रजविदेहिनम्।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

बँगला १३४० सन् के भादों के महीने मे जन्माष्टमी के बाद ब्रजपरिक्रमा का समय आ गया। श्री श्री सन्तदासजी की शारीरिक अस्वस्थता के कारण पहले लगातार ३/४ वर्ष बाबाजी महाराज के ज्येष्ठ गुरु भ्राता श्रीमत् स्वामी अनन्तदासजी ने अपने गुरुदेव के प्रतिनिधि महन्त के रूप में परिक्रमा का कार्य भली-भाँति सम्पन्न किया है। उस बार परिक्रमा से ३/४ महीने पहले ही उनको प्रबल वैराग्य उत्पन्न हुआ तथा साधन-भजन करने के उद्देश्य से वह नर्मदा के किनारे लगे हुए जंगल में चले गये। श्री श्री सन्तदासजी उस समय शिवपुर-आश्रम मे रह रहे थे तथा बाबाजी महाराज भी उनके साथ थे। परिक्रमा का समय करीब देखकर श्री श्री सन्तदासजी ने श्री श्री बाबाजी महाराज को परिक्रमा में जाकर महन्त के रूप में उनका प्रतिनिधित्व करने का आदेश दिया। तब बाबाजी महाराज ने अपने गुरुदेव से दीन-भाव से निवेदन किया कि इतना समय उन्होंने पढ़ाई-लिखाई को लेकर बिताया है, इन सब मामलों मे उनका कोई अनुभव भी नहीं है, उसके अलावा साधु-समाज के व्यावहारिक ज्ञान से भी वह अनजान हैं; अतः उनके ऊपर यह गुरु-भार न देना ही संगत है।

श्रीश्रीसन्तदासजी ने अपने पुत्र तुल्य शिष्य को आशीर्वाद देकर कहा–"बेटा तुम्हारी कोई भी चिन्ता नही है। मेरे गुरुदेव और ठाकुरजी तुम्हारे साथ-साथ हमेशा ही रहेंगे तथा सारी व्यवस्था वे ही करेंगे। गुरुदेव का आशीर्वाद लेकर बाबाजी महाराज वृन्दावन के लिए रवाना हो गये।"

इधर श्री श्रीसन्तदासजी ने भी वृन्दावन-आश्रम के तत्कालीन खजांची श्रीमत् स्वामी वंशीदासजी को एक पत्र लिखकर भेजा। उसका सार इस प्रकार था–"मैं धनञ्जय दास को महन्त निर्वाचित कर भेज रहा हूँ। वही इस बार मेरे प्रतिनिधि के रूप में ब्रज-परिक्रमा में जायेगा। अनन्तदास यदि इस बीच आश्रम में लौटकर आता है, तब भी धनञ्जय दास महन्त के रूप में परिक्रमा में जायेगा।"

इधर ब्रज-परिक्रमा आरम्भ हो गयी। महन्त के रूप में बाबाजी महाराज परिक्रमा मे गये थे। जगह-जगह प्राचीन सिद्ध महात्मा उनको साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम करने लगे। वह भी फिर भाव में तन्मय होकर बाबाजी महाराज ने तब अपने गुरुदेव के वाक्य की सत्यता को हृदयंगम किया।

परिक्रमा में खूब आनन्द होने लगा। प्राकृतिक आपदा भी बिल्कुल नहीं हो, ऐसी बात नही थी। जगह-जगह तेज तूफानी बरसात हुई। छाते या त्रिपाल जैसे जितने ढँकने के साधन थे, वे सब जगह-जगह से फट गये थे, लेकिन ये सब आपदाएँ बाबाजी महाराज के पास कष्ट के रूप में नहीं आईं। उन्होंने आनन्द में ही दिन बिताये थे।

परिक्रमा में डींग नामक स्थान पर बाबाजी महाराज ने आसन स्थापित किया था, संग में अनेक नागा साधु थे। ये थोड़े उग्रप्रकृति के थे, साधु-सन्तों के ऊपर तरह-तरह के अत्याचार करते थे तथा मौका मिलते ही उनका सामान लूटकर ले जाते थे। अतः दूसरे साधु-सन्त

इनके ऊपर असन्तुष्ट थे। अधिकारी शीतल दासजी नामक एक साधु बाबाजी महाराज के अधीन रहकर परिक्रमा का सारा कार्य संचालन करते थे। एक दिन नागाओं ने दही की हाँड़ी उनके ऊपर फोड़कर तमाशा किया तथा उनके साथ झगड़ा आरम्भ कर दिया। इससे दल के सारे साधु सन्त अत्यन्त क्रोधित हो गये। उन सभी ने मिलकर बाबाजी महाराज से इसका विशेष प्रतिकार (रोकथाम) करने का अनुरोध किया। उन्होने समवेत साधु-मण्डली से कहा कि उन सभी की शक्ति से ही वह शक्तिमान है। इसके अलावा वहाँ बहुत से प्राचीन विज्ञ साधु महापुरुष उपस्थित हैं, वे सभी मिलकर जो कर्तव्य निश्चित करेंगे वह वैसी ही व्यवस्था करेंगे। उनकी अपनी स्वतंत्र कोई इच्छा नहीं है। तब सभी साधु-सन्तों ने मिलकर एक मत होकर फैसला किया कि वे नागाओं के साथ चलने, फिरने, खानपान, आचार-व्यवहार में किसी भी तरह का मेलजोल का भाव नहीं रखेंगे। एक ही बात कि नागाओं के साथ सभी प्रकार के सम्पर्कों से रहित होकर वे परिक्रमा सम्पूर्ण करेंगे। श्री श्रीबाबाजी महाराज ने साधु-मण्डली के इस प्रकार के सिद्धान्त में सम्मति देकर कहा कि वे सभी एक मत होकर तथा एकता बनाये रखकर यदि चल सकें तो दूसरी किसी की भी किसी प्रकार की गड़बड़ी फैलाने की क्षमता या हिम्मत नहीं होगी।

द्वितीय अध्याय
महन्त पद की प्राप्ति

निम्बार्काश्रमिणां महत्तमपदं प्राप्य त्रयत्रिंशति-
अष्टत्रिंशति पूर्णकुम्भसमये ईश्ब्यां हरिद्वारके।
सद्दत्ताप्तमहत्तमद्वयपदो नाम्ना विदेही-चतुः,
सम्प्रदायकमोर्बभौ हि गुणिनां शुश्रुषते सत्पदम्।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

बंगला १३४० सन् के पौष के महीने में श्री श्री सन्तदासजी ने आश्रम-कमेटी के महानुभावों को बताया कि उनका शरीर प्राचीन तथा रोग-जीर्ण हो गया है। आश्रम का महान् दायित्व वहन कर चलना उनके लिए और सम्भव नहीं हो रहा है। भविष्य के लिए एक महन्त का अभी निर्चाचन करना जरूरी है। उनके शरीर छोड़ने का समय भी क्रमशः समीप आ रहा है। कमेटी के महानुभावों में से कुछ एक ने ऐसी इच्छा प्रकट की कि अनन्तदासजी उनके प्रथम साधु चेला हैं, अतः महन्त की गद्दी न्याय तथा धर्म के तौर पर उन्हीं को मिलनी चाहिए। दूसरे कई एक महानुभावों ने प्रथमोक्त महानुभावों के इस प्रस्ताव का समर्थन भी किया। श्री श्रीसन्तदासजी को कमेटी की इच्छा से अवगत कराया गया, उन्होने कहा–"ठीक, अच्छी बात है। अब अनन्तदास का समर्थन लेकर आओ।"

इधर अनन्तदास जी मंहन्त होंगे सुनकर आश्रम के साधुओं में बहुत से ही असन्तुष्ट थे, क्योंकि वह अत्यन्त कठिन विधि-अवस्था करते हैं तथा उनका शासन भी बहुत उग्र है। इसीलिए आश्रमवासी

साधुओं में बहुत से साधु ही उनके प्रति प्रसन्न या प्रीति-भाव लिए हुए नहीं थे। इससे पहले भी एक बार जब अनन्त दासजी को महन्त बनाने का प्रस्ताव पारित किया गया, तब भी कई साधु अपना बोरी-बिस्तर बाँधकर आश्रम छोड़कर चले जाने को तैयार हो गये थे। श्री श्रीसन्तदासजी को पता चलने पर उन लोगों को निरस्त कर दिया।

खैर जो भी हो, कमेटी के कार्य-कर्ताओं ने अनन्तदासजी को अपनी इच्छा बतायी। अनन्तदासजी उस समय मौन-व्रत धारण किये हुए थे। वह अपने साधु गुरु-भ्राताओं की इच्छा समझ गये। अतः कमेटी के प्रस्ताव पर वह किसी भी तरह राजी नहीं हुए। उन्होंने साफ तौर पर कमेटी को बता दिया कि वह इन सब महान् दायित्वों के भीतर नहीं रह सकेंगे। वह घर-बार छोड़कर साधु हुए हैं, साधन-भजन ही उनके जीवन का व्रत है। आश्रम तो एक बड़ा संसार है। इन सब झमेलों में वह कैसे भी नहीं जायेंगे। वह शान्ति के साथ और बिना किसी झमेले के रहना चाहते हैं इत्यादि।

कमेटी के कार्यकर्ता अपनी कोशिश में विफल मनोरथ होकर बाबाजी महाराज से आकर बोले कि वह एक बार यदि प्रयास करें तो अनन्त दासजी शायद राजी हो सकते हैं। बाबाजी महाराज ने पुनः जाकर अनन्तदासजी को कमेटी के अनुरोध के बारे में बताया तथा उन्होंने स्वयं भी उनको महन्ताई लेने के लिए विशेष रूप से दबाव डाला। अनन्तदासजी ने उनको लिखकर बताया कि यदि उनकीइच्छा के विरुद्ध उनको महन्त के पद पर अभिषिक्त किया गया तो वह आत्महत्या करेंगे। उसकी अपेक्षा बल्कि वही (अर्थात् बाबाजी महाराज ही) महन्त बन जायें। वह योग्य पात्र हैं। वह उनको अत्यन्त स्नेह करते हैं तथा दूसरे साधु गुरु भ्राताओं के भी वह श्रद्धा के पात्र हैं। महन्त बनने पर वह स्वयं एवं सारे गुरु भ्राता लोग भी खूब आनन्दित होंगे।

बाबाजी महाराज ने आकर अपने गुरुदेव तथा कमेटी के कार्य-कर्ताओं को अनन्तदासजी की सब बातें बतायीं। अनन्तदासजी का अभिमत जानकर तब कमेटी के कार्य-कर्ताओं ने आकर श्रीश्री सन्तदासजी से कहा कि वे सभी एक मत होकर बाबाजी को ही महन्त बनाना चाहते हैं। श्री श्री सन्तदासजी ने उन लोगों से कहा कि "तुम सब जो अच्छा समझो वही करो।" उनके महन्त पद पर निर्वाचन के बारे में सभी एक मत हो गये हैं, समझने पर बाबाजी महाराज अपने गुरुदेव से बोले-"बाबा; इतने बड़े पद को ग्रहण करने की मेरी कोई भी योग्यता नहीं है। उसके अलावा साधु-समाज के आचार-व्यवहार तो मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ और किसी भी योग्यतर पात्र को आप यह गुरु भार सौंपें।"

इस बात को सुनकर श्री श्री सन्तदासजी के मुख पर असहायता की छाया फैल गयी, दृष्टि में मानो कितनी गहरी आवेगपूर्ण कातर प्रार्थना थी। एक छोटे बच्चे को किसी एक सुनसान जगह पर अकेले बैठाकर चले जाने का प्रयास करने पर उस बच्चे के चेहरे तथा आँखों में जो असहाय भाव दिखाई पड़ता है; श्री श्री सन्तदासजी का उस समय का भाव भी बहुत कुछ वैसा ही था। तब उन्होंनें बाबाजी महाराज को समझाकर कहा कि यदि वह यह दायित्व ग्रहण नहीं करते हैं तो सम्पूर्ण आश्रम नष्ट हो जायेगा, उनके गुरुदेव की सारी सृष्टि नष्ट हो जाये, क्या यही वह चाहते हैं? श्री गुरुदेव की इस बात पर तथा उनका भाव देखकर उनके दरदी पुत्र के प्राण रो पड़े। वह महन्त पद ग्रहण करने को राजी हो गये।

महाआनन्द और व्यापक आयोजन के साथ अभिषेक की सारी तैयारियाँ आरम्भ हुईं। प्रधान-प्रधान महन्तगण, बड़े-बड़े साधु-

महात्मा लोग निमन्त्रित होकर आश्रम में आये। महन्त की गद्दी सुसज्जित हुई। बाबाजी महाराज महन्त का आसन अलंकृत करके बैठे। चादर ओढ़ाना आरम्भ हुआ। श्री श्री सन्तदासजी ने पहले आकर अपने सबसे प्रिय पुत्र को आशीर्वाद दिया, विजय तिलक माथे पर लगा दिया। बाबाजी महाराज आवेग पूर्णकण्ठ से बोले–"बाबा आपने जो महान् दायित्व मेरे ऊपर दिया है, आशीर्वाद दें जिससे वह सुचारु रूप से वहन कर सकूँ।"

श्रीश्रीसन्तदासजी ने अपने स्नेहपूर्ण स्पर्श से बाबाजी महाराज को शान्त करते हुए कहा–"बेटे, तुम कोई चिन्ता मत करो। श्रीश्री ठाकुरजी और मेरे गुरुदेव हमेशा ही तुम्हारे साथ-साथ रहेंगे। किसी दिन तुम्हें किसी प्रकार की कोई कमी या कोई असुविधा नहीं होगी। तुम तनिक भी फिक्र मत करो। गुरुदेव के आशीर्वाद से उनका मन कुछ शान्त हुआ।"

दूसरे महन्त व साधु महात्माओं ने एक-एक करके आकर चादर ओढ़ाया। उनके माथे पर टीका कर अपनी शुभकामनाएँ व्यक्त कीं एवं उनकी मंगलकामना करते हुए जय-ध्वनि करने लगे। जब यह अनुष्ठान समाप्त हुआ तब बाबाजी महाराज ने अपने गुरुदेव को साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम किया, प्रणाम कर उठकर खड़े होते ही उनके गुरुदेव उनसे बोले–"बेटे, तुम मेरे गुरुदेव के नाम का प्रचार करो।"

गुरुदेव के मुख से इस प्रकार का आदेश सुनकर वह तो स्तम्भित रह गये। बाबाजी महाराज बोले–"बाबा, मेरी तो कोई सामर्थ्य ही नहीं है, लेकिन आप यदि मेरे द्वारा करवा लें तब दूसरी बात है।" मधुर हँसकर श्री श्री सन्तदासजी बोले–"बेटा, मेरे गुरुदेव तुम्हारे द्वारा यह दिव्य कार्य करवा लेंगे।"

कानून की नजरों में कार्य सिद्ध और सम्पूर्ण करने के उद्देश्य से श्रीश्रीसन्तदासजी ने दस्तावेज बनवाया। श्रीश्रीसन्तदासजी दस्तावेज पर दस्तखत किये, बाबाजी महाराज ने भी दस्तखत किया। अनन्तदासजी को साक्षी के रूप में हस्ताक्षर करने के लिए कहने पर पहले उन्होंने मना कर दिया, लेकिन बाद में जब उनके गुरुदेव ने उनके उस दस्तावेज पर दस्तखत करने के लिए कहा, तब उन्होंने उस दस्तावेज पर दस्तखत किया। अनुष्ठान महाआनन्द के साथ सुसम्पन्न हुआ।

प्रयाग कुम्भ में शास्त्रार्थ व विष्णु यज्ञ में वेदान्त पर भाषण

नानाशास्त्रविशारदः श्रुतिधरः सत्कर्णधारो महान्,
शिब्यास्तान् कलिराजदूषितधियः क्लिष्टाश्च पश्यन् मुहुः।
शास्त्रार्थंगुरुदत्तशक्तिविभवात् व्याख्याय तद्भाषया,
शिष्याणां हितसाधनं च कृतवान् श्रीसद्गुरुं तं नुमः।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

बँगला १३४२ सन् के कार्तिक के महीने में श्री श्री दादा गुरु का देहावसान होने पर उस वर्ष माघ के महीने में श्रीयुत् बाबाजी महाराज महन्त के रूप में पहली बार कुम्भ मेले में प्रयाग आये। श्री श्री बाबाजी महाराज के उस बार कुम्भ मेले में आने से पहले, बँगला १३४२ सन् के आश्विन् महीने के अन्तिम भाग में, श्री श्री दादा गुरुजी महाराज ने श्री श्री बाबाजी महाराज को एक विशेष निर्देश देकर श्री वृन्दावन निम्बार्क-आश्रम के श्रीयुत वंशीदास जी को एक चिट्ठी लिखी थी, उन्होंने उनको चिट्ठी में लिखा था-"इस बार प्रयाग में जो कुम्भ मेला होगा, सुना है संन्यासी-सम्प्रदाय इत्यादि की तरफ से मेरे द्वारा लिखित 'भेदाभेद-सिद्धान्त' पुस्तक की विशेष समालोचना होगी। उनमें से कोई-कोई इस ग्रन्थ के पक्षपाती हुए हैं। जिससे सभी सम्प्रदायों में मेल हो सके, उसकी विशेष कोशिश होगी। अतः श्रीमान् धनञ्जयदास से कहना, वह इस ग्रन्थ का आद्योपान्त तैयार करके रखे तथा साधारणतया वेदान्त-दर्शन अच्छी तरह पढ़ना आवश्यक है, किसी भी

विषय पर विचार उपस्थित होने पर अप्रस्तुत न रहे, मेरी मेले में जाने की सामर्थ्य होगी, ऐसा मैं नहीं देख पा रहा हूँ, अतः उसे विशेष रूप में तैयार होना चाहिए..........।"

कहना न होगा श्रीश्रीबाबाजी महाराज इस सन्दर्भ मे विशेष रूप से तैयार होकर ही गये थे तथा उनकी वह तैयारी कुछ काम में भी आयी थी।

उस बार शंकर-सम्प्रदाय के विशिष्ट संन्यासी विख्यात अद्वैतवादी पण्डित महाराज ने एक दिन बातचीत के दौरान जयेन्द्रपुरी से उनके मत में अद्वैतवाद की व्याख्या करने का अनुरोध किया। जयेन्द्रपुरी ने जवाब मे कहा-"ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या, यही अद्वैतवाद का चरम सिद्धान्त है।" बाबाजी महाराज ने पुनः प्रश्न किया-"तो फिर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस श्रुति वाक्य का क्या अर्थ है? यदि जागतिक सभी कुछ मिथ्या है, तो सबकुछ ब्रह्म का रूप है, इस बात का क्या तात्पर्य है?" इस पर जयेन्द्रपुरी कुछ हेकड़ी भरे स्वर में बोले-"आप ये सब जटिल और दुर्बोध्य विषय अब भी नहीं समझेंगे। कुछ समय मेरे पास वेदान्त का अध्ययन करें तो कुछ धारणा कर सकते हैं।" श्रीयुत् जयेन्द्रपुरी की बात के जवाब में श्री श्री बाबाजी महाराज बोले-"श्रुति में कहा गया है-'सदैव सौम्य इदमग्र आसीत्'- अर्थात् हे सौम्य, सृष्टि के पूर्व यह जगत् सद्रूपी ब्रह्म में सत्स्वरूप में ही वर्तमान था। श्रुति में यहाँ जगत् को सत् ही कहा है, असत् या मिथ्या नहीं कहा है, लेकिन आप जब कहते हैं कि जगत् मिथ्या है, तब आपके पास वेदान्त पढ़ने से क्या फायदा होगा? आप तो श्रुति के विरुद्ध बात ही सिखायेंगे?"

....इत्यादि, पण्डित प्रववर जयेन्द्रपुरी नहीं जानते थे कि उन्होंने जिनके सामने पाण्डित्याभिमान से स्फीत होकर अपनी ज्ञान-गरिमा

का प्रकाश किया, वेदान्त शास्त्र पर उनका अधिकार कितना अपरिमित है। वह नहीं जानते थे कि साधना और तत्वं-ज्ञान कुछ भी उनके लिए अलब्ध नहीं है, शुष्क-तार्किक सुलभ विद्या के जान्कार नहीं, बल्कि वेदान्त मूर्तिमान् होकर इनके ज्ञान के भण्डार में विराजित है।

बँगला १३५२ सन् के कार्तिक के महीने में अनन्तदासजी का देहावसान हुआ। उनके देहावसान के बाद उनके इच्छानुसार श्री वृन्दावन आश्रम में एक सप्ताह तक चलने वाले एक विष्णुयज्ञ का अनुष्ठान हुआ। उसमें भारत वर्ष के समस्त प्रधान-प्रधान विख्यात पण्डित, दार्शनिक और साधुओं ने निमन्त्रित होकर योगदन किया। उस विष्णु-यज्ञ की सभा में दूसरे सज्जनों के बीच विख्यात नैयायिक पण्डित प्रवर श्रीयुत् यामिनीकान्त तर्क-तीर्थ महोदय, काशी के विख्यात पण्डित प्रवर श्रीयुत वामाचरण न्यायाचार्य महोदय एवं अगरतला के महाराजा वीर विक्रम बहादुर इत्यादिभी उपस्थित थे। यज्ञ में पूर्णाहुति देने के बाद निमन्त्रित समस्त पण्डित और साधु-मण्डली को लेकर एक विशाल सभा का आयोजन हुआ है। उक्त सभा में बाबाजी महाराज ही सभापति का आसन अलंकृत करते हैं। उपस्थित पण्डित-मण्डली में से बहुतों ने धर्म से सम्बन्धित ही विविध प्रसंगों पर प्रांजल भाषा में भाषण दिया। सब का भाषण होने के बाद पण्डित-मण्डली की ओर से वेदान्त के सम्बन्ध में कुछ बोलने के लिए बाबाजी महाराज को विशेष रूप से अनुरोध किया गया। बाबाजी महाराज ने पहले कभी भाषण नहीं दिया था, भाषण देने का अभ्यास भी उनको कभी नहीं था। स्वयं की आहूत सभा में निर्वाचित सभापति के रूप में उनके ही निमन्त्रित सम्मानित अतिथि, भारत-विख्यात दार्शनिक, नैयायिक इत्यादि पण्डितों के सादर अनुरोध की वह उपेक्षा न कर सके।

उन्होंने अपने स्वाभाविक सुमधुर स्वर में प्रांजल हिन्दी में लगभग डेढ़ घन्टे तक वेदान्त की व्याख्या की। भाषण समाप्त होने के बाद सभी श्रोता एक वाक्य में उनके भाषण की बार-बार प्रशंसा करने लगे। बाबाजी महाराज के विद्यार्थी जीवन के विज्ञानी अध्यापक भी उस सभा में निमन्त्रित होकर उपस्थित थे। उन्होंने कहा कि वेदान्त का अध्ययन और आलोचना उन्होंने जीवन में बहुत किया है, लेकिन इस प्रकार की सार गर्भित, सहज बोध्य और सुन्दर वेदान्त की आलोचना उन्होंने और कभी नहीं सुनी है।

वेदान्त का जटिल तत्त्व इस प्रकार सुन्दर तरीके से प्रकाश डाला जा सकता है, यह ज्ञान उनको इससे पहले नहीं था। ऐसा अनूठा व्यक्त करने का तरीका, सुन्दर और सुमधुर भाव देखकर, मनोहर वाक्चातुर्य एवं प्रांजल भाषा सुनकर उनको लग रहा था कि उस दिन उन्होंने नये ढंग से वेदान्त को सुना व समझा।

हरिद्वार में कुम्भ-मेला तथा श्री महन्ताई की प्राप्ति

श्रीश्रीमहान्तं वैष्णवचतुःसम्प्रदायस्य ब्रजविदेहिनम्,
सर्वशास्त्रज्ञं महावोधि जगद्धितायावतीर्णं भुवि।
सदानृनाद् रक्षितोऽयं त्वया सेवकस्ते गुरुपूर्णिमातिथौ,
नित्यध्यायमतुलनं त्वां प्रणमामि साष्टाङ्गपातम्।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

प्रयाग के कुम्भ के तीन वर्ष बाद बँगला १३४५ सन् के वैशाख के महीन में हरिद्वार में कुम्भ का मेला लगा था। चिराचरित प्रथा के अनुसार हरिद्वार में कुम्भ का मेला प्रारम्भ होने के कम-से-कम दो महीने पहले वसन्त पंचमी के दिन से श्री वृन्दावन में यमुना के किनारे वैष्णव-सम्प्रदाय के साधुओं का जमाव होता है। भारत के चारों तरफ से आये हुए अगणित साधु यमुना-किनारे एक महीने से अधिक समय तक रहते हैं। इस साधु-जमात को "वृन्दावन का अर्द्ध-कुम्भ" कहा जाता है। केशीघाट से लेकर पानी-घाट तक यमुना के विस्तृत मैदान में उक्त अर्द्धकुम्भ-मेला लगता है। साधारणतया वसन्त पंचमी के दिन से प्रारम्भ होकर होली की पूर्णिमा तक यह मेला लगता है। उसके बाद साधुओं की जमात टूट जाती है। साधुगण हरिद्वार जाकर कुम्भ-मेले में योगदान करते हैं। यही प्राचीन परम्परा है।

उस बार भी कुम्भ-मेले से पहले बँगला १३४४ सन् के फाल्गुन, चैत्र के महीने में श्रीवृन्दावन में अर्द्धकुम्भ का मेला लगा। इस

समय तक श्री श्री बाबाजी महाराज ने ब्रजविदेही श्रीमहन्त का पद प्राप्त नहीं किया था। फिर भी श्री श्री दादागुरु जी के स्थलाभिषिक्त महन्त के रूप में इस साधु-मेला में उनकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी थी। आये हुए चार-सम्प्रदाय-खालसा के साधुओं को एक महीने तक भोजन कराना उनका अवश्यकरणीय कर्म है, क्योंकि इस समय के लिए साधुगण उन्हीं के अतिथि के रूप में होते हैं। हजार-हजार साधु आते हैं। इन सभी साधुओं के भोजन की व्यवस्था तथा आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति करनी पड़ती है ब्रज विदेही महन्त को। ब्रज विदेही महन्त की आकाश वृत्ति होती है। उसकी कोई भी सम्पत्ति नहीं है, कोई संचय भी नहीं है। बाबाजी महाराज की भी आकाश वृत्ति थी। वसन्त-पंचमी के दिन बाबाजी महाराज ने यमुना किनारे अपने निर्दिष्ट स्थान पर जाकर आसन जमाय तथा एक महीने से अधिक समय वहाँ साधु-जमात के बीच वह रहे। उनकी छावनी में हजार हजार साधुओं की सेवा का बंदोबस्त हुआ। रन्धनशाला एक विशाल यज्ञशाला में बदल गई। उस यज्ञ में प्रतिदिन आहुति होती थी, नारायण के सहस्राधिक मूर्ति के भोग की। वृन्दावन के अर्द्ध-कुम्भ का समय होता है वसन्त-ऋतु में। बसन्त-ऋतु में दोल पूर्णिमा व होली का समय, ब्रज की होली का उत्सव प्रसिद्ध है। इस प्रकार का उत्सव केवल भारत ही क्यों, पृथ्वी में कहीं पर भी दिखाई नहीं पड़ता है। वसन्तोत्सव वसन्त पंचमी के दिन आरम्भ होता है तथा होली की पूर्णिमा के दिन समाप्त होता है। श्रीकृष्ण की लीला-भूमि श्रीवृन्दावन इस समय नया रूप धारण करती है। प्रकृति देवी नये वस्त्र पहनती है ब्रजांगनागण उत्सव प्रमुख होती हैं। अगणित भक्त-गणों के आगमन से यमुना का किनारा नया रूप धारण करता है।

सारी ब्रजभूमि में एक महीने तक आनन्द का हिल्लोल प्रवाहित होता रहता है। वह भाव, वह दृश्य, वह जागरण उपभोग्य तो

हो सकता है, लेकिन वर्णनीय नहीं। निम्बार्क-आश्रम की यज्ञशाला में प्रतिदिन 'हरि-हर' शब्द की ध्वनि होते ही निर्दिष्ट भोजन के स्थान पर साधु-समागम होता रहता है। तब चारों तरफ केवल 'दीयतां भुज्यताम्' होता है।

वृन्दावन में अर्द्ध-कुम्भ की समाप्ति पर बँगला १३४४ सन् के चैत्र महीने के अन्त में श्रीयुत बाबाजी महाराज ने दल-बल के साथ हरिद्वार गमन किया तथा चार-सम्प्रदाय खालसा के लिए निर्दिष्ट स्थान पर निम्बार्क-सम्प्रदाय की छावनी में एक बड़े छत्र के नीचे अपना आसन स्थापित किया, इस बार इस हरिद्वार-कुम्भ-मेले में (बँगला १३४५ सन् वैशाख) वह ब्रजविदेही और श्रीमहन्त की उपाधि से भूषित हुए। ब्रजविदेही तथा सर्वप्रधान श्री महन्त बनने के बाद समवेत साधु मण्डली के सम्मानार्थ महन्तजी को एक दिन एक भण्डारे का आयोजन करना पड़ता है। प्रधान-प्रधान महन्त या विशिष्ट सन्त-महात्माओं को साधारणतया भण्डारे में निमन्त्रण देना पड़ता है। सभी श्रेणियों के साधुओं को अलग से निमन्त्रण देने का कोई निर्दिष्ट नियम नहीं है। भण्डारे का दिन घोषित करने पर ही जिनकी इच्छा हो वे आकर भण्डारे में शामिल होते हैं तथा प्रसाद पाते हैं। कुम्भ मेले मे लाखों साधुओं का समागम होता है। अतः एक भण्डारे का आयोजन करने पर उसमें साधुओं की संख्या कितनी होगी, इसका पहले से निर्णय करना (अनुमान लगाना) कठिन है। श्रीयुत बाबाजी महाराज ने भण्डारे की तारीख की घोषणा करके दस हजार व्यक्तियों के भोजन के लिए पक्की रसोई (घृत पक्व द्रव्य, जैसे-पूड़ी, कचौडी, लड्डू इत्यादि) बनवायेंगे संकल्प किया। बाबाजी महाराज की आकाश-वृत्ति है, कोई भी सम्पत्ति नहीं है, पहले से संचित कोई अर्थ भी नहीं है, श्री भगवान् जिस दिन जो लाकर उपस्थित करते हैं, उसी के द्वारा उस दिन का

खर्च या श्री श्री ठाकुरजी के भोग और साधु-सेवा की व्यवस्था होती है। किसी दिन चीज की कमी नहीं होती है। श्री श्रीठाकुरजी की कृपा से उनके संकल्प के अनुसार दसहजार साधुओं के लिए उपयुक्त आहार्य-सामग्री भण्डारे के लिए निर्दिष्ट तारीख से पहले आ गयी। भण्डारे का सामान बनना प्रारम्भ हो गया तथा आनुषंगिक आयोजन भी होने लगे। इस बीच कुछेक साधु बाबाजी महाराज को नीचा दिखाने के उद्देश्य से गुप्त रूप से साधु मण्डली के भीतर अपनी इच्छानुसार निमन्त्रण देने लगे। बाबाजी महाराज या उनके सम्प्रदाय का कोई भी इस षड्यन्त्र के बारे में कुछ भी न जान सका। भण्डारे के दिन देखा गया कि लगभग पच्चीस हजार या उससे भी अधिक साधु इकट्ठे हुए हैं। गुप्त षड्यन्त्र की बात भी तब उन तक पहुँची, लेकिन तब किसी भी प्रकार की व्यवस्था करने का उपाय या समय नहीं था। बाबाजी महाराज के एक गुरु-भ्राता उनके पास जाकर उनसे बोले–"महन्तजी आप जल्दी तुलसी छोड़ें। नहीं तो आज सभी को नीचा देखना ही पड़ेगा। काठिया बाबा के नाम पर हमेशा के लिए कलंक की कालिख पुत जायेगी। आयोजन जो हुआ है, उसके द्वारा आधे व्यक्तियों का भोजन भी नहीं हो सकेगा।" उन्होने अपने स्वभाव सुलभ मृदु हास्य के साथ मधुर स्वर में उसको जबाब दिया-"श्री श्री ठाकुरजी की जो इच्छा है वही होगा, अब तो और दुबारा रसोई बनाना सम्भव नहीं होगा। तुलसी-छोड़कर क्या होगा?" उनकी इस बात पर गुरुभ्राता का मन नहीं माना, उनके हिसाब के दुगुने से भी ज्यादा लोग एकत्र हुए थे। वह बाबाजी महाराज से तुलसी छोड़ने के लिए बहुत खुशामद करने लगे। गुरु-भ्राता के इस प्रकार के आन्तरिक आग्रह को देखकर बाबाजी महाराज ने मन-ही-मन काठियाबाबा का स्मरण कर कहा–"हे प्रभो ! आज तुम्हारी महिमा एक बार प्रत्यक्ष करके दिखाओ। तुम्हारे

नाम पर कलंक लगेगा, यह हम कैसे देखेंगे या सहेंगे? तुम्हारे नाम की महिमा और अधिक प्रचारित होने के लिए मैं अब भोग की सामग्री के ऊपर तुलसी छोड़ना चाहता हूँ। तुम्हारे वरदान से भोग की सामग्री आज अक्षय हो जाये।" इस प्रकार से प्रार्थना कर एक तुलसी-पत्र मन्त्रःपूत करके उसको गुरुभ्राता के हाथ में देकर बोले–"यह लो इसे भोग के ऊपर छोड़ दो।" गुरुभ्राता तुलसीपत्र लेकर उसे भोग के ऊपर छोड़ गये। उसके बाद साधुओं को बिठाकर भोजन परोसना प्रारम्भ हुआ। साधुओं की जमात इतनी लम्बी थी कि एक तरफ से दूसरी तरफ तक पैदल चलकर पहुँचने में जो समय लगता, उस समय में एक पंगत उठ जाती। इस प्रकार उस विशाल जन-समावेश के प्रत्येक व्यक्ति की सन्तुष्टि के साथ भोजन कराया गया। दस हजार व्यक्तियों की भोजन-सामग्री के द्वारा पच्चीस हजार व्यक्तियों को भोजन कराया गया, यह समाचार गुप्त न रहा। काठिया बाबा के तुलसी छोड़ने पर ही ऐसा असम्भव कार्य सम्भव हुआ। काठिया बाबा का जय-जयकार पड़ गया। पच्चीस हजार कण्ठ से "काठिया बाबा की जय" ध्वनि से दिशायें काँपने लगीं। बार-बार इस प्रकार की जय-ध्वनि उदात्त स्वर से चलने लगी। कुम्भ-मेला की कई मील विस्तृत भूमि के कोने-कोने में वह स्वर प्रतिध्वनित होकर श्रोता का मन दिव्यानन्द से पूर्ण कर दिया।

प्रयाग कुम्भ, नासिक कुम्भ तथा उज्जयिनी कुम्भ मेले में श्रीश्रीबाबाजी महाराज

शोकार्त्तरक्षणविलक्षणबुद्धिमन्तं
ज्ञानाब्धिमन्थनपटुं महतां वरेण्यम्।
यद् दर्शनाद् अघगणाः खलु यान्ति शान्तिं,
तं श्रीधनञ्जयगुरुं प्रणमामि नित्यम्।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

इस बार के प्रयाग कुम्भ में जाकर श्री श्री बाबाजी महाराज ने वहाँ आसन स्थापित किया। इस कुम्भ में उनको एक विशेष कार्य के समारोह का संचालन करना होगा। रामानन्दी-सम्प्रदाय के वृद्ध महन्त भरतदासजी का देहावसन हो गया। उनकी खाली गद्दी पर नये महन्त का निर्वाचन कर उसकी अभिषेक-क्रिया सम्पन्न करनी होगी।

इस महन्ताई के निर्वाचन को लेकर रामानन्दी-सम्प्रदाय के अन्दर इससे पहले ही गुट बाजी पैदाकर अनेक प्रकार के षड्यंत्र चल रहे थे। वृद्ध महन्त भरतदासजी ने जीवित अवस्था में किसी समय बातचीत के दौरान श्रीयुत बाबाजी महाराज को बताया था कि उनके देहावसान के बाद उनके ही शिष्य रामोदार दास जी महन्त की गद्दी पर बैठें यही उनकी इच्छा है। भरतदासजी के एक वृद्ध चाचा जी तब जीवित थे, लेकिन बुढ़ापे के कारण असमर्थता के लिए भरत दास जी उनके प्रतिनिधि के रूप में इतने दिन महन्त के कार्य का संचालन करते

रहे हैं। अब भरतदासजी की मृत्यु होने पर वृद्ध चाचाजी की आन्तरिक इच्छा है कि उनके एक नाती चेले को महन्त की गद्दीपर अभिषिक्त किया जाय, लेकिन प्रत्यक्षरूप से वह इस बात को व्यक्त करने की हिम्मत नही जुटा पा रहे हैं। उनके सामने रामोदारदासजी के निर्वाचन के सम्बन्ध में प्रश्न उठाने पर वह मौलिक रूप से समर्थन कर रहे हैं, लेकिन अन्दर-ही-अन्दर रामोदारदासजी के अभिषेक में गड़बड़ी पैदा करने के लिए उन्होंने एक प्रकाण्ड शक्तिशाली दल का गठन कर लिया है। रामोदारदासजी के अभिषेक के लिए सारी तैयारियाँ हो गयी हैं। अभिषेक के समय बाबाजी महाराज ने वृद्ध चाचाजी को बुलाने के लिए गौड़ीय-सम्प्रदाय के महन्त रास बिहारी दासजी को भेजा, वृद्ध चाचाजी उपस्थित होते ही बाबाजी महाराज ने उनसे पूछा-"क्यों आप तिलक करेंगे क्या?" काठियाबाबा से सभी डरते थे। उनके द्वारा इस प्रकार अचानक पूछे जाने पर वृद्ध चाचाजी डर के कारण काँप गये। काठिया बाबा के विरुद्ध आचरण करने का या उनकी बातपर प्रतिवाद करने की उनकी हिम्मत नहीं थी। अतः वह-"हाँ हाँ, मैं कर रहा हूँ-" कहकर रामोदार दासजी को तिलक लगाने को आगे बढ़ते ही विपक्षी दल के जगन्नाथ दासजी इत्यादि कई प्रमुख रामानन्दी साधुओं ने उनका हाथ पकड़कर उनको रोक दिया तथा उस जगह से उनको तुरन्त हटा दिया। विपक्षी दल की इस प्रकार की हठकारिता से बाबाजी महाराज ने दमित न होकर शीघ्रही गौड़ीयसम्प्रदाय के महन्त रासबिहारी दासजी के द्वारा रामोदारदासजी के माथे पर तिलक लगवा दिया तथा महन्ताई की चद्दर ओढ़ाकर उनको महन्त की गद्दी पर अभिषिक्त कर दिया। बाबाजी महाराज के तिलक करने के बाद नागा-समप्रदाय के तीन प्रमुख महन्तों ने एवं दूसरे महन्तों ने भी रामोदारदासजी को तिलक लगाकर उन पर चादर ओढ़ा दी। उपस्थित भिन्न-भिन्न समप्रदाय के

सभी महन्तों ने मिलकर रामोदारदासजी की अभिषेक-क्रिया इस प्रकार सुसम्पन्न की। इस समाचार के बाहर प्रचारित होते ही विपक्षी दल के भीतर खलबली तथा भीषण दंगा हंगामा मचने को हुआ। विपक्षी दल इस प्रकार से उत्तेजित हो गया था कि वे उसी वक्त रामोदारदास जी की जान लेने को तैयार हो गये। रामोदार दासजी के प्राण संकट में हैं तथा वह डर गये हैं, देखकर बाबाजी महाराज उनको संग लेकर जनता के बीच में होकर अपने छत्र के नीचे आये। रामोदार दासजी को छावनी के भीतर बिठाकर स्वयं बाहर आये तथा अत्यन्त गरजकर बोले कि उनकी छावनी की चारों सीमा के भीतर किसी प्रकार की गड़बड़ी या जोर जबरदस्ती होने पर उसका परिणाम अच्छा नही होगा। बाबाजी महाराज के तमतमाते चेहरे को देखकर जनता के बीच किसी की भी आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं हुई। ठीक उसी समय सिपाहियों का एक दल हंगामा होने वाला है, देखकर वहाँ पर उपस्थित हो गया तथा हंगामा कारियों में से कुछ लोगों को पकड़कर ले गया। पुलिस के आने पर जनता तितर-बितर हो गयी; लेकिन अन्दर इकट्ठा बादल जमा रहा। रामानन्द्री सम्प्रदाय के भीतर आपस में गलती ढूँढ़कर गहरा तर्क-वितर्क चलने लगा। नागा लोग भी भड़क गये। लेकिन पुलिस तथा काठिया बाबा के डर से कोई कुछ करने की हिम्मत न कर सका। अन्त में दूसरे दिन और किसी प्रकार की गड़बड़ी का भय नहीं है, देखकर बाबाजी महाराज ने रामोदारदासजी को उनके अपने छत्र में भेज दिया। किसी ने भी किसी प्रकार की ऊँची आवाज में बात नही की या विरुद्धाचरण नहीं किया। सब शान्त-भाव धारण करने पर सभी कहने लगे-"जो कुछ भी हुआ है, उसकी जड़ में हैं काठिया बाबा। उनकी जो इच्छा है, वह अवश्य ही होगा। जो लोग उनके खिलाफ जायेंगे वे स्वयं ही अपमानित होंगे तथा दण्ड भोगेंगे।"

इसके बाद रामोदारदासजी ने जयपुर के गालता गद्दी के आचार्य का सम्मानित पद अलंकृत किया। बाबाजी महाराज की कृपा से ही वे वह सम्मानित पद प्राप्त कर सके हैं, इस बात को वह भूले नहीं थे। उन्होने अपनी कृतज्ञता स्वीकार करते हुए बाबाजी महाराज को उसके बाद एक पत्र लिखा। अन्य बातों के बाद उसमें उन्होंने लिखा-"हरिद्वार के कुम्भ के मेले में आपने मुझ पर जो कृपा और करुणा की है, वह मेरे हृदय में हमेशा ही उज्जवल होकर रहेगी। आपके अनुग्रह से ही मैं आज इस सम्मानित पद पर अधिष्ठित होकर रहा हूँ। उस दिन यदि आप उपस्थित न रहते तो उफनते बाढ़ के बहाव में क्षुद्र तृण-खण्ड (तिनका) की भाँति मैं कहाँ बह जाता, कोई आज जान भी न पाता। आपका उपकार मैं जिन्दगी में नहीं भूलूँगा। यह कृतज्ञता भाषा में व्यक्त करना सम्भव नही है..........।"

उसके वाद सन् १९५१ में श्रीयुत बाबाजी महाराज नासिक कुम्भ में पधारे। नासिक कुम्भ में पधारते ही कई कुम्भविषयक समस्याएँ उनके सामने आ गयीं। स्वकीय तपः प्रभाव से उन्होंने सभी समस्याओं के समाधान किये। तदुपरान्त नासिक कुम्भ के सम्पूर्ण साधु-सन्तों के सेवादि कार्य विधिवत सम्पन्न करके बाबाजी महाराज श्रीधाम वृन्दावन स्थित काठियाबाबा के निम्बार्क आश्रम में वापस आये।

तदनन्तर ८ महीने बाद वैशाख में बाबाजी महाराज ने उज्जयिनी कुम्भ में आसन स्थापना की। वहाँ पर भी कई घटनाएँ घटी थीं। चतुःसम्प्रदाय के श्रीमहन्त के रूप में बाबाजी ने सभी शंकाओं के समाधान किये। साथ-साथ जुलूस संबंधीय महती समस्या का भी अद्‌भुत ढंग से समाधान हुआ। बाबाजी महाराज की विलक्षण प्रतिभा थी। विविध समस्याओं का समाधान करने को उनकी विलक्षण कला थी। ऐसे महापुरुष विरल ही धरातल में आविर्भूत होते हैं। इस नासिक कुम्भ

व उज्जयिनी कुम्भ में श्रीश्रीकाठियाबाबा की अलौकिक दिव्य शक्ति द्वारा सभी साधु, सन्त श्रीमहन्त, धर्माचार्य महानुभाव विशेष प्रभावित हुए। सर्वत्र श्रीश्रीकाठियाबाबा जी महाराज के जयगान तथा जय-जयकार हुए-

त्यागी तपस्वी तेजमय दिव्य ज्ञान के धाम।
कठिन साधना भक्तिव्रत सेवत रूपललाम।।
कुम्भ में बाबा काठिया पूर्णप्रताप प्रसिद्ध।
भक्ति गगन के चन्द्रमा सब सिद्धन में सिद्ध।।
सोई पधारे आज इत तपस्वीन के सिरमौर।
दर्शन कर पावन भये इच्छा रही न और।।

श्री 'श्रीजी' महाराज का प्रसंग

न्यायव्याकरणादिशास्त्रपठने सम्पाठने तत्परं,
निम्बार्कागमतत्त्वचिन्तनपरं टीकाकरं भूसुरम्।
श्री"श्रीजी"पठनक्षणेऽतिकुशलं विद्यूाप्रदं धीप्रदं,
वन्दे विपिने धनञ्जयमुनिं श्रीकाठियाख्यं गुरुम्।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

निम्बार्काचार्यपीठस्य नितरां शुभचिन्तकः।
श्रीधनञ्जयदासोऽयं जगताद् भुवि सर्वदा।।

राजस्थान के किशनगढ़ स्टेट के अन्तर्गत सलेमाबाद नामक स्थान पर परशुराम पुरी में निम्बार्क-सम्प्रदाय के पूर्वाचार्यों की एक गद्दी है। सलेमाबाद परशुराम पुरी के निम्बार्क-आश्रम में सम्प्रदाय के आदि आचार्य द्वारा पूजित अत्यन्त छोटे आकार के एक शालग्राम-शिला परम्परा-क्रम में पूजित होते आ रहे हैं। इनको श्री 'सर्वेश्वर' भगवान् कहा जाता है। यह सलेमाबाद और परशुराम पुरी का इतिहास तथा वहाँ के आचार्य श्री "श्रीजी" महाराज के साथ श्री श्री बाबाजी महाराज का किस प्रकार का गहरा सम्पर्क बन गया था इत्यादि के सम्बन्ध में श्री श्री बाबाजी महाराज ने स्वयं जो कुछ बताया था, वे सारे सन्दर्भ नीचे दिये गये हैं–

निम्बार्क-सम्प्रदाय के अन्यतम आचार्य श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी के अनेक शिष्य थे, उनमें बारह त्यागी साधु-शिष्य प्रधान थे, उनके नाम निम्नवत् हैं–१. श्री स्वभूराम देवाचार्य जी २. श्रीवोहित देवाचार्यजी ३. श्रीहृषीकेश देवाचार्यजी ४. श्रीलफरा गोपाल देवाचार्यजी ५. श्रीगोपाल

देवाचार्यजी ६. श्रीपरशुराम देवाचार्यजी ७. श्रीबहुबल देवाचार्यजी ८. श्रीमाधव देवाचार्यजी ६. श्रीकेशव देवाचार्यजी १०. श्रीउद्धव घमण्ड देवाचार्यजी ११. श्रीमदन गोपाल देवाचार्यजी १२. श्रीमुकुन्द देवाचार्यजी।

उनके इन बारह शिष्यों में से प्रत्येक के शिष्य-प्रशिष्य की धारा अलग-अलग हुई है। इन बारह धाराओं को बारहद्वारा या द्वारा कहा जाता है। ये बारह शिष्य ही मथुरा के नारद-टीले पर अपने श्री गुरुदेव के निकट रहकर भजन-साधन करते थे तथा श्रीगुरुदेव की सेवा करते थे।

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में एक बार पंजाब में वैष्णव-धर्म विरोधी कुछ योगियों ने वैष्णवों के ऊपर बहुत ज्यादा अत्याचार किया। तब वहाँ के वैष्णवों की प्रार्थना पर श्री हरिव्यास देवाचार्य जी ने अपने सबसे बड़े शिष्य श्री स्वभूराम देवाचार्यजी को इस अत्याचार को रोकने के लिए भेज दिया, उन्होंने सहारनपुर के निकट "बुढ़िया" नामक गाँव में कुछ दिन रहकर अलौकिक शक्ति के द्वारा विरोधी दल को परास्त करके अत्याचार बन्द किया था। वह स्थान आज भी श्री स्वभूराम देव जी की बनी के नाम से प्रसिद्ध है।

उसी समय सलीम चिस्ती नामक एक मुसलमान तान्त्रिक पुष्करारण्य पर अधिकार जमाकर वहाँ के हिन्दुओं तथा पुष्कर तथा द्वारका के हिन्दू यात्रियों के ऊपर बहुत अत्याचार करता रहा। स्थानीय हिन्दुओं के साथ कुछ साधुयात्री मथुरा आकर उस अत्याचार को बन्द कराने के लिए श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी के शरणागत होने पर उन्होंने तब उस अत्याचार को बन्द कराने के लिए दूसरे शिष्य श्री परशुराम देवाचार्य जी को वहाँ भेज दिया। श्री स्वभूराम देवाचार्यजी के एक सुसंस्कृत जीवन-चरित ग्रन्थ में श्रीपरशुराम देवाचार्यजी उनके कनिष्ठ (सबसे छोटे) भाई थे कहकर भी उल्लेख किया है, देखा जाता

है। बारह शिष्यों में श्रीपरशुराम देवाचार्यजी की उम्र सबसे कम था। इसीलिए श्री हरिव्यास देवाचार्यजी ने उनके साथ कुछ साधुओं को दिया, श्रीगुरुदेव के पास रहते वक्त उनके द्वारा ही श्री सर्वेश्वर भगवान् की सेवा करायी जाती थी। इसीलिए उनके साथ श्रीसर्वेश्वरजी को भी दिया। उन्होंने वहाँ जाकर वह सलीम चिस्ती जहाँ रहता था, उसी के पास एक पेड़ के नीचे आसन स्थापित किया तथा योगबल से उसे परास्त कर उस अत्याचार को रोका था। उसके बाद वह उसी जगह रह गये। उसीं सलीम के नाम के अनुसार उस स्थान का नाम "सलेमाबाद" हुआ है। श्रीपरशुराम देवाचार्यजी के नाम के अनुसार उस स्थान को "परशुराम पुरी" भी कहा जाता है।

सलेमाबाद किशनगढ़-स्टेट में किशनगढ़ स्टेशन से १४/१५ मील दूर स्थित है। पहले किशनगढ़ स्टेशन पर उतर कर पैदल वहाँ जाना पड़ता था। अब प्रतिदिन कई बार बस भी आती जाती है। आचार्य-परम्परा में पूजित श्री सर्वेश्वर जी श्रीपरशुराम देवाचार्य जी के पास उस जगह रहने के कारण उस स्थान को "श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ" कहते हैं। उन को ही उस पीठ के आचार्य के रूप में मान्यता मिली तथा उसी समय से उनके शिष्य प्रशिष्यादि क्रम से इस गद्दी के आचार्य होते चले आ रहे हैं। इस धारा को श्री परशुराम देवाचार्य जी का द्वारा कहा जाता है। सलेमाबाद के (परशुराम पुरी के) उस पीठ पर अधिष्ठित होकर जो आचार्य बनते हैं, उनको ही "श्री श्रीजी महाराज" कहा जाता है। इन श्री श्रीजी महाराज की गद्दी के साथ हमारे श्री श्री बाबाजी महाराज की गद्दी की क्या भिन्नता है, यह प्रश्न बहुत से लोग करते रहते हैं। इसलिए हमारे श्री श्री बाबाजी महाराज की गद्दी का भी थोड़ा सा परिचय यहाँ दिया जा रहा है। श्री हरिव्यास देवाचार्य के सबसे बड़े शिष्य श्री स्वभूराम देवाचार्यजी से हमारे बाबाजी महाराज

की धारा आयी है। इसलिए हमारी धारा को श्री स्वभूराम देवाचार्य जी का द्वारा कहा जाता है। श्री स्वभूराम देवाचार्य से अद्यस्तन चतुर्थ पुरुष श्री चतुरचिन्तामणि देवाचार्य जी अत्यन्त प्रसिद्ध सिद्ध महापुरुष (श्री स्वभूराम देवाचार्य से श्री चतुर चिन्तामणि देवाचार्य (श्री नागाजी महाराज) तक चार महासाधक किस प्रकार के सिद्ध महापुरुष थे, उसका वर्णन श्री नाभाजी ने हिन्दी के भक्तमाल में किया हैं। श्री लाल दास बाबाजी महाराज ने बँगला भक्तभाल में उसे छोड़ दिया है।") होने के कारण उनके नामानुसार द्वारा को नागाजी महाराज का द्वारा भी कहा जाता है। श्री स्वभूराम देवाचार्यजी के बाद गद्दी पर क्रमशः श्रीकर्णहर देवाचार्यजी, श्रीधर आनन्द देवाचार्य जी तथा चतुर चिन्तामणि देवाचार्य जी (नागाजी महाराज) आचार्य हुए थे। वह सिद्ध महापुरुष थे, श्री नागाजी महाराज की गद्दी आज तक सुप्रतिष्ठित है। ब्रजविदेही श्री महन्त की गद्दी ही वह आचार्य गद्दी है।

श्री स्वभूराम देवाचार्यजी द्वारा के बहुत बड़े-बड़े आश्रम तथा प्रसिद्ध महन्त भारत में लगभग सभी जगह हैं। इस द्वारा के महन्त तथा साधु-संख्या भी अन्य सब द्वारा के महन्त तथा साधु-संख्या से बहुत ज्यादा है। श्री परशुराम देवाचार्य जी द्वारा के आश्रम, महन्त तथा साधु-संख्या उनकी अपेक्षा कम है। तथापि निम्बार्क-सम्प्रदाय के पूर्वाचार्यों के द्वारा पूजित श्री सर्वेश्वर जी के सेवाव्रती होने से श्रीपरशुराम देवाचार्य जी के द्वारा के श्रीजी महाराज को ही श्री निम्बार्काचार्य पीठाधिष्ठित आचार्य के रूप में श्री स्वभूराम देवाचार्य जी द्वारा के सभी तथा निम्बार्क-सम्प्रदाय के अन्य द्वारा के सभी जन मानते चले आ रहे हैं। श्री १०८ स्वामी रामदास काठिया बाबा तथा श्री १०८ स्वामी सन्तदासजी महाराज इत्यादि पूर्व पुरुषों का सलेमाबाद श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधिष्ठित आचार्य के साथ विशेष कुछ संबंध नहीं

थां। लेकिन घटनाचक्र में वर्तमान श्रीजी महाराज के साथ श्रीश्रीबाबाजी महाराज के अत्यन्त घनिष्ठ संपर्क हो गये हैं। श्री श्रीजी महाराज के श्री गुरुदेव भूतपूर्व श्रीजी महाराज के साथ भी बाबाजी महाराज के बहुत ही प्रीति के संपर्क थे। भूतपूर्व श्रीजी महारज के साथ किस प्रकार प्रीति के संपर्क बने थे एवं उसके बाद घटनाचक्र में भगवदिच्छा से वर्तमान श्रीजी महाराज के साथ क्यों और किस तरह उनका खूब घनिष्ठ संपर्क हुआ है वह नीचे वर्णित है–

श्री श्री १०८ सन्तदासजी महाराज बाबाजी महाराज को अपने स्थलाभिषिक्त करने के कुछ दिन बाद वह स्थूल देह में मौजूद रहते ही श्री वृन्दावन में "श्री निम्बार्क महासभा" नाम से एक सभा की स्थापना की गयी तथा प्रधान तथा प्राचीन पण्डित श्रीयुत अमोलकरामजी शास्त्री, तर्क तीर्थमहोदय को उसका सभापति बनाया गया, वह निम्बार्क-सम्प्रदाय के अत्यन्त भक्तिमान उदार तथा सरल स्वभाव के साधक पुरुष थे। तब श्री सन्तदासजी की अनुमति से बाबाजी महाराज को उपसभापति बनाया गया, सभापति महोदय गृहस्थ होने पर भी साधु की भाँति रहते थे। वह दो वर्ष तक सभापति थे। उन्होंने तब सलेमाबाद के 'निम्बार्क-सत्संग-मण्डल' नामक एक संस्था से वहाँ के श्रीनिम्बार्क-आचार्य-पीठ की शोचनीय अवस्था के बारे में श्री युत बाबाजी महाराज को अवगत कराया तथा उस समय के श्रीजी महाराज के (श्री १०८ बालकृष्ण देवाचार्यजी) वैसा कोई उपयुक्त शिष्य न होने के कारण भविष्य में इस आचार्य पीठ की एक सुव्यवस्था करने की आवश्यकता है। इस प्रकार से बताकर उस आचार्यपीठ में हस्तक्षेप करने के लिए श्रीयुत बाबाजी महाराज से प्रार्थना करते रहे। उन्होंने तब श्रीजी महाराज को आचार्यपीठ की सुव्यवस्था करने के लिए प्रार्थना करते हुए पत्र लिखा।

उसके जवाब में उन्होंने लिखा कि आचार्यपीठ की सुव्यवस्था के लिए इस निम्बार्कसम्प्रदाय के विशिष्ट महन्तों को लेकर एक समिति का गठन किया जायेगा तथा उनमें श्री बाबाजी महाराज को भी रहना होगा। उसके बाद कौन-कौन से महन्त इस समिति में रहेंगे तथा उनको क्या-क्या कार्य करने होंगे इत्यादि लिखकर, उन्होंने वह छपवा दिया तथा श्री श्री बाबाजी महाराज तथा दूसरे महन्तों के पास वह भेज दिया। ऐसे समय सन् १६३८ ई. में श्री वृन्दावन का अर्द्धकुम्भ का मेला आ गया। भूतपूर्व श्रीजी महाराज ने इस अर्द्धकुम्भ से कुछ दिन पहले श्री श्री बाबाजी महाराज को पत्र लिखकर सूचित किया कि वह श्रीवृन्दावन अर्द्धकुम्भ के समय सुआगमन करेंगे तथा उनकी मर्यादा रक्षा का सम्पूर्ण दायित्व वह श्री श्री बाबाजी महाराज के ऊपर सौंप रहे हैं। इस पत्र में उन्होंने ये बातें भी लिखीं थी-"जैसे आकाश की शोभा चन्द्रमा से होती है और चन्द्रमा की शोभा आकाश से होती है, वैसे ही इस स्थान की शोभा तुम्हारे स्थान से होती है और तुम्हारे स्थान की शोभा इस स्थान से होती है। ये बातें तथा बाद की सब बातें इतने प्रेम के साथ लिखी थीं कि उसे उनको पढ़कर जैसे उनकी मर्यादा की रक्षा हो सके, उसके लिए श्री श्री बाबाजी महाराज ने सुव्यवस्था की। हालाकि श्री वृन्दावन में उनका आश्रम श्रीजी की बड़ी कुंज हैं। वहीं वह ठहरेंगे, निश्चित् था तथा लोग भी बहुत थे। अतः उनके रहने तथा श्री सर्वेश्वर जी की सेवा आदि की व्यवस्था के लिए चिन्ता की कोई भी बात नहीं थी। फिर भी उनका उद्देश्य जो था, वह उन्होंने इस प्रकार से पत्र में व्यक्त किया था-"मैं श्री निम्बार्काचार्य पीठाधिष्ठित आचार्य होने के कारण श्री वृन्दावन में आगमन पर पहले श्री वृन्दावन शहर में शोभायात्रा जो निकलेगी वह मर्यादा के अनुरूप होनी चाहिए तथा वृन्दावन-कुम्भ में भी मर्यादा की कोई कमी नहीं हो। वैसी व्यवस्था

आपको करनी है, क्योंकि साधुसमाज के साथ व्यवहार में (विशेषकर कुम्भ के समय) आप विशेष जानकार हैं।" खैर जो भी हो सारी व्यवस्थाएँ श्री सर्वेश्वरजी की कृपा से हो गई थीं। उन्होंने उस अवसर पर शुभ पदार्पण करके उनके उपर्युक्त मर्यादा प्राप्त की थी तथा कुम्भ समाप्त होने पर खूब प्रसन्न होकर सलेमाबाद लौट गये। उस समय उन्होंने अपनी श्रीजी की बड़ी कुंज में कुम्भ के साधुओं को निमन्त्रण देकर एक दिन लड्डू, कचौड़ी, पूड़ी इत्यादि श्री सर्वेश्वर जी का प्रसाद-भोजन कराया था तथा साधुओं ने भी अत्यन्त तृप्ति के साथ प्रसाद ग्रहण कर उस आचार्यवाद का जय-जयकार किया था।

श्री वृन्दावन से सलेमाबाद लौटने के बाद भी पूर्वोक्त समिति के गठन के लिए कई वर्षों तक (करीब ४/५ वर्ष) महन्तों के साथ उन्होंने पत्रों का आदान-प्रदान किया था। वह अकसर खूब अस्वस्थ हो जाते थे। उनकी उम्र भी अस्सी वर्ष के करीब होने के कारण वह तब बहुत ही चिन्तित हो गये। ऐसी हालत में इस प्रकार पत्र-व्यवहार चलते रहने के दौरान उन्होंने अपने सलेमाबादवासी पूर्वोचित के कनिष्ठ भ्राता को समझाकर उनके दो पुत्रों में छोटेपुत्र को माँगा तथा बोले-"तुम्हारे इस पुत्र को साधु बनाना चाहता हूँ तथा वही भविष्य में श्री सर्वेश्वरजी का सेवायत और आचार्य होगा, इस उद्देश्य से लिखा-पढ़ी करने की इच्छा है। तुम मुझे अपने उस पुत्र को दे दो।" उनके कनिष्ठ भ्राता ने इससे सहमत होकर अपने कनिष्ठ पुत्र को उनके चरणों में अर्पित कर दिया। तब उन्होंने उसकी १९९७ सम्वत् के आषाढ़ शुक्ला द्वितीया रविवार (सन् १९४० ई.) को साधु-शिष्य बनाकर उनका नाम रखा-'श्री श्री राधासर्वेश्वरशरणदेव'। इस लड़के की उम्र तब ग्यारह वर्ष की थी। कुछ समय पश्चात् (करीब २/३ वर्ष तक) जब देखा कि शरीर क्रमशः अधिक बीमार हो रहा है तथा किसी भी चिकित्सा से कोई लाभ नहीं हो रहा तथा सम्प्रदाय के जिन विशिष्ट

महन्तों को लेकर उन्होंने समिति गठन करने की सोची थी, वे सब विभिन्न महन्त विभिन्न तरह के विचार रख रहे हैं। अतः उसके शीघ्र होने की आशा नहीं है। तब और देर न करते हुए उन्होंने उस बालक के नाम से लिखा-पढ़ी रजिस्ट्री कर दी। वही उनकी गद्दी पर बैठकर आचार्य होंगे, यह बात भी उसमें लिख दी तथा उनके नाबालिग अवस्था तक (बालिग होने तक) उनकी पढ़ाई-लिखाई शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए तथा आश्रम के अन्य सब कार्य की व्यवस्था के लिए तीन व्यक्तियों की एक कमेटी तथा चार अधिकारी नियुक्त किये। इस बात का भी उल्लेख उसमें कर दिया। तीन लोगों की कमेटी के सदस्यों में उदयपुर के पूर्वोक्त महन्त श्री गंगादास जी एक हैं।

लिखा-पढ़ी करने के कुछ दिन बाद (श्रीबालकृष्ण शरणदेवाचार्य जी) मानव-लीला समाप्त कर उन्होंने श्री वैकुण्ठ धाम को गमन किया, तब १७वें दिन में सम्वत् २००० की ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया, शनिवार अँग्रेजी ८/६/१९४३ तारीख को उनके उद्देश्य से साधुओं का भण्डारा दिया जायेगा, निश्चित कर वहाँ से विशिष्ट महन्तों के पास तथा श्री श्री बाबाजी महाराज के पास भी निमन्त्रण पत्र भेजा गया। भण्डारा के समय श्री श्री बाबाजी महाराज को सलेमाबाद जाने में असुविधा होने के कारण नहीं जायेगें सोचा था; किन्तु पूर्वोक्त् पण्डित प्रवर श्रीयुत अमोलक रामशास्त्री तर्क तीर्थ महोदय (जो पहले निम्बार्क महासभा के सभापति हुए थे) ने श्री बाबाजी महाराज से विशेष रूप से कहा-"इस समय तुम अगर नहीं गये तो गड़बड़ी हो सकती है; तुम्हारे जाने पर सब व्यवस्था ठीक प्रकार से हो जायेगी। अतः तुमको जाना ही पड़ेगा इत्यादि।" श्री श्री बाबाजी महाराज भण्डारे के समय सलेमाबाद गये। अपने साथ उन्होंने श्रीश्रीठाकुरजी, रसोइया, पुजारी इत्यादि ४/५ लोगों को लिया। रामानन्दी सम्प्रदाय के श्री वैष्णवाचार्य नाम के एक विशिष्ट पण्डित साधु को भी संग ले गये।

वहाँ पहुँचकर उन्होंने सुना कि भीतर-भीतर कुछ कुछ गड़बड़ी चल रही है तथा दुमंजिले पर उनको एक महल में जहाँ रहने के लिए जगह दी गयी थी, वहाँ आकर बहुत से लोग बहुत सी खबर देने लगे। बहुत तरह की बातें उनके कानों तक पहुँचने लगीं। इन सब कारणों से श्री राधा सर्वेश्वर शरणदेवजी जिनके नाम से श्री श्रीजी महाराज लिखा-पढ़ी कर गये हैं (उनके देहावसान के बाद उनकी गद्दी पर बैठेंगे ऐसा लिखकर गये हैं) उस बालक को श्रीश्रीबाबाजी महाराज ने हर समय खूब चिन्तित तथा विमर्ष रहते हुए देखा। यह देखकर श्री श्री बाबाजी महाराज को उसके लिए बहुत प्रकार की चिन्ता होने लगी। तब उन्होंने (श्री श्री बाबाजी महाराज) ने खुलासा तौर पर ट्रस्टियों अधिकारियों तथा समागत महन्तों से कहा-"श्रीजी महाराज जब इस बालक को उत्तराधिकारी मनोनीत कर रजिस्ट्री लिखा-पढ़ी कर गये हैं, तब उसी को आचार्य की गद्दी पर विराजमान कराना होगा। यदि कोई षड्यन्त्र करता है तो उसको रोकना चाहिए। बालक की शिक्षा-दीक्षा, आचार्य पद का गुरुदायित्व वहन करने की शक्ति इत्यादि सभी उसके प्रतिकूल है, यह सत्य है; लेकिन उसकी उम्र बहुत थोड़ी है। अभी से उपर्युक्त रूप से शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था कर उसको आचार्य की गद्दी के योग्य आचार्य बनाने की कोशिश करने पर भविष्य में वह निश्चय ही सुपात्र होंगे। मिट्टी के खिलौने में प्राण प्रतिष्ठा कर साधक यदि उसमें परमात्मा के ज्योतिर्मय रूप के दर्शन कर सकता है, तो इस देहधारी जीव को जिसमें साक्षात् परमात्मा विराजमान हैं, सभी की कोशिशों के द्वारा आचार्य पद के योग्य निश्चय ही बनाने में सक्षम होंगे। उसके देहाभ्यन्तर स्थित जीवात्मा को जाग्रत करना क्या इतना ही कठिन कार्य होगा? इत्यादि।"

बाबाजी महाराज के सुयुक्ति और आवेगपूर्ण वाक्य का प्रतिवाद करने की उपस्थित किसी की भी हिम्मत नहीं हुई। उसके बाद

उस दिन एक स्थान पर गद्दी बनाकर मन्दिर में श्री श्री सर्वेश्वरजी श्री राधामाघवजी (यह श्रीजयदेव के ठाकुर हैं; जयदेव के श्री राधामाधवजी ही सलेमाबाद के निम्बार्काचार्य पीठ पर वर्तमान हैं) तथा श्रीगोपाल जी को एवं श्रीपरशुराम देवाचार्यजी की चरण पादुका पर तथा उनकी धूनी में प्रणाम कराकर बालक को उस गद्दी पर बिठाया गया। सबसे पहले बालक के मस्तक पर श्री सर्वेश्वर जी को स्थापित कर कुछ प्रतिज्ञा कराकर आचार्य के पद पर अभिषिक्त किया गया, अभिषेक के समय श्री श्री बाबाजी महाराज ने ही सबसे पहले बालक के ललाट पर चन्दन आदि का तिलक लगाकर गले में महन्ताई की माला पहनाकर चादर ओढ़ाया, उनके बाद अन्य महन्तों ने भी पद की मर्यादा के अनुसार तिलक, माला तथा चादरदान किया तथा लकड़ी के खिलौने की भाँति खड़े रहे। नव अभिषिक्त महन्त के प्रति किसी ने भी किसी प्रकार का सम्मान प्रदर्शित नहीं किया। उनके इस प्रकार के गर्हित कार्य से असन्तुष्ट होकर बाबाजी महाराज ने अपने संगी पहलवान साधु से कहा-"इन सभी को इस सीमा रेखा के बाहर निकाल दो, ये लोग इस जगह रहने के योग्य पात्र नहीं हैं।"

उनका आदेश पाते ही पण्डित प्रवर पहलवान साधु ने जोरदार आवाज में ऐसी एक धमकी दी कि सीमारेखा के अन्दर मौजूद सारे साधु लम्बी साँस लेते हुए दौड़कर सीमारेखा के बाहर बहुत दूर जाकर खेड़ हो गये। बाबाजी महाराज ने तब स्वयं बालक महन्त को साष्टांग होकर दण्डवत्-प्रणाम किया। उनके प्रणाम कर उठते ही अन्य महन्त लोगों ने भी एक-एक कर आकर नये महन्त को साष्टांग दण्डवत् किया।

छोटी मोटी कुछ बाधायें विपक्षी-दल के द्वारा पैदा किये जाने के बावजूद भी आचार्य-अभिषेक के बाद साधु-समाज को निमन्त्रण

भेजकर एक भण्डारा कराने की प्रथा प्रचलित है। उक्त भण्डारा न होने तक यदि यह समझा जाये कि अभिषेक-क्रिया असम्पूर्ण रह गयी है तो अतिशयोक्ति न होगी। उक्त भण्डारा अभिषेक-क्रिया का ही अंग स्वरूप है तथा अवश्य करना चाहिए।

श्री श्रीजी महाराज की महन्ताई पर विशाल भण्डारा किया गया। यहाँ यह स्पष्ट करना चाहिए कि निम्बार्क-सम्प्रदाय युक्त सलेमाबाद आश्रम की आचार्य गद्दी पर जो बैठते हैं, उनको संक्षेप में "श्रीजी" महाराज के नाम से जाना जाता है। उनका पूरा नाम-"श्री राधासर्वेश्वरशरण देवाचार्य जी महाराज है। इतना लम्बा नाम हर समय विशेष रूप से सर्वसाधारण के लिए व्यवहार करना सम्भव नहीं है। इसीलिए उसको संक्षेप करके नाम का पहला अक्षर "श्री" तथा अन्तिम अक्षर "जी" इन दो शब्दों को जोड़कर केवल "श्रीजी" कहने पर उक्त आचार्य को ही समझा जाता है।

साधु-समाज में एक व्यक्ति, दो व्यक्ति इस तरह से न कहकर एक मूर्त्ति दो मूर्त्ति इस तरह से कहा जाता है। पन्द्रह हजार साधुओं के लिए पूड़ी, मिठाई इत्यादि बनवाई गयीं, सलेमाबाद के चारों तरफ छोटे-बड़े बहुत से रजवाड़े हैं तथा उन सभी स्टेटों के राजा सभी श्रीजी महाराज के आश्रम के पृष्ठपोषक हैं। अतः उन सभी स्टेटों में भी निमन्त्रण भेजा गया। भण्डारे वाले दिन लोग खचाखच भर गये। पन्द्रह हजार की जगह करीब चालीस हजार व्यक्तियों का समागम हुआ। अनुमान लगाया गया तो भण्डारे के प्रेरक तथा कार्यकर्ता सभी किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये। श्रीजी बाबा के विपक्षी दल ने देखा कि काठिया बाबा को अपमानित करने का यही सुनहरा अवसर है। प्रत्यक्ष रूप से काठिया बाबा के खिलाफ आचरण करने का साहस किसी में भी नहीं है, लेकिन चोरी छिपे शत्रुता का आचरण करने के लिए सभी

तैयार थे। विपक्षी दल के व्यक्ति आकर भण्डारे के कार्यकर्ताओं से बोले-"देखिये, एक काम करें। जितने व्यक्तियों के लिए आयोजन किया गया है, उसकी तिगुनी या चौगुनी व्यक्तियों की संख्या भी है। हम सभी अपमानित तो होंगे ही, हमेशा के लिए इस आश्रम की बदनामी रह जायेगी। अब इस विपत्ति से अगर उवरने की इच्छा है तो काठिया बाबा की शरण में जायें। केवल उनके अलावा और कोई अब हमें इस विपत्ति से नहीं बचा सकता। वह अगर चाहें तो हम सभी इस उपस्थित विपत्ति से मुक्त हो जायेंगे। आप लोग जाकर उनसे भण्डारे के लिए तैयार सामग्री के ऊपर तुलसी छोड़ने का अनुरोध करें। उनके तुलसी छोड़ते ही और किसी भी वस्तु की कमी नहीं होगी, काठिया का भी जय-जयकार हो जायेगा।" पक्ष के कार्यकर्ताओं की बुद्धि तब काम नहीं कर रही थी। विपक्षी दल के इस सुझाव को उन्होंने सही ही मान लिया, लेकिन वे लोग विपक्षी दल की कूटनीतिक चाल को समझ नहीं सके। विपक्षी दल का आन्तरिक उद्देश्य यह था कि काठिया बाबा ने तुलसी भोजन-सामग्री के ऊपर छोड़ी है, इस बात का प्रचार यदि उपस्थित जन समूह के बीच कर दिया जाये तो प्रसाद की कमी के लिए जनता काठिया बाबा को ही जिम्मदार ठहरायेगी, अतः बदनामी उन्हीं की होगी।

पूर्वोक्त पहलवान पण्डितजी ने विपक्षीदल की इस साजिश को जानकर उनके बारे में शीघ्र ही बाबाजी महाराज को बताया तथा अनुरोध किये जाने पर तुलसी छोड़ने के लिए कहा। कुछ देर बाद ही कार्यकर्ताओं ने उपस्थित होकर बाबाजी महाराज से तुलसी छोड़ने का अनुरोध किया। बाबाजी महाराज ने अपने एक गुरुभ्राता से तुलसी छोड़कर आने के लिए कहा। तुलसी छोड़े जाते ही विपक्षी दल ने प्रचार करना आरम्भ कर दिया कि "काठिया बाबा ने तुलसी-पत्र छोड़ दिया।" उसके बाद प्रसाद-वितरण प्रारम्भ हुआ। सारी जनता ने

सन्तुष्टि के साथ पेट भरकर भोजन किया। चारों ओर काठिया बाबा की जय-जयकार होने लगी। विपक्षी दल स्वयं ही परास्त हो गया। भण्डारा समाप्त होने के बाद भी देखा गया कि तब भी भण्डारघर में काफी सामग्री बच गई है। इसके बाद भी दस बारह दिन तक उस बची हुई सामग्री से प्रत्येक दिन आये हुए बहुत से साधुओं को संतुष्टि के साथ भोजन कराया गया था। इसके बाद उसी दिन शाम को मन्दिर में जब संध्या-आरती हो रही थी तथा श्री श्री बाबाजी महाराज भी आरती दर्शन कर रहे थे, ऐसे अवसर पर बालक महन्त अचानक आकर उनका हाथ पकड़कर बोले-"मेरे लिए जो कुछ भी व्यवस्था करने की आवश्यकता है, वह आपको ही करनी पड़ेगी। मैं अपना सब भार आपको अर्पण कर रहा हूँ, मैं और किसी को नहीं जानता।" श्री सर्वेश्वर भगवान् के सामने आरती के वक्त बालक के हाथ पकड़ने पर श्री श्री बाबाजी महाराज को लगा जैसे यह सर्वेश्वर भगवान् की ही प्रेरणा हो।

उसके बाद बाबाजी महाराज ने स्थानीय कार्यकर्ताओं तथा आश्रम के संचालकों को बुलाकर कहा-"अब श्री जी के भविष्य की कर्मपद्धति के बारे में क्या निश्चित किया है? उनको उत्तम प्रकार से विद्याध्ययन कराना पड़ेगा, जिससे भविष्य में कुशलता के साथ वह आश्रमों से सम्बन्धित समस्त मामलों का संचालन कर सकें तथा साधु एवं पण्डित-समाज में सम्मान के साथ चल सकें।"

अभिषेक तथा भण्डारे के मामले में सभी ने काठियाबाबा की शक्ति का परिचय पाया था। अब काठियाबाबा को सभी भय-मिश्रित श्रद्धा के साथ देख रहे थे। अतः स्वपक्ष तथा विपक्षी दल के उपस्थित सभी एक वाक्य में बोले-"इस सम्बन्ध में आप जो कुछ भी उचित तथा श्री जी के लिए कल्याणकारी निश्चित करेंगे वही होगा, आप जो भी व्यवस्था करेंगे उसी में हमारा सम्पूर्ण अनुमोदन पायेंगे।"

उसके बाद उपस्थित ट्रस्टियों तथा महन्तों व अधिकारियों इत्यादि सभी ने मिलकर "श्रीसर्वेश्वर संघ" नामक एक संघ की स्थापना की तथा श्री श्री बाबाजी महाराज को ही उसका स्थायी सभापति बनाया तथा उसके अन्य कार्यकर्ता, पदाधिकारियों का निर्वाचन कर सर्वसम्मति से श्री श्री बाबाजी महाराज के ऊपर ही उस बालक के अध्ययन आदि तथा सभी प्रकार की शिक्षा का दायित्व सौंप दिया। तब श्री श्री बाबाजी महाराज ने सोचकर देखा कि नाबालिग श्री श्रीजी महाराज को इस शत्रु-व्यूह के मध्य असहाय अवस्था में रखकर जाना किसी भी प्रकार से ठीक नहीं होगा। अतः उन्होंने प्रस्ताव किया कि वह उनको (श्री श्रीजी महाराज को) अपने साथ श्रीवृन्दावन आश्रम में ले जायेंगे तथा वहीं पर उनकी शिक्षा की सारी व्यवस्था करेंगे, उपस्थित सभी ने इस प्रस्ताव पर अपनी सहमति जताई। तब पंजिका (पंचाग) मँगवाकर शुभ दिन देखकर रवानगी का दिन निश्चित किया गया, वृन्दावन जाने के लिए मोटर गाड़ी की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी एक व्यक्ति को दी गयी। यात्रा की तैयारी चलने लगी।

श्री श्री बाबाजी महाराज ने श्री श्रीजी को अपने दावानल कुण्ड के आश्रम में रहने की व्यवस्था कर, उनकी शिक्षा की भी अच्छी व्यवस्था कर दी। उनको संस्कृत-व्याकरण (पाणिनी) पढ़ाने के लिए एक अच्छे पण्डित को नियुक्त कर दिया तथा वह प्रत्येक दिन स्वयं नियमित रूप से जाकर उनकी पढ़ाई-लिखाई तथा सभी मामलों में खोज खबर करने लगे तथा स्वयं भी प्रतिदिन उनको शाम के समय पढ़ाने लगे। इस तरह श्री श्रीजी महाराज बाबाजी महाराज की देखरेख में रहकर वहीं से "लघुकौमुदी" (पाणिनी का आद्य) व्याकरण की परीक्षा तथा "सिद्धान्त-कौमुदी" (पाणिनी का मध्य) व्याकरण की परीक्षा देकर उत्तीर्ण हुए। इस समय हमारे आश्रम के कोई-कोई बाबाजी महाराज

श्री श्रीजी महाराज की इस प्रकार से नियमित देखरेख तथा अच्छा बन्दोबस्त कर रहे हैं, देखकर ईर्ष्या-परायण होकर तरह-तरह की विरोधी बातें उछालने लगे। लेकिन बाबाजी महाराज सारी विरोधी तथा प्रतिकूल समालोचनाओं की परवाह न करते हुए अपने कर्तव्य-पालन में अटल रहे। उनके चरित्र की यही विशेषता थी कि जो उनको सत्य तथा न्याय-संगत लगा, सैकड़ों प्रतिकूल अवस्था के मध्य भी उसी में वह अटल रहे हैं। किसी भी प्रकार से उससे विचलित नहीं हुए हैं। उनका सत्य तथा कर्तव्यनिष्ठा असाधारण है, इन सारी घटनाओं से ही वह आसानी से समझा जा सकता है।

श्रीजी महाराज "सिद्धान्त-कौमुदी" की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर कुछ दिन बाद ही सलेमाबाद अपने आश्रम लौट गये तथा वर्तमान में वहीं पर हैं। श्रीजी महाराज के साथ बाबाजी महाराज तथा काठिया-परिवार का सम्बन्ध घनिष्ठ तथा अविच्छेद्य (बिना टूटे) हमेशा ही है तथा रहेगा।

सन् १९७० ई. की ८ मई को सुखचर में काठिया बाबा के आश्रम में श्री श्री राधा माधव वृन्दावन बिहारीजी की युगल-विग्रह प्रतिष्ठा के उपलक्ष्य मे श्री श्री बाबाजी महाराज ने सलेमाबाद श्री निम्बार्काचार्य पीठ के श्री श्री सर्वेश्वर जी के भोग के लिए कुछ धनराशि भेजी। उसकी प्राप्ति स्वीकार करते हुए आचार्य श्री श्रीजी महाराज ने श्री श्री बाबाजी महाराज को जो पत्र दिया था, उसमें उन्होंने लिखा था–उससे बाबाजी महाराज जी के व्यक्तित्व, कृतित्व तथा स्वसम्प्रदाय के दिव्य प्रचार-प्रसार का कार्य एवं तपः प्रभाव कितना महान् रहा, उसी का सम्यक् परिचय प्राप्त हो सकता है। जगद्गुरु श्री श्रीजी महाराज का पत्र निम्नलिखित है–

।। श्रीयुगलचरणारविन्दमकरन्द सेवनाभिरत।।

श्रीयुत ब्रजविदेही श्रीचतुःसम्प्रदाय

श्रीमहन्त श्रीधनञ्जय दासजी "काठिया बाबा"

तर्क तर्क व्याकरणतीर्थ

श्रीराधासर्वेश्वरस्मरणं विज्ञेयम्

शुभमुभयत्र—अपरञ्च सुदीर्घ काल के बाद आपके मंगलमय संवाद को प्राप्तकर अतिशय आह्लाद हुआ। समय-समय पर आपसे मिलने पर जिस अनिर्वचनीय सुख की अनुभूति होती थी, वह अवर्णनीय है। आपके द्वारा स्वसम्प्रदाय जगत् में विभिन्न रूप से जो दिव्य प्रकाश हुआ, यह किसी से अविदित नहीं। आपका प्रखर वैदुष्य प्रचुर ज्ञान, परम सारल्य और अप्रतिम प्रभाव सभी को आकृष्ट किए हुए है। श्रीभगवत्सेवा, सन्त-सेवा एवं साहित्य-सेवा का विशिष्टतम कार्य आपका अतिश्रेष्ठत्व का द्योतक है। आपने अपने परम पवित्र जीवन में जिन सुदर्शनीय भव्य संस्थानों का निर्माण कराया, इससे स्वसम्प्रदाय जगत् का अतुलनीय आदर्शमय महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। श्री निम्बार्काचार्यपीठ का तो आपके द्वारा नाना संकटों को नगण्य समझकर जिस निष्ठा से विकास हुआ है, जिसका प्रत्यक्ष सभी को है। हमारे निज जीवन को आदर्श स्वरूप बनाने में आप का प्रयास किस लेखनी से अंकन किया जाए, ये तो स्वान्तर्वेद्य विषय है। सम्भवतः मास भर में दो-चार दिन की तो नहीं कह सकते, किन्तु नित्यशः आपकी प्रसंगानुसार परिचर्या एवं स्मृति होती ही रहती है। श्रीसर्वेश्वर प्रभु से यह मंगलकामना है कि निकट भविष्य में ही आपके मिलन का सुयोग बने। आपके द्वारा प्रेरित अर्थराशि से श्रीसर्वेश्वर प्रभु एवं श्रीराधामाधव जी के विशिष्ट नैवेद्य समर्पित किया गया, सभी ने जय-जयकार से आपका स्मरण किया।

आप अपना कुशल पत्र अवश्य ही दें। आश्रमवासी सभी सन्तवृन्दों को शुभाशीर्वाद अवगत करा दें। अन्यत्सर्वं समीचीनम्।

तृतीय अध्याय
प्रतिकूल भगवत्कृपा

"त्यक्त्वा मठाधिपत्यं तत् कदाचित् कारणान्तरे।
प्रस्थितः किल यात्रार्थं साधनार्थं च यत्नतः।।"

इतिहास प्रसिद्ध महापुरुषों की जीवनी की समालोचना करने पर देखा जाता है कि क्षणजन्मा जगत् पूज्य महापुरुषों को भी जीवन में अनेक दुःखकष्ट-बाधा-विघ्नों के बीच में होकर अग्रसर होना पड़ता है। लेकिन यह भी देखा जाता है कि वे सभी प्रकार की बाह्य अवस्था में अविचलित तथा निर्विकार रहते हैं। उनके चित्त या मन में प्रतिकूल अवस्था किसी भी प्रकार रेखा-पात नहीं कर सकती है। श्रीश्रीबाबाजी महाराज का जीवन भी इसके विपरीत नहीं है।

यहाँ यह व्यक्त करने की आवश्यकता है कि श्रीश्री काठियाबाबाजी महाराज की वसीयत में कमेटी का कोई भी उल्लेख नहीं था। आश्रम संचालन के कार्य में सेवायत या महन्त ही सर्वेसर्वा होंगे तथा रहेंगे, यही उनकी वसीयत का सार था तथा उनकी अन्तर्निहित इच्छा थी।

श्री वृन्दावन के निम्बार्क-आश्रम के ब्रजविदेही महन्त की आकाश वृत्ति है। आश्रम में प्रति दिन साधु-सेवा होती है। उनकी संख्या ५० से २०० तक, किसी पर्व के उपलक्ष्य में ३००/४०० तक होती है। आश्रम की कोई सम्पत्ति या निश्चित आय न रहने पर भी श्री श्री ठाकुरजी की कृपा से दैनिक उपस्थित साधुओं की संख्या के अनुसार उनके भोजन की व्यवस्था हो जाती है। आश्रम के खर्च के सम्बन्ध में ब्रज विदेही महन्त महाराज अत्यन्त सतर्क हैं। कभी-कभी उनको कड़ाई भी करनी पड़ती है। उनके गुरुजी की नीति के अनुसार वह श्री श्री

ठाकुरजी के जमा रुपयों में से फालतू खर्च या सुख-साधन में खर्च नहीं करने देते थे। शरीर की रक्षा के लिए जितने भोजन की आवश्यकता हो, उतनी भोजन-सामग्री की व्यवस्था करते थे। नित्य दैनिक जीवन में आश्रमवासी साधुओं को तीव्र कठोरता के साथ चलना पड़ता था।

सन् १६४८ ई. में आन्तरिक विवाद ने क्रमशः इस प्रकार का विराट् आकार धारण कर लिया कि श्री श्री बाबाजी महाराज ने महन्त का पद-त्याग करने का निश्चय कर लिया। इस बीच कमेटी के कई सदस्यों के उनसे पद-त्याग पत्र माँगने पर उन्होंने श्रद्धा रहित तथा आकांक्षा-रहित होकर पदत्याग-पत्र लिख दिया, लेकिन श्री श्रीबाबाजी महाराज के गृहस्थ गुरु-भ्राताओं ने वह स्वीकार नही किया; कुछ विशिष्ट गुरु-भ्राताओं ने एक साथ मिलकर निश्चित किया कि इस तरह के एक महत्वपूर्ण विषय में सम्प्रदाय के सभी की सहमति-असहमति जानने के लिए जनमत-संग्रह करना होगा, उसी के अनुसार आवेदन पत्र छपवाकर वह निम्बार्क-सम्प्रदाय के सभी के पास भेजा गया।

उक्त आवेदन-पत्र पढ़कर सभी ने अपना-अपना मत व्यक्त किया। उसमें देखा गया कि सभी ने एक वाक्य से श्री श्री बाबाजी महाराज के महन्त-पद पर बने रहने की इच्छा ही जतायी है। यथा समय कमेटी तथा श्रीश्रीबाबाजी महाराज को सम्प्रदाय के सभी का मत बताया गया। कोई उपाय न देखकर कमेटी उस समय के लिए बाबाजी महाराज के पद त्याग-पत्र को अग्राह्य करने पर बाध्य हो गयी तथा बाबाजी महाराज भी पद-त्याग करने से निवृत्त हो गये। लेकिन इससे पहले ही उन्होंने श्रीयुत रसिकदास जी की अध्यक्षता में एक उप कमेटी के ऊपर आश्रम चलाने की सारी जिम्मेदारी तथा दायित्व सौंपकर १४/११/४८ अँग्रेजी तारीख श्री श्री श्यामसुन्दरदासजी, श्री राधाकृष्ण दासजी तथा श्री राधाबिहारीदासजी-इन तीन शिष्यों (साधु-शिष्यों) के साथ वृन्दावन-आश्रम-परित्याग कर भजन के लिए निकल गये।

निरवच्छिन्न भजन

"कृत्वा हि साधनं विन्ध्याचलेऽथ भुवनेश्वरे।
संसिद्धोऽप्यागमद् भूयो वृन्दावनमसौ यतिः।।"
"तस्माद् वृन्दावनाद् भूयो हिमवन्तं शिलोच्चयम्।
गत्वा तु साधनालीनो बभूवैष महागुरुः।।"

(धनञ्जयदास चरितम्)

श्रीश्रीबाबाजी महाराज किसी एकान्त स्थान पर तपस्या करेंगे यह डॉ० सरकार जानते थे। उसी के अनुसार मकान की खोज बीन चल रही थी। बहुत से मकान देखने के बाद अपर शिलांग फार्म के पास एक मकान पसन्द आया। शिलांग शहर से ६ मील दूर समुद्र से करीब ६००० फीट की ऊँचाई पर १ मील लम्बा तथा चौथाई मील चौड़ा विशाल भूखण्ड आसाम सरकार का फार्म है। शिलांग की दर्शनीय चीजों में यह फार्म भी एक है। फार्म देखने में एक चित्र की भाँति सुदृश्य है। आलू और दूध के लिए इसकी श्रेष्ठता है।

सन् १९४९ ई. की २० अप्रैल बुधवार को (बँगला ७ वैशाख सन् १३५६) श्री श्री बाबाजी महाराज अपर शिलांग निर्जन-वास के लिए चले गये।

अपर शिलांग जाकर अगले दिन से ही वह कठोर नियम का पालन करने लगे। उन्होंने अनिश्चित काल के लिए मौन व्रत धारण कर लिया। रोटी, दाल सब्जी आदि सभी कुछ छोड़कर दोपहर को केवल चावल तथा मक्खन व थोड़ा सा दूध तथा रात को केवल दूध ग्रहण करते थे। सुबह बाल-भोग का फल व मीठा प्रसाद थोड़ा सा लेते

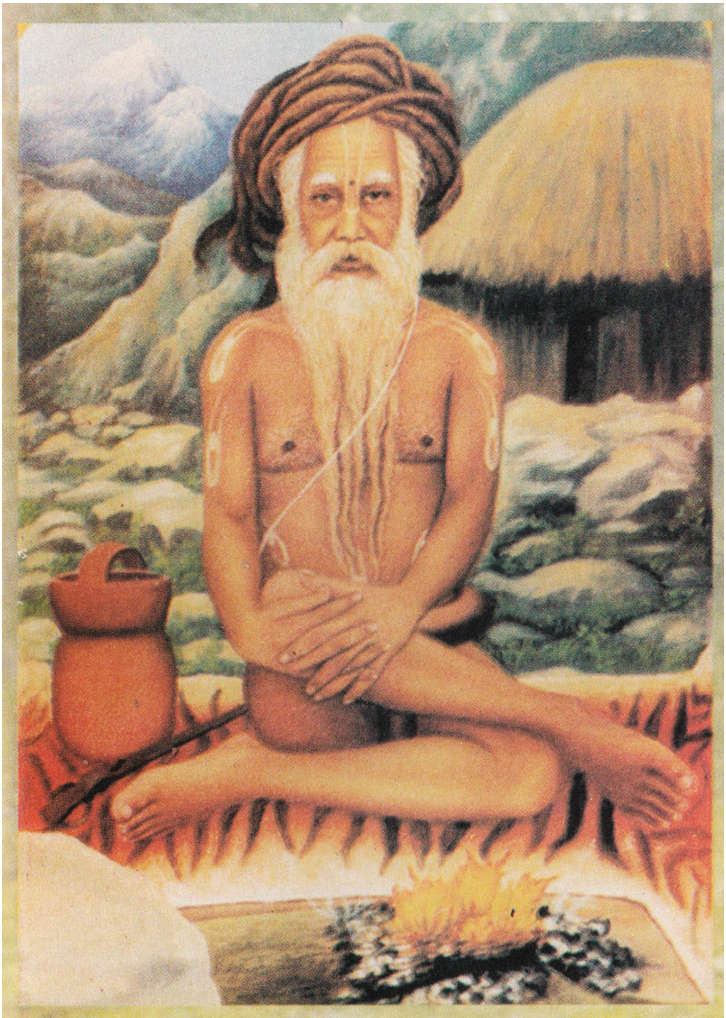

अनन्त श्रीविभूषित

स्वामी देवदास काठिया बाबाजी महाराज

थे। रात के ३.०० बजे शय्या त्यागकर, शौच-स्नान आदि से निवृत्त होकर भजन के लिए बैठते थे। शृंगार-आरती के समय घर से बाहर निकलकर आरती दर्शन करते थे। उसके बाद थोड़ा सा बालभोग का प्रसाद ग्रहण कर भजन में बैठ जाते थे। पूर्वाह्न ११.०० बजे तक भजन करके वह प्रसाद पाते थे। उसके बाद कुछ समय विश्राम करके २.०० बजे शौच स्नान के लिए जाते थे। ३.०० बजे से ५.०० बजे तक भजन करके ५.०० बजे के बाद शिलांग-चेरा-रास्ते पर घूमने के लिए जाते थे।

शिलौंग से जो लोग दर्शन करने आते थे, वे साधारणतया इस समय ही उनके दर्शन पाते थे तथा वे लोग उनके घूमने के साथी होते थे। एक स्लेट साथ रहता था। किसी को कुछ पूछना होता था तो बाबाजी महाराज उस स्लेट पर जवाब लिख देते थे। घूमने के बाद लौटने पर बाबाजी महाराज सन्ध्या-आरती के दर्शन कर पुनः भजन में बैठ जाते थे तथा रात ६.०० बजे तक भजन करते थे। उसके बाद थोड़ा सा दूध पीकर सो जाते थे। कठोर नियम तथा साधना में रहने के परिणाम-स्वरूप उनका स्वास्थ्य अच्छा हो गया था। उन्होने एक निश्चित समयाविधि के लिए यह कठोर व्रत ग्रहण किया था। जिसदिन व्रत का उद्यापन समाप्त हुआ (लेकिन मौन-व्रत नहीं छोड़ा) उस दिन उन्होंने एक भण्डारा कराया, अपने सभी शिष्य, गुरु-भ्राता तथा विशिष्ट भक्तों को निमन्त्रण दिया था। वह १६ मई को शिलांग छोड़ देंगे निश्चित कर इससे २/३ दिन पहले श्री अनिन्द्यकर के घर लौट आये। १५ मई की शाम को शिलांग-वासी जन साधारण की ओर से निमन्त्रण करके बाबाजी महाराज को लाबान-सनातन-धर्मसभा-मण्डप ले जाया गया, वहाँ उनको माल्य-भूषितकर एक मान-पत्र दिया गया।

पूर्व में वर्णित आसाम-भ्रमण समाप्त कर श्रीश्रीबाबाजी महाराज कलकत्ता होकर भुवनेश्वर-आश्रम में एक महीने रहकर विन्ध्याचल चले गये। विन्ध्याचल में पहाड़ के ऊपर माँ आनन्दमयी के आश्रम के निकट महेश भट्टाचार्य के मकान में बाबाजी महाराज ठहरे। बाबाजी महाराज की गुरु-भगिनी श्री युक्ता गंगादेवी के प्रयास से उस मकान की व्यवस्था हुई। वहाँ कई महीने तक रहकर एकान्त में कुछ दिन साधन-भजन किया।

इस समय बाबाजी महाराज् के साथ उनके साधु-शिष्य श्रीश्यामसुन्दर दासजी, श्री राधाबिहारीजी और श्रीराधाकृष्ण दासजी भी थे। बाबाजी महाराज तब बिल्कुल मौन थे। इस समय वह श्री श्री नारायण के चरणों में १०८ तुलसी अर्पण कर बालभोग का थोड़ा सा प्रसाद ग्रहण करते थे। बाद में फिर ११ बजे तक भजन करते थे। ११ बजे श्रीश्रीठाकुरजी का राजभोग लगता था। श्रीश्रीठाकुरजी के राजभोग के बाद बाबाजी महाराज केवल महाप्रसाद (बिना नमक) तथा आधा सेर दूध ग्रहण करते थे। बाद में २ बजे तक थोड़ा विश्राम कर शौच-स्नान समाप्त कर ४.३० बजे तक भजन करते थे। शाम को थोड़ा घूम-फिर कर सन्ध्या आरती के बाद फिर भजन में बैठते थे तथा रात ९ बजे तक भजन करते थे। बाद में श्री श्री ठाकुरजी के रात के भोग तथा शयन के बाद सामान्य आधा सेर दूध प्रसाद-पाकर रात ३ बजे तक सोते थे। इस प्रकार के कठोर नियम के साथ बाबाजी महाराज उस समय चलते थे। श्रीश्री ठाकुरजी की सेवा-पूजा, रसोई व बाबाजी महाराज की सेवा आदि सभी कार्य उनके संगी शिष्य लोग ही करते थे।

सन् १९५० ई. के जनवरी महीने में श्री श्रीकाठियाबाबा जी महाराज के तिरोधान-उत्सव के समय, पहले ही वृन्दावन-आश्रम के लिए नये महन्त की नियुक्ति की इच्छा कर वह सन् १९४९ ई. के २६

सितम्बर को विन्ध्याचल से वृन्दावन-आश्रम में लौट आये। लेकिन साधु-गुरुभाइयों में से कोई भी महन्त बनने के लिए राजी नहीं हुआ। इधर तब वृन्दावन में अर्द्धकुम्भ का समय करीब आ गया था। वैशाख में हरिद्वार में १ महीना पूर्ण कुम्भ होगा। रसिक दासजी के दल या कमेटी ने कुम्भ-मेला की कोई व्यवस्था ही नहीं की थी। बाहर से आये हुए वृन्दावन स्थित साधु-महात्माओं ने एकत्र होकर ब्रजविदेही महन्त के रूप में कुम्भ मेले की सारी व्यवस्थाएँ करने के लिए बाबाजी महाराज से विशेषरूप से अनुरोध किया, आश्रम का महन्तपद जिससे न छोड़ें उसके लिए उन्होंने तथा और भी विशिष्ट व्यक्तियों ने अत्यन्त विरोध किया। प्रधान-प्रधान महन्तों व साधु-महात्माओं के एकान्त अनुरोध की उपेक्षा न कर पाने के कारण वह आश्रम में ही रह गये। लेकिन आश्रम के किसी कार्य में हस्तक्षेप नहीं किया। आश्रम में वास तथा दो वक्त प्रसाद पाने के मामले में ही आश्रम के साथ उनका सम्पर्क रहा। रसिक दास तथा आश्रम-परिचालक उप कमेटी पहले की भाँति आश्रम का संचालन करने लगे। लेकिन बाबाजी महाराज के सम्बन्ध में उनके व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

जो भी हो सन् १९५० के ई. के जनवरी के महीने के अन्त में बाबाजी महाराज ने यमुना के कुम्भ मेले में अपने निर्दिष्ट स्थान पर आसन स्थापित किया। फरवरी का पूरा महीना यमुना के किनारे वास कर वह १५ मार्च को हरिद्वार चले गये। वहाँ जाकर गंगा के मैदान में कुम्भ-मेला के स्थान पर अपना आसन स्थापित किया। अप्रैल के महीने में अक्षय तृतीया तक हरिद्वार के कुम्भ-मेले में रहकर वह पुनः वृन्दावन आश्रम लौट आये। यद्यपि महन्त के रूप में आश्रम-संचालन का दायित्व उन्होंने ग्रहण किया था तथापि वह फार्म के रूप में स्वयं कुछ भी नहीं करते थे। इस सम्बन्ध में १६.५.५० तारीख के पत्र में

हमारे साधु गुरु-भ्राता श्रीजानकीदास जी ने वृन्दावन से लिखा था–"बाबा आज कल मौन तो हैं ही और भी कठोर नियम से भजन में हैं। उनके साथ बातचीत करने का वक्त बहुत कम मिलता है। आश्रम की जिम्मेदारी हमारे ऊपर सौंपकर वह भजन में हैं। विशेष आवश्यकता के क्षेत्र में हम केवल उनका उपदेश ग्रहण करते हैं। मेरे ऊपर आश्रम के खजाने की देखभाल बाबा का हिसाब इत्यादि का लेखा-जोखा करना तथा सेवा का भार बाबा ने दिया है, इस कारण मेरे पास समय बहुत ही कम है। अब तो बिल्कुल भी समय नहीं मिलता है। विशेषतया बाबा के भजन में विघ्न न हो, उस तरफ तीव्र दृष्टि रखनी पड़ती है। इसलिए सेवा-कार्य का बोझ ज्यादा है।

इधर श्रीश्रीबाबाजी महाराज की विरोधी आश्रम-कमेटी ने बाबाजी महाराज को महन्त के पद से हटाने के लिए अदालत में मुकद्मा तक कर दिया। मुकद्मा चलने लगा, लेकिन बाबाजी महाराज के दिल में उसके लिए कोई विकार या गुस्सा नहीं था।

इस समय (सन् १९४८-१९५५ ई.) बाबाजी महाराज की मानसिक अवस्था तथा विरोधी पक्ष के प्रति उनके मन का भाव किस प्रकार का था, वह समझाने के लिए उनके गुरुभ्राता श्रीयुत ब्रजेन्द्रनाथ बोस महोदय के साथ २६.८.५१ तारीख को वृन्दावन-निम्बार्क-आश्रम में विरोधी पक्ष के कार्य-कलाप के सम्बन्ध में बाबाजी महाराज की जो बातचीत हुई अर्थात् ब्रजेन्द्रबाबू की बात के जवाब में उन्होंने मौन रहते हुए कॉपी में जो लिखकर दिया था, उसी का कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है–

श्रीनिम्बार्क-आश्रम वृन्दावन

२६.८.५१

ब्रजेन बाबू

श्रीश्रीठाकुर जी व श्रीश्रीदादागुरु जी मेरे सहाय रहेंगे। यह बात बाबा ने मुझे महन्ताई देते वक्त स्वयं कहा था। उन्होंने सच-झूठ सब कुछ देखा है। बाबा ने स्वयं भी सब देखा है। विरोधी पक्ष चाहे जितनी भी चालाकी करे, सभी कुछ उनकी दृष्टि के भीतर ही है। उन्होंने सब कुछ देखा है तथा उस कर्म के लिए दण्ड भी अवश्य ही देंगे। यह भी कह सकते हैं कि अपनी गलती कोई नहीं देखता, दूसरे की गलती ही साधारणतया देखते हैं। अतः मेरा दोष रहने पर भी मैं नहीं देख पा रहा हूँ। अगर मेरी भी कोई गलती है तो मुझे भी अवश्य ही दण्ड देंगे। व्यावहारिक दृष्टि से ही मैंने यह बात कहीं है। ज्ञान की दृष्टि से देखने पर देखा जा सकता है कि जिसके सम्बन्ध में ही वह जो भी दण्ड देते हैं, उसके द्वारा उसका कल्याण ही होता है। हमारी सारी मलिनता को धोकर हमको निर्मल करने के लिए ही इस तरह की घटना (मुकदमा इत्यादि) घटाकर दण्ड का विधान वह करते हैं। अतः हम जिसको दोष कहते हैं, उसके द्वारा परिणाम में हमारा कल्याण ही होता है। इसलिए भागवत में कहा है कि दोष-दर्शन ही दोष है तथा समदर्शन ही गुण है। ऐसी हालत में जो कुछ हमें दोष लग रहा है, वह सब ही भगवत्-लीला है। भगवान् ही विविध रूपों में विविध प्रकार की लीला कर रहे हैं। इस प्रकार देखने का साधन हमें करना होगा। इस प्रकार की घटना करने पर ही हमें इस साधन का सुअवसर मिल रहा है। इस प्रकार की घटना न घटने पर हमें इस साधन का सुअवसर नहीं मिलता। अतः इसे भगवद्-कृपा के रूप में ही अनुभव करना चाहते हैं। स्तुति-निन्दा, मान-अपमान, सम्पद-विपद, दुःख-सुख, जय-पराजय, लाभ-अलाभ इत्यादि में समबुद्धि तो इतनी आसानी से नहीं होती। उसके लिए कठोर साधना करनी पड़ती है। यदि निन्दा,

अपमान, विपत्ति, दुःख, पराजय, हानि बिल्कुल ही न आये, केवल स्तुति, मान, सम्पत्ति, सुख, जय, लाभ इत्यादि ही आये तो स्तुति, निन्दा, मान-अपमान, सम्पत्ति-विपत्ति, सुख-दुख, जय-पराजय, लाभ-हानि इत्यादि में समबुद्धि की साधना किस प्रकार होगी? इसलिए ये दोनों ही प्रबल रूप से आनी चाहिए तथा उस अवस्था में दोनो में समबुद्धि करने के लिए प्रयास करना होगा। अतः यह समबुद्धि करने के प्रयत्न का जो सुअवसर मिला है, यह असाधारण भगवद्-कृपा समझनी चाहिए तथा ऐसी अवस्था में विचलित न होकर अत्यन्त प्रसन्नचित्त रहकर वही प्रयास करते जाना होगा, जिनको उपलक्ष्य करके निन्दा, अपमान इत्यादि करते आ रहे हैं। वे हमारे इस साधना के सहायक जानकर उनके प्रति असंतुष्ट न होकर उनकी भलाई की ही इच्छा करनी होगी। उसके अलावा अगर तत्व की तरफ देखें तो वे भगवान् का ही रूप हैं। भगवान् ही तो इन सभी रूपों में घटना-घटा रहे हैं। यह धारणा कर दृढ़ रूप से इस प्रकार की साधना करने पर जीवन अमृतमय हो जाता है। अतः ऐसी भगवद्-बुद्धि करने पर उनके प्रति किस प्रकार से असंतुष्ट होऊँ? अन्तर को निर्मल करने के लिए वह इन विविध रूपों में इस प्रकार की विविध घटनाएँ घटा रहे हैं। इस प्रकार के भाव को लेकर जो भी चलते हैं, भगवान् उनके सारे दुःख दूर करके उनके समक्ष अपना सच्चिदानन्द मय स्वरूप प्रकट करते हैं, तब वह भी सच्चिदानन्दमय हो जाते हैं।

कैसी अपूर्व हैं ये सारी उक्तियाँ! शत्रु के प्रति प्रीति का भाव तथा सर्वावस्था में जो साम्यभाव रखा जा सकता है, श्री श्री बाबाजी महाराज हर प्रकार की परिस्थिति में वैसा ही करते थे। इन सभी उक्तियों में उनका ही श्रेष्ठ परिचय मिलता है।

श्री महाविष्णु यज्ञ में श्री श्रीबाबाजी महाराज

"विद्या-वैभव-कारुण्य विप्रावतंस-वैष्णवः।
श्रीधनञ्जयदासोऽयं जयताद् भुवि सर्वदा।।"
"प्रवक्ता सर्वशास्त्राणां वेत्ता निम्बार्कसद्गिराम्।
श्रीधनञ्जयदासोऽयं जयताद् भुवि सर्वदा।।"

(धनञ्जयदास चरितम्)

सन् १६५३ ई. की २१ जनवरी को अखिल भारतीय निम्बार्क महासभा के प्रयास से मध्य भारत के मल्हारगढ़ में वेदवती गंगा के किनारे श्रीविष्णु महायज्ञ का अनुष्ठान हुआ तथा उसमें श्रीश्रीबाबाजी महाराज सभापति पद से युक्त हुए। निम्बार्क महासभा के बुलाये जाने पर वह १६ जनवरी को वृन्दावन छोड़कर उसी दिन शाम को बीना जंक्शन पर पहुँच गये। दूसरे दिन सुबह मल्हारगढ़ के महन्त रामगोविन्द दास जी के शिष्य यमुनादास जी उनको बीना के बड़े मन्दिर में ले गये। वहाँ पर उन्होंने स्नान आदि कर भजन-ध्यान समाप्त किया। इसके बाद भोग लगाकर प्रसाद पाने के बाद उनको बैलगाड़ी में बिटाकर वेदवती नदी के किनारे ले जाया गया। वहाँ से बाबाजी महाराज को यज्ञ-स्थल पर ले जाने के लिए यज्ञकर्ता मल्हारगढ़ के महन्त रामगोविन्द दास जी, बीना के महन्त भगवान दासजी तथा सलेमाबाद आचार्यपीठ के अधिकारी वियोगी विश्वेश्वर दासजी बाद्य-सहित निशान, बन्दूक आदि से सुसज्जित सिपाही इत्यादि को लेकर उपस्थित

हुए तथा बड़ी धूमधाम के साथ एक जुलूस के रूप में उनको यज्ञ-स्थल पर ले आये। बाद में श्रीजी महाराज भी आकर उपस्थित हुए।

२१ जनवरी को यज्ञ का भवनादि कार्य आरम्भ हुआ। तथा रात को १२ बजे तक रासलीला होती रही। दूसरे दिन २२ जनवरी से प्रतिदिन शाम को रासलीला होती रही। २३ जनवरी को इस विष्णु-यज्ञ अनुष्ठान के उपलक्ष्य में उपस्थित पूज्य आचार्य चरण, महन्त, सन्त, विद्वद्वृन्द, सज्जन एवं मातृमण्डली व भग्लनी-वृन्द (मातायें एवं बहिनें) के उद्देश्य से बाबाजी महाराज ने हिन्दी में अपना भाषण दिया, जो निम्नलिखित है–

"सर्वव्यापी सर्वेश्वर श्री विष्णु का जो महायज्ञ आज वेदवती गंगा के तट पर सम्पन्न हो रहा है, उस यज्ञ के तथा इस उपलक्ष्य में उपस्थित आप सभी के दर्शन कर मैं अपने आप को कृतार्थ समझ रहा हूँ। मेरे यहाँ आने में बहुत सी बाधायें थीं तथा कहना होगा कि आने की कोई सम्भावना नहीं थी। लेकिन यज्ञकर्ता महन्त श्री रामगोविन्द दास जी का सादर आह्वान, महन्त श्रीभगवान दास तथा श्रीमहाराज के अधिकारी श्रीवियोगी विश्वेश्वर दास जी के विशेष आग्रह पर बाधायें रहते हुए भी मुझे आना ही पड़ा, क्योंकि प्रेम ऐसी एक वस्तु है, जो सैकड़ों बाधायें रहने पर भी खींचकर ले आती है।

आज इस अखिल भारतीय निम्बार्क-सभा के मंत्री जी तथा आप सभी ने मुझे सभापति के आसन पर सम्मानित किया है; उसके लिए मैं आप सभी का कृतज्ञ हूँ। सभापति का वाचनिक भाषण (मुँह से बोलते हुए) ही होना चाहिए। लेकिन मैं आज ४ वर्ष से मौन धारण किए हुए हूँ। अतः ऐसी परिस्थिति में वाचनिक भाषण देने में असमर्थ होने के कारण आप सब लोग मुझे क्षमा करेंगे। मैं अपना भाषण संक्षेप में लिखकर दे रहा हूँ, इसको श्री निम्बार्क आचार्यपीठ के अधिकारी

पण्डित श्रीब्रज वल्लभशरण जी मेरे ही विशेष अनुरोध पर पढ़कर सुनायेंगे (बाबा जी महाराज का भाषण)-"जो श्री विष्णु की प्रसन्नता के लिए महायज्ञ अनुष्ठित हो रहा है; इसके महत्व का वर्णन समारोह में आये हुए महापुरुष तथा यज्ञकार्य में नियुक्त पण्डित लोग विस्तृत रूप से करेंगे। मैं केवल इतना ही कहता हूँ कि जिस यज्ञ में ३ लाख २० हजार हवन हो रहा है। श्रीमद्भागवत पाठ, भगवान का नाम-जप-संकीर्तन, रासलीला आदि परम पवित्र कार्य हो रहे हैं तथा आचार्य चरण, साधु, सन्त, महन्त तथा विद्वज्जन का शुभागमन हो रहा है; उस यज्ञ में यज्ञाधिष्ठाता स्वयं महाविष्णु अवश्य ही उपस्थित हैं; इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है। इस यज्ञ का महत्त्व स्वतः ही प्रकाशमान है। इस तरह के यज्ञ के द्वारा जन साधारण का बहुत ही कल्याण हो रहा है तथा होगा भी। जैसे एक जलाशय में एक पत्थर का टुकड़ा फेकने पर जलाशय के उस हिस्से में तरंग उठती है तथा वह तरंग चारों ओर बढ़ते-बढ़ते तीर (किनारे) तक पहुँच जाती है, उसके बाद तरंग और दिखाई नहीं पड़ने पर भी वह धरती के अन्दर प्रवेश कर जाती है तथा ब्रह्माण्ड की अन्तिमे सीमा तक पहुँच जाती है। जैसे यहाँ कोई गाना गाए या भाषण दे, हम अगर न भी समझ पायें तो भी वह आकाश में सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है। रेडियो आदि यन्त्र में पकड़ने सकने पर वह समझा जा सकता है। आज इस यन्त्र के प्रभाव से लंदन, अमेरिका, जर्मन इत्यादि स्थान के भाषण, संगीत आदि यहीं पर बैठकर सुना जा सकता है। इसीप्रकार हम जो भी कुछ अच्छा या बुरा सोचते हैं, वह विश्व में सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। योगी पुरुषों के पास इन सभी चिन्ता-धाराओं को पकड़ने का यन्त्र है, जिसके द्वारा वे यह सब पकड़ सकते हैं। इसी तरह प्रत्येक कार्य का प्रभाव भी विश्व-व्याप्त हो जाता है। अतः इस वृहद् महाविष्णु

यज्ञरूपी महत्त्वपूर्ण कार्य का प्रभाव जगत् में सर्वत्र व्याप्त हो रहा है तथा होगा भी, इसमें कोई संशय नहीं है।

विष्णु का शब्द विशेष संस्कारगत अर्थ है-**'वेवेष्टि विश्व व्याप्नोति इति विष्णुः'** अर्थात् जो विश्व को व्याप्तकर विराजमान है, वही विष्णु है। उनकी प्रसन्नता से विश्व का कल्याण हो, इस उद्देश्य को लेकर जब यह यज्ञ हो रहा है, तब विश्व-व्यापी विष्णु विश्व का कल्याण अवश्य ही करेंगे। विष्णु भगवान् के परिपूर्ण अवतार श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है-

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।९/२६ (गीता)

पत्र, पुष्प, फल, जल आदि कोई भी वस्तु भक्ति के साथ प्रदान करने पर उस संयतचित्त भक्त के वे सब उपहार मैं ग्रहण करता हूँ।

अतः इस श्रद्धा-भक्ति के साथ तथा उदारता के साथ यथा योग्य उपकरण देकर वेदज्ञ पण्डित वर्ग के द्वारा इस विश्वात्मा भगवान् का यज्ञ सम्पन्न कराने पर विश्वात्मा की प्रसन्नता नहीं होगी, यह कभी हो ही नहीं सकता, प्रसन्नता होगी ही तथा विश्वात्मा की प्रसन्नता से विश्व का कल्याण भी अवश्य ही होगा, इसमें संशय का कोई अवकाश ही नहीं है। मेरी यह प्रार्थना है कि इस प्रकार के विश्व कल्याणकारी महान् कार्य में आये हुए सभी संत तथा जन-मण्डली इस उपलक्ष्य में श्रीभगवान् का ध्यान, जप, स्वाध्याय करें तथा भागवत-श्रवण, यज्ञ-दर्शन भगवान् की लीलाओं का प्रेम के साथ दर्शन आदि करके जीवन सार्थक करें।

अन्त में पूज्य आचार्यचरण तथा समस्त सज्जनों को नमस्कार कर पूर्वाचार्य के इस श्लोक का स्मरण कर अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ। श्लोक यह है-

प्राप्य जन्म यदि मानुषं नरः
सेवते न तव पाद पंकजम्।
धिक् च जन्म कुलमादि देव तद्
यौवनादि सकलं न शोभते।।

'हे आदिदेव ! मनुष्य यदि इस जन्म को प्राप्त करके तुम्हारे पाद-पंकज की सेवा न करें तो उसके जन्म, कुल, यौवन, धन इत्यादि सभी को धिक्कार है, उसका इन सभी में से कोई भी शोभा नहीं पाता है।'

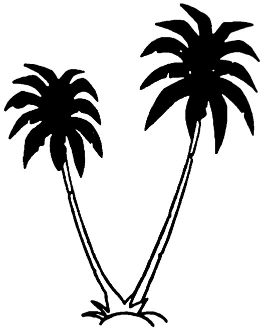

निम्बार्क–आश्रम के युगल–विग्रह दग्ध

एकीभूतमहो विलीनमथवाऽन्योऽन्यं प्रविष्टं मुहुः,
किं वा केलिकलाललामललनालीलावती लालितम्।
मग्नं प्रेम महातरंगमहिते किं समरस्याम्बुधौ,
राधामाधवयामलं निरुपमं वन्दामहेऽहर्निशम्।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

श्री स्वामी सन्तदासजी ने अपनी जीवित अवस्था में सन् १९३३ ई. में हमारे बाबाजी महाराज को श्रीवृन्दावन स्थित निम्बार्क आश्रम का महन्त तथा उसी आश्रम में प्रतिष्ठित विग्रहों का सेवायत भी नियुक्त किया था। तब से वह लम्बे समय तक उन विग्रहों की सेवा पूजा तथा आश्रम का संचालन कार्य तथा प्रतिवर्ष व्रजविदेही महन्त के रूप में व्रज चौरासी कोस वन परिक्रमा चलाते रहे। उसके बाद सन् १९३८ ई. के हरिद्वार पूर्ण कुम्भ में भारतवर्ष के समस्त प्रधान-प्रधान महन्तों ने एक मत से उनको अखिल भारतीय चतुःसम्प्रदाय के श्रीमहन्त के पद पर अभिषिक्त किया। बाबाजी महाराज के लम्बे समय तक आश्रम संचालन करने के बाद आश्रम संचालन के संदर्भ में आश्रम कमेटी के साथ मतभेद शुरु हो गया तथा अन्त में उस कमेटी ने उनके खिलाफ मुकदमा तक किया।

वह मुकदमा चलते रहने के दौरान सन् १९५३ ई. की १९ फरवरी वृहस्पतिवार की रात्रि को एक ऐसी घटना घटी जो समग्र

निम्बार्क-सम्प्रदाय साधु और भक्तों के लिए अत्यन्त भय, अतिशय उत्कण्ठा और तीव्र अनुसोचना तथा निन्दा का विषय था।

वृन्दावन के निम्बार्क आश्रम के मन्दिर में वृहस्पतिवार रात ९ बजे यथारीति श्री श्रीठाकुर जी तथा श्रीजी की शयन आरती हो जाने के बाद पुजारी मन्दिर के दरवाजे पर ताला लगाकर बन्द करके चला गया। लेकिन सबेरे ४ बजे मंगला आरती के लिए मन्दिर का दरवाजा खोलते ही वह डर तथा विस्मय के कारण हतवाक् (गूँगा) हो गया। उसने देखा कि सारा मन्दिर धुँए से भरा है। श्री श्रीठाकुर जी की गद्दा, रजाई, अँग के आभूषण, वस्त्र इत्यादि जलकर राख हो गये थे। मन्दिर के भीतर तब भी आग की लपलपाती जीभ जगह-जगह फैलती जा रही थी। कुछ क्षण बाद ही पुजारी ने प्रकृतिस्थ होकर अन्य साधुओं को विपत्ति के बारे में खबर दी। श्री श्रीबाबाजी महाराज के एकनिष्ठ सेवक श्री राधाकृष्ण दासजी ने जाकर उनको यह बुरी खबर सुनाई। उन्होंने ही शीघ्र आकर मन्दिर में प्रवेश किया तथा सब कुछ अपनी आँखों से देखकर अभिभूत हो गये। इस समय पास में स्थित उड़िया बाबा के आश्रम में श्रीमाँ आनन्दमयी ठहरी हुई थीं। बाबाजी महाराज के प्रार्थना करने पर श्रीमाँ तुरन्त हमारे आश्रम में आ कर उपस्थित हो गयीं। मन्दिर के अन्दर प्रवेश कर हाथ से स्पर्श करके श्री श्रीठाकुर जी तथा श्रीजी के सारे अंगों को अच्छी तरह से निरीक्षण तथा परीक्षण कर बाबाजी महाराज से बोलीं कि दोनों विग्रह जल गये हैं तथा जगह-जगह से खण्डित हो गये हैं। अतः शास्त्र-मत के अनुसार उनकी पूजा नहीं हो सकती। नये विग्रह मँगवाकर उनके स्थान पर अभिषिक्त कर प्रतिष्ठा करनी होगी। विग्रह जलने की खबर पाकर रसिकदास जी स्वतः प्रवृत्त होकर आश्रम में आकर तरह-तरह के उपदेश देने लगे। श्रीमाँ तथा रसिकदास जी के साथ परामर्श करके २६ फरवरी वृहस्पतिवर के दिन नए युगल विग्रह प्रतिष्ठा का दिन निश्चित किया।

युगल विग्रह जब जयपुर से मँगवाने की व्यवस्था की गई लेकिन उस तारीख के अन्दर युगल विग्रह श्री वृन्दावन में लेकर आना सम्भव नहीं होने कारण ५ मार्च वृहस्पतिवार प्रतिष्ठा का दिन पुनः निश्चित किया गया।

मन्दिर में अग्नि-काण्ड के पहले दिन अर्थात् १८.२.५३ तारीख को श्रीमाँ आनन्दमयी के निकट अचानक जले हुए तथा खण्डित रूप में श्री श्रीठाकुर जी प्रकट हुए। इससे माँ एक भीषण अमंगल की आशंका से शंकित हो गईं। लेकिन घटना को उन्होंने गुप्त रखा। २०.२.५३ तारीख को सुबह श्रीमाँ ने जब युगल-विग्रह का दर्शन किया तभी समझ गयीं कि पहले दिन का दर्शन-भ्रम झूठा नहीं था। यह आकस्मिक दुर्घटना केवल किसी भावी अमंगल की ही सूचना थी। इसलिए श्रीबाबाजी महाराज के प्रति जो मुकदमा मथुरा जज कोर्ट में तथा इलाहाबाद हाईकोर्ट में मुलतवी पड़ा हुआ था, उसको समाप्त कराने के लिए श्रीमाँ अत्यन्त व्यस्त हो गयीं। उन्होंने श्रीयुत् मुकुन्द बाबू के द्वारा बाबाजी महाराज तथा विरोधी पक्ष के अर्थात् आश्रम कमेटी के प्रतिनिधि संचालक रसिक दासजी को बुलवा भेजा। उनको उपस्थित होने पर आपसी समझौते के द्वारा मुकदमे को समाप्त करने के लिए दोनों से विशेष रूप से अनुरोध किया। बाबाजी महाराज बोले कि श्रीमाँ यदि विरोध का निपटारा करा सकतीं हैं तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। रसिकदास जी बोले कि महन्त यदि आश्रम-कमेटी के समक्ष अपनी गलती स्वीकार करें तथा कमेटी को मानकर चलने के लिए राजी हों तो वह मुकदमा वापिस ले सकते हैं। इस पर श्रीमाँ ने कहा–यह क्या? महन्त क्या तुम लोगों के नौकर हैं? हर कदम पर कमेटी की सहमति लेकर काम करना पड़ा तो वह आश्रम किस प्रकार चलायेंगे? यह कैसे हो सकता है? तब रसिकदासजी ने कहा कि कमेटी

के सदस्यों का विचार न जानकर वह और कुछ नहीं कह सकते। श्रीमाँ के अनुरोध पर उन्होंने कलकत्ते में श्रीविनोद लाल चक्रवर्ती (चक्रवर्ती-चटर्जी एण्ड कम्पनी के वर्तमान संचालक) शिबपुर, निम्बार्क-आश्रम के वैष्णव दासजी, पटना के प्रोफेसर सुधीर गोपाल मुखोपाध्याय इत्यादि को पत्र तथा तार भेजा। उन्होंने बाबाजी महाराज की सहमति न लेकर ही उन दोनों के संयुक्त नाम से सबको तार भेजा। लक्ष्मी नारायण दास जी को शिवपुर आश्रम में भेज दिया।

नए विग्रह की प्रतिष्ठा

संस्थाप्य श्रीयुगलमूर्तिमसौ प्रपन्नः,
सेवाप्रबन्धमतुलं व्यदधान्मनीषी।
राधामुकुन्दचरणाब्जनिलीनचित्तस्,
तीब्रेण ह्याश्रमपरं तपसाऽव्रजत् सः।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

श्री श्रीठाकुर जी तथा श्रीजी के ज्वल-जाने के दिन से ही बाबाजी महाराज ने प्रायश्चित्त व्रत प्रारम्भ किया। एक बार जो सामान्य अन्न (चावल) ग्रहण करते थे, उसको भी त्याग दिया। सारे दिन उपवासी रहकर दिन छिपने पर थोड़ा दूध तथा फल प्रसाद ग्रहण करने लगे। इधर आश्रम में नए युगल विग्रह की प्रतिष्ठा के कार्य में उन्होंने स्वयं को लगा दिया।

तारीख ३.३.५३ को बाबाजी महाराज ने अपने स्वयं के प्रणामी के रुपये में से हजार से अधिक धनराशि खर्च करके जयपुर से लाए गये नए युगल-विग्रह का अधिवासादि कार्य प्रारम्भ किया, लेकिन उस दिन शाम को उनके मथुरा-कोर्ट के वकील कन्हाई लाल ने उनको बताया कि रसिकदासजी ने प्रतिष्ठा-कार्य बन्द कर देने के लिए जज के पास दर्खाश्त दी है। अतः उसके खिलाफ क़ारण दर्शाने के लिए वह दूसरे दिन कोर्ट में अवश्य हाजिर रहें। वकील से यह समाचार पाकर बाबाजी महाराज के पक्ष के सभी स्तम्भित हो गए। यदि जज ने प्रतिकूल फैसला दिया अर्थात् प्रतिष्ठा स्थगित रखने का आदेश दिया, तब क्या होगा? श्रीमाँ आनन्दमयी को जब यह खबर दी गई तो

वह बहुत विचलित हो गईं। उन्होंने कहा बेटा भगवान् अमंगल के भीतर से मंगल करते हैं। लेकिन यदि प्रतिष्ठा नहीं हुई, आसन यदि शून्य रहा, तो क्या सर्वनाश होगा, वह तो तुम लोग नहीं समझ पा रहे हो। जिस प्रकार से भी हो प्रतिष्ठा-कार्य सम्पन्न करना ही होगा। वह रसिकदासजी को लाने के लिए एक के बाद एक को भेजती रहीं। लेकिन रसिकदासजी नहीं आए।

प्रतिष्ठा के उपलक्ष्य में समस्तीपुर से बाबाजी महाराज के गुरुभ्राता श्रीयुत् राधामोहन घोष कुछ पहले वृन्दावन आकर पहुँचे थे। वह उनके पास से समाचार लेकर एकबार उड़िया बाबाके आश्रम में श्रीमाँ आनन्दमयी के पास गए। फिर माँ का निर्देश जानकर आश्रम लौट आए। इस प्रकार रात के ३ बजे तक वह दोनों आश्रमों के बीच यातायात करते रहे। रास्ते की थकान, अनाहार, अनिद्रा कुछ भी उनको कर्तव्य से अलग न कर सकीं। उनके ही गुरुदेव का आश्रम ध्वंश हो जायेगा, तब यही उनका एकमात्र ध्यान था। श्री माँ ने प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट करके कुछ नहीं कहा था। फिर भी उनकी बातचीत की भाव-धारा से समझ में आ रहा था कि वह बाबाजी महाराज के प्राणों की रक्षा के लिए गहरे संशय में पड़ गयीं थीं। बेटा प्रतिष्ठा न होने पर घोर अमंगल होगा। महन्त बाबा से बोले- कि सर्वस्व त्याग कर भी वह अनुष्ठित प्रतिष्ठा का कार्य समाप्त करें। प्रतिष्ठा होनी ही होगी। बेटा जैसे भी हो तुम महन्त बाबा को राजी कराओ। इत्यादि वाक्य यह श्रीयुत राधामोहन बाबू से कह रहीं थीं। बाबाजी महाराज ने असहाय बालक की भाँति अपने गुरु-भ्राता श्रीयुत् राधामोहन बाबू से पूछा-"आप बतायें क्या करना होगा, आप जो कहेंगे वैसा ही करूँगा"? श्रीयुत राधामोहन बाबू असमंजस में पड़ गये। वह कैसे बाबाजी महाराज से कहें कि आप सब कुछ त्यागकर आश्रम छोड़कर चले जायें। वह कुछ

भी कह न सके। गुरु-भातृगत-प्राण श्रीयुत राधामोहन बाबू के दिल में उस समय किस तरह विद्रोह का तूफान बह रहा था, वह स्वान्तर्वेद्य है। उनके गुरुदेव के स्वोपार्जित धन के द्वारा निर्मित विशाल आश्रम व भारतवर्ष में फैली हुई उसकी ख्याति, भारत के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक उनके गुरुदेव का नाम, यश और ख्याति एवं साधु-समाज में एक छत्र आधिपत्य, सभी कुछ आज कुछ लोगों के षड्यन्त्र से भविष्य के अन्धकार से ढके हुए अतलगर्भ में डूब जायेगा। हाय ! हाय!! कलि का कैसा घोर प्रभाव है ! सरलता की प्रतिमूर्ति, एकनिष्ठ ब्रह्मचारी, ज्ञानी, पण्डित, स्थिर, निर्विकार, शान्त, संयत, आशैशव सर्वत्यागी, पवित्र चरित्र, सुस्मित बदन, सर्वचित्त-हर, आत्म-समाहित, मान-अपमान में समज्ञान, अक्रोधी, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, गुरु में सम्पूर्ण आत्म समर्पित, ब्रह्मज्ञ, समस्त साधु मण्डली द्वारा ब्रज विदेही महन्त पद पर प्रतिष्ठित महन्त महाराज ब्रह्मर्षि को आज कहना पड़ेगा, "महन्त जी आप बाबा (गुरुदेव) के द्वारा प्रदत्त गद्दी त्याग दें। श्रीयुत राधामोहन बाबू के मुँह से स्वर नहीं निकला। वह कुछ भी नहीं कह सके। अतः उस रात अर्थात् ३.३.५३ तारीख की रात को कोई फैसला होकर ही नहीं हो सका। भविष्य के लिए सब कुछ अनिश्चित रह गया। दूसरे दिन सुबह अपने साधु-शिष्य श्यामसुन्दर दासजी को प्रतिष्ठा-कार्य के प्रतिनिधि के रूप में रखकर बाबा जी महाराज अपने वकील कन्हाई लाल के घर चले गए। वकील के साथ परामर्श कर निश्चित हुआ कि श्रीमाँ आनन्दमयी प्रत्यक्षदर्शी हैं। वह अगर कोर्ट में नियुक्त वकील, कमिश्नर के समक्ष अग्निकाण्ड की घटना शुरु से लेकर अन्त तक वर्णन करें तथा नए युगल विग्रह की प्रतिष्ठा करना अत्यन्त आवश्यक कहें, तब कमिश्नर हो सकता है निषेधाज्ञा हटाकर प्रतिष्ठा सम्पूर्ण करने की अनुमति दे दें। इस परामर्श के अनुसार एक व्यक्ति को पत्र

के साथ वृन्दावन में श्रीयुत राधामोहन बाबू के निकट भेजा एवं श्रीमाँ के समक्ष सब कुछ निवेदन करने का अनुरोध किया। सब कुछ सुनकर श्रीमाँ कमिश्नर के पास जवाब-बन्दी देने को राजी हुई, लेकिन माँ के कुछ भक्त यह सुनकर बोले कि माँ को किसी भी हालत में जवाब-बन्दी नहीं देने देंगे। क्योंकि केवल जवाब-बन्दी से तो यह समाप्त नहीं भी हो सकता है। माँ को शायद कोर्ट में जाकर कटघरे में खड़ा भी होना पड़ सकता है। तब माँ और क्या करेंगी। श्रीयुत राधामोहन बाबू को अपनी असमर्थता जतायी, तब श्रीमाँ की अनुमति लेकर उनकी प्रधान सेविका खुक्नी दीदी (श्रीयुक्ता गुरु प्रिया देवी) इस मामले में कोई सहायता कर सकती हैं कि नहीं, देखने की इच्छा व्यक्त करते हुए श्रीयुत राधामोहन बाबू के साथ मथुरा के लिए रवाना हो गयीं। तब उनको १०१ डिग्री बुखार था। उनका ताँगा जब मथुरा के पास आ गया तो खुक्नी दीदी ने देखा कि विपरीत दिशा की ओर से दूसरी एक गाड़ी में बैठकर पटना कॉलेज के अध्यापक सुधीर गोपाल मुखोपाध्याय उनको पीछे छोड़कर वृन्दावन जा रहे हैं। खुक्नी दीदी सुधीर बाबू को पहले से ही जानती थीं एवं वह कमेटी-पक्ष के समर्थन में रसिक दास जी की सहायता करने आयें हैं, यह भी पता था; उन्होंने कुछ भी सोच-विचार न कर सुधीर बाबू की गाड़ी रुकवाई तथा उनके साथ कोर्ट चलने का अनुरोध किया। रास्ते में आपस में सुलह करके प्रतिष्ठा कार्य सुसम्पन्न कराने के लिए सुधीर बाबू से विशेष रूप से अनुरोध किया। सुधीर बाबू भी राजी हो गए, लेकिन कार्यक्षेत्र में उन्होंने विपरीत आचरण किया। मथुरा कोर्ट में उपस्थित होकर वे पीछे से गायब हो गये। जो भी हो, वहाँ बहुत सी घटना घट गयी। उनको विस्तार से लिखकर ग्रन्थ का कलेवर बढ़ाने का कोई लाभ नहीं है। जब देखा गया कि किसी भी प्रकार से आपस में सुलह होने की और सम्भावना नहीं

है, केवल कीमती वक्त बर्बाद हो रहा है; तब खुक्नी दीदी गाड़ी से उतरकर बाबा जी महाराज जिस वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे, वहाँ गईं तथा उनके पैरों में पड़कर आँखों में आँसू लिए हाथ जोड़कर बोलीं–"महन्त जी आप सब कुछ त्याग कर दें ताकि प्रतिष्ठा हो जाए। बाबाजी महाराज बार-बार अपने गुरुभ्राता श्रीयुत राधामोहन बाबू की ओर देखने लगे, मानों वह केवल उनकी सहमति की प्रतीक्षा में बैठे हों। श्रीयुत राधामोहन बाबू के मुँह से बोली नहीं निकली। उन्होंने सिर हिलाकर सम्मति सूचक इशारा किया।" उसी क्षण बाबाजी महाराज ने स्लेट पर लिख दिया-"केवल प्रतिष्ठा के लिए में सर्वस्व त्याग करूँगा।" यह प्रचारित होते ही दूसरे पक्ष में जयकारा पड़ गया। हँसते हुए सुधीर बाबू दौड़कर आये तथा बाबाजी महाराज को आलिंगन कर मित्रता के भाव से बातचीत करने लगे। दोनों पक्षों के वकील तथा दोनों पक्षों के लोग कोर्ट में जजसाहब के सामने हाजिर हुए तथा वकीलों ने बाबाजी महाराज का अभिप्राय जजसाहब को बताया। सबकुछ सुनकर जजसाहब ने बाबाजी महाराज से पूछा-"आपका जो १६/१७ हजार रुपया प्रणामी का बैंक में जमा है, उसका क्या करेंगे?" उन्होंने जवाब में लिख दिया-"वह सब भी त्याग किया।" एक क्षण सोचकर जजसाहब ने पुनः पूछा-"तो फिर आपका गुजारा कैसे होगा?" जवाब में उन्होंने स्लेट पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दिया-"भिक्षा" स्तंभित होकर जजसाहब कुछक्षण तक सजल दृष्टि से बाबाजी महाराजा के मुँह की तरफ देखते रहे। उसके बाद श्रद्धा से सिर झुकाते हुए "वैसा ही हो" कहकर फाइल के पन्ने पलटने लगे। ऐसे में रसिकदासजी अपने वकील से बोले-"वह कब आश्रम छोड़ेगें, पूछें।" उनके वकील ने जो इतने दिन अपने मुवक्किल के पक्ष में सारा कार्य किया तथा किसी भी प्रकार से आपस मे समझौता नहीं होने दिया, बल्कि मुवक्किल को तरह-तरह से

उकसाता आ रहा था; वह भी रसिकदासजी की इस बात पर अत्यन्त खफा होकर धमकाया "चुप रहें, वह सबकुछ छोड़कर चले जा रहे हैं, अब फिर इस तरह का सबाल क्यों?" प्रश्न और करना नही पड़ा। श्रीश्री बाबाजी महाराज ने स्वयं ही स्लेट पर लिख दिया "प्रतिष्ठा का कार्य सम्पन्न हो जाने पर कल ही आश्रम छोड़कर चला जाऊँगा।" विस्मय से हतबुद्धि होकर कोर्ट में उपस्थित सभी हतवाक् होकर स्तब्ध हो गये।

बाबाजी महाराज ने केवल युगल विग्रह प्रतिष्ठा का कार्य सम्पन्न करने के लिए सबकुछ त्याग दिया तथा प्रतिष्ठा-कार्य सम्पन्न होते ही वादीपक्ष को आश्रम की सारी स्थावर व अस्थावर (चल व अचल) सम्पत्ति समझाकर आश्रम छोड़ देंगे, इस प्रकार का आश्वासन लिखकर उस पर अपने हस्ताक्षर कर दिये। उसके बाद उक्त संदर्भ में आपसी सुलहनामे के दस्तावेज पर जजसाहब ने आदेश लिख दिया तथा उस पर वादी तथा प्रतिवादी दोनों पक्षों के वकीलों ने अपने-अपने हस्ताक्षर कर दिये। इस तरह सन् १९५० ई. से जो मुकदमा मथुरा की अदालत में चल रहा था तथा जिसका निवटारा कौन से सुदूर भविष्य में होगा, ऐसा कोई निश्चय नहीं था, उसका अन्तिम समाधान तथा पूर्णाहुति आकस्मिक तथा अचिन्तनीय तरीके से हो गई !

इन सभी घटनाओं के बाद बाबाजी महाराज को मथुरा से वृन्दावन लौटने में शाम हो गई। वह खुक्नी दीदी के साथ सबसे पहले उड़िया बाबा के आश्रम में श्रीश्री माँ आनन्दमयी के पास गये, श्रीश्रीमाँ भी उत्कण्ठित चित्त से उनकी प्रतीक्षा में थीं। खुक्नी दीदी सबसे पहले श्रीश्री माँ के निकट जाकर बोलीं "माँ, हम लोग जीत कर आये हैं। महन्त जी सबकुछ त्यागकर ही आये हैं।"

श्रीश्री माँ ने तुरन्त उठकर बाबाजी महाराज को जकड़कर पकड़ लिया तथा आनन्द की अधिकता में उनकी जटा अपने सिर पर

घिसने लगीं। उस स्वर्गीय दृश्य का भाषा में वर्णन नहीं किया जा सकता। जो भाग्यवार्न लोग उस समय वहाँ पर मौजूद थे, केवल वे लोग अश्रूपूर्ण नेत्रों से वह पवित्र दृश्य देखकर धन्य हुए हैं। कुछ समय पश्चात् भावों को संयमित कर श्रीश्री माँ बोलीं "बाबा, तुम आज जो करके आये, वह भूभारत में आजतक किसी ने नहींकिया। अपने गुरुजी की खातिर आज जो त्याग तुमने किया है, उसके साक्षी एकमात्र तुम्हारे गुरुजी ही हैं। अपनी जटा की मर्यादा तुमने रख ली। आज तुम्हारी जटायें सार्थक हो गयीं। तुम्हारे इस महान् त्याग का पुरस्कार केवल तुम्हारे गुरुजी ही तुमको दे सकते हैं और वह अवश्य ही देंगे।"

कुछ क्षण बाद श्री श्री माँ पुनः बोलीं, "बाबा जमाखर्च ठीक करके सारा रुपया-पैसा कल सुबह ही रसिकदासजी को समझा देना पड़ेगा, एक पैसे की गड़बड़ी न हो। श्रीश्री ठाकुरजी के सोने तथा चाँदी के सारे गहनों की लिस्ट (सूची) बनाकर एक-एक कर समझा देना। कल सुबह सबसे पहले यह काम ही करना होगा। यह हो जाने पर ही चैन की साँस ले सकोगे। उसके बाद प्रतिष्ठा का कार्य प्रारम्भ हो जाने पर मध्याह्न १२ बजे के अन्दर तुम अपने घर से रवाना होकर बाहर निकल आना, फिर उस घर में नहीं प्रवेश कर सकते। प्रतिष्ठा तथा साधु-सेवा इत्यादि हो जाने पर तुम एक वस्त्र में केवल अपने कमण्डल को हाथ में लेकर आश्रम-त्याग कर चले जाना" और एक बात, तुम आश्रम के कोई ठाकुरजी अपने साथ नहीं ले जा सकते। तुम्हारे एक गुरुभाई की दी हुई एक शालग्राम शिला है, उसे संग ले लेना, लेकिन चाँदी का सिंहासन रख जाना। फिर शालग्राम शिला को अपने कण्ठ के साथ बाँध कर ले जाना। "बाबाजी महाराज ने सिर हिलाकर अपनी सहमति व्यक्त की।"

इसके बाद बाबाजी महाराज आदि सभी आश्रम में लौट आये। श्रीयुत राधामोहनबाबू ने उनसे कहा, "महन्तजी, आप रात को

जागकर हिसाब-किताब सब ठीक कर लें। हिसाब मिलाकर रुपया-पैसा गिनकर सब ठीक करके रख लेना।"

बाबाजी महाराज के पास रात के केवल कुछ घण्टों का समय था। पहली रात ही लगभग बिना नींद के ही बिताई थी। सारा दिन बिना खाये-पीये तथा विभिन्न तरह की परिस्थितयों के बीच मथुरा में बीता। पिछले चौबीस घण्टों के अन्दर शरीर, मन तथा मस्तिष्क के ऊपर से कितना भयंकर तूफान बह गया था। उसके बाद अब फिर सारी रात जागकर रुपया-पैसा गिनकर, हर रसीद को हिसाब के साथ मिलाकर, जगह-जगह कुल योग करके, हिसाब-किताब करना कितना कठिन काम है, यह दूसरों के समझने की सामर्थ्य नहीं है। ऐसी हालत में अत्यन्त शक्तिमान पुरुष भी स्थिर चित्त से धैर्य के साथ इस कार्य का समाधान पूरा भी कर पाता कि नहीं, कहना कठिन है। श्रीयुत राधामोहनबाबू ही रात करीब तीन बजे विश्राम करने गये थे। अतः वह दूसरे दिन पाँच बजे से पहले शय्या न छोड़ सके। वह उठकर जल्दी से बाबाजी महाराज के घर आये तो देखा वह अपने आसन पर बैठे हुए हैं, सामने हिसाब की बही तथा कतार से रखी हुई नोटों की गड्डियाँ। श्रीयुत राधामोहन बाबू को देखते ही उन्होंने मन्द मुस्कान के साथ इशारे से बता दिया कि सबकुछ ठीक हो गया है। अवाक् विस्मय के साथ उनकी ओर कुछ देर देखते रहकर श्रीयुत राधामोहन बाबू जल्दी से शौच-स्नान आदि से निवृत्त होने के लिए चले गये। रसिकदासजी के आने पर उनसे रुपया-पैसा समझ लेने के लिए कहा। रसिक दासजी बोले, "मै यह सब नहीं कर सकता। महन्त को रह जाने के लिए कहें। वह आश्रम चलायेगा। आश्रम चलाना उसका काम है। उसी को शोभा देता है।"

श्रीयुत राधामोहनबाबू बोले-"इतनी सब घटनायें घटने के बाद अब ये सब कैसी बातें कर रहे हैं। ये सब घृष्टता की बातें छोड़िये। आइये मेरे साथ, महन्तजी के घर जो चाहा था वही तो हुआ। महन्तजी रुपया-पैसा लेकर आपकी प्रतीक्षा मे बैठे हैं, आइये।" यह कहकर एक तरह से जबरदस्ती ही उनको लेकर बाबाजी महाराज के घर गये। वहाँ कतार से नोट सजे हुए थे। एक-एक कतार में करीब ४/५ हजार रुपये थे। श्रीयुत राधामोहन बाबू रसिकदासजी से बोले, "एक-एक कतार के नोटों को गिनकर कितने रुपये मिले हैं, वह एक अलग कागज पर लिखकर रखें। उसके बाद बही के साथ रसीदों का मिलान करके देखें। बही का हिसाब ठीक है कि नहीं।" दो-एक बार मृदु आपत्ति जताकर रसिकदासजी ने नोट गिनना शुरु किया, लेकिन तीन कतार के नोट गिनकर किसी से कुछ न कहकर अचानक वह बाहर निकल गये। बहुत देर तक इन्तजार करने के बाद भी जब वह लौटकर नहीं आये, तब उनको ढूँढने राधामोहन बाबू बाहर निकले। देखा गया कि वह मन्दिर में जाकर बैठे हुए हैं। राधामोहन बाबू ने उनके पास जाकर कहा, "यह क्या? आप यहाँ बैठे हुए हैं? आइये, आइये रुपया-पैसा सब छितरा पड़ा हुआ है, आकर काम समाप्त कर लें, मुझे और भी बहुत काम हैं।" लेकिन रसिकदास जी किसी तरह भी नहीं उठे। तब राधामोहन बाबू ने वहाँ पर सुधीर बाबू को बुलाकर उनसे हिसाब-किताब तथा रुपया-पैसा समझकर लेने के लिए कहा। खाते के साथ प्रत्येक रसीद का मिलान कर सारे नोट गिनकर सुधीर बाबू ने नकद रुपया तथा नेशनल कैश-सर्टिफिकेट समेत लगभग सैंतालीस हजार रुपये प्राप्त किए। जमा-खर्च बही के साथ मिलान करके देखा कि हिसाब तथा रुपयों में एक पैसे की भी गड़बड़ी नहीं है। तब सुधीर बाबू ने रसिकदास जी को बुलाकर रुपया-पैसा सब

समझा दिया तथा प्राप्ति-रसीद लिखकर देने के लिए कहा, रसिकदास जी ने कोई आपत्ति न कर सारे रुपयों की प्राप्ति स्वीकार कर रसीद लिख दी। उसके बाद तिजोरी (धनागार) के लोहे के सन्दूक में से श्री श्रीठाकुरजी तथा श्रीजी के स्वर्ण तथा चाँदी के निर्मित सारे अलंकार लाकर सुधीर बाबू को लिस्ट के अनुसार समझा दिये गये, इसी बीच नये विग्रह के शृंगार करने के लिए पुजारी ने आकर अलंकार माँगा। एक अलग लिस्ट बनाकर उसको ४२ नग अलंकार दिया गया, उधर प्रतिष्ठा का कार्य चलने लगा। मध्याह्न १२ बजे श्री श्रीबाबाजी महाराज एक वस्त्र में रवाना होकर अपनी कोठरी से बाहर निकल आये। साथ-ही-साथ श्रीयुत् राधामोहन बाबू ने उनके घर के दरवाजे पर ताला बन्दकर चाबी रसिकदासजी को सुपुर्द कर दी।

यथा समय प्रतिष्ठा का कार्य सुसम्पन्न हो गया, उसके बाद निमन्त्रित साधुओं की सेवा तथा ब्राह्मण-भोजन आरम्भ हुआ, श्री श्रीमाँ आनन्दमयी ने दोपहर २ बजे तक वहाँ मौजूद रहकर सारे कार्य का पर्यवेक्षण किया। उसके बाद प्रसाद पाकर अपने आवास पर लौट गयीं। अपराह्न ४ बजे श्रीयुत राधामोहन बाबू ने बाबाजी महाराज को प्रसाद पाने का अनुरोध किया, उनकी व्याकुल प्रार्थना को न टाल सकते थे, कारण कि उन्होंने यथा सामान्य (बिल्कुल थोड़ी मात्रा में) प्रसाद ग्रहण किया। उसके बाद श्रान्त, क्लान्त, अवसन्न शरीर को अपने गुरुदेव के आसन के सामने बरामदे में धरती के ऊपर ढीला छोड़ दिया। किसी साधु ने यह देखकर जल्दी से एक नया कपड़ा लाकर धरती पर (फर्श पर ऊपर) बिछा दिया, थकान के कारण शिथिल होकर करीब १ घण्टे बिना हिले-डुले पड़े रहकर बाबाजी महाराज उठ गये तथा नये विग्रह के सामने रासलीला प्रारम्भ करने का आदेश दिया।

निम्बार्क–आश्रम–त्याग

योऽयं सद्गुरुसन्तदासचरणाम्भोजद्विरफोपमः,
त्यक्त्वा प्राप्तमथाखिलं हि विभवं कौपीनमात्रव्रतः।
घृत्वा हन्त ! कमण्डलुं किल निजं सर्वान् प्रणत्यादराद्,
चक्रे स्वाश्रमषट्कमलविमलं सोऽयं प्रणम्यो न कैः।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

सन्ध्या आरती के बाद बाबाजी महाराज आश्रम छोड़ने के लिए तैयार हुए। श्री श्रीठाकुरजी तथा श्रीजी, श्री श्री काठिया बाबाजी महाराज उनके गुरुदेव इत्यादि सभी को साष्टांग-दण्डवत् प्रणाम कर मन्दिर के बाहर आये। सबसे पहले रसिकदास जी को आलिंगन कर विदा ली, उसके बाद एक-एककर उपस्थित सभी गुरु-भ्राता तथा साधुओं को आलिंगन किया। तब वहाँ जो शोकाकुल दृश्य की अवधारणा हुई, उसका वर्णन करते हुए हृदय फट जाता है। सैकड़ों लोगों से आश्रम का विशाल आँगन भरा हुआ था। साधु-ब्रजवासी, उदासी, निमन्त्रित, अनिमन्त्रित, स्त्री-पुरुषों से आश्रम में और तिल धरने की जगह नहीं थी। महन्त जी सर्वस्व त्यागकर वृन्दावन छोड़कर चले जा रहे हैं, यह समाचार पूर्वाह्न में ही प्रचारित हो गया था, अतः उनके दर्शन-प्रार्थी बहुत से लोग, स्त्री-पुरुष, बंगाली, पंजाबी, मद्रासी, उड़िया, हिन्दी भाषी आदि भारी हृदय से, अश्रुपूर्ण आँखों से वहाँ खड़े थे। आश्रम के फाटक के बाहर राज-मार्ग पर अगणित लोग कतार में खड़े थे। बाबाजी महाराज के मन्दिर से बाहर निकल आने पर चारों तरफ रोने का रोला मच गया था। उस क्रन्दन-रत (रोने में तल्लीन) भूमि पर प्रणाम की मुद्रा में झुकी हुई जनता को भेद कर बाहर आना

कठिन हो गया, बाबाजी महाराज की आँखें भी शुष्क नहीं थीं। अपने गुरुदेव का आश्रम हमेशा के लिए छोड़कर जा रहे हैं। उनके प्राणों से भी बढ़कर प्रिय श्री श्रीठाकुरजी तथा श्रीजी तो इससे पहले ही गोलोक चले गए थे। इस आश्रम के साथ उनके गुरुदेव की कितनी लीलायें उनकी आशा-निराशा की कितनी द्वन्द्व की स्मृतियाँ जुड़ी हुई थीं। उस समय बाबाजी महाराज के दिल में जो तूफान बह रहा था, उसे सम्यक् से हृदयंगम करना दूसरे के लिए कठिन है। धीरे-धीरे आवेग-कम्पित देह से वह उस शोकाच्छन्न जनता को भेद कर फाटक की ओर अग्रसर होने लगे। क्रमशः फाटक के बाहर राजमार्ग पर आकर उपस्थित हो गये, शाम को लगभग ३/३.३० बजे श्री श्रीमाँ आनन्दमयी भी खुक्नी दीदी के साथ फाटक के बारह रास्ते में खड़ी होकर दिल्ली जाने के लिए विदा ग्रहण करने के वक्त बाबाजी महाराज के जटाजूट मस्तक को अपने श्रीहस्त के द्वारा वक्ष के ऊपर स्थापित कर जकड़कर पकड़ लिया तथा अश्रुपूर्ण नेत्रों से मृदु स्वर में बोली, **"बाबा, तुम आज अपने गुरुदेव को भी छोड़कर बहुत ऊँचे उठ गये। तुम्हारे इस महान् त्याग को देखने के लिए देवता तथा ऋषिगण अन्तरिक्ष में खड़े होकर इन्तजार कर रहे हैं। वो देखो, तुम्हारे गुरुदेव प्रसन्न दृष्टि से तुमको आशीर्वाद दे रहे हैं। तुम धन्य हो ! तुम्हारे दर्शन कर मैं भी धन्य हो गयी।"** इसके बाद श्री श्रीमाँ के इशारे पर श्रीयुक्ता खुक्नी दीदी आगे बढ़कर बाबाजी महाराज के बगल में खड़ी होकर बोली, "महन्त जी आपके शालग्राम जी की सेवा के लिए माँ आपको १०१ रुपया दे रही हैं। कृपाकर ग्रहण करें और आप एक वस्त्र में चले जा रहे हैं इसीलिए आपके इस्तेमाल के लिए माँ ने ये चार धोतियाँ दी हैं। इन्हें भी कृपाकर ग्रहण करें। बाबाजी महाराज ने देवी की श्रद्धा का दान अवनत मस्तक (झुके सिर) से ग्रहण किया।

ऐसे में दूसरी एक महिला (स्वर्गीय सर राजेन्द्र नाथ मुखर्जी की विधवा ज्येष्ठा पुत्र वधू) उनके पास आकर बोली, "महाराज ! आपके शालग्राम जीकी सेवा के लिए यत्सामान्य देने की इच्छा करती हूँ, कृपाकर ग्रहण करें, यह कहकर उन्होंने भी १०१ रुपया प्रदान किया। श्री श्रीबाबाजी महाराज के पीछे-पीछे उनके गुरु भ्राता भुवनेश्वर आश्रम के महन्त श्रीमत् मनोहर दासजी तथा कन्हैया दास जी एकवस्त्र में उनके संगी हो गये। उनका कमण्डल हाथ में लेकर उनके एक निष्ठ सेवक श्रीराधाकृष्ण दास जी बाबाजी महाराज के पगचिन्हों का अनुसरण करते हुए चले, वह जहाँ जायेंगे वहीं उनका भी गन्तव्य स्थल होगा। वह जहाँ आसन स्थापित करेंगे वही होगा, उनका भी वास-स्थान। इस आश्रम में वे और कैसे भी नहीं रहेंगे। बाबाजी महाराज ने साधुओं को बहुत समझाया, वे लोग एक साथ आश्रम छोड़ने पर उनके गुरुदेव का आश्रम एक दिन में ही नष्ट हो जाएगा। इस तरह के बहुत से सान्त्वना-वाक्यों से भी वह उन साधुओं को लौटा न सके। गुरुजी को छोड़कर कौन जा सकता है?

अखण्ड भजन

येन संदर्शित विष्णो सर्वव्याप्तं परं पदम्।
दग्ध्वाऽविद्यां पर ज्ञानं दत्तंयेन नमोऽस्तुते।।

बाबाजी महाराज अचानक श्रीकन्हैयादासजी को बुलाकर बोले,"कन्हैया दास ! यहाँ (मथुरा में) और मेरी एक पल भी रहने की इच्छा नही है, तुम सभी तैयार हो जाओ। हम लोग आज ही काशी चले जायेंगे।" चार साधु शिष्य–श्रीश्यामसुन्दर दासजी, श्रीराधाकृष्णदासजी, श्रीसत्यदासजी तथा श्रीसंकर्षण दासजी तथा गुरु-भ्राता श्री मनोहर दासजी तथा श्री कन्हैयादासजी को साथ लेकर बाबाजी महाराज यथा समय मथुरा-स्टेशन आकर गाड़ी मे चढ़ गये। हाथरस जँक्शन जाकर गाड़ी बदलकर अपर इण्डिया एक्सप्रेस में काशी जाने के लिए चढ़ गये। सुबह होने पर देखा गया कि काशी जाने के लिए उसी गाड़ी से श्रीश्री माँ आनन्दमयी भी दिल्ली जा रही हैं। उनके भक्तों के अनुरोध पर श्रीश्री बाबाजी महारजा से बचने के लिए श्रीश्रीमाँ पूर्व प्रस्ताव के अनुसार पहले ही दिल्ली के लिए रवाना हो गईं, लेकिन होनी को कौन टाल सकता है, महापुरुषों की लीला को समझना भी कठिन है। श्री श्रीमाँ ने भक्तों की इच्छा को भी पूर्ण किया। दूसरी तरफ अपने संकल्प के अनुसार कार्य भी सम्पूर्ण किया।

काशी पहुँच कर श्रीमाँ बाबाजी महाराज को मोटर गाड़ी से उनके गन्तव्य स्थल उनकी गुरु बहन श्रीयुक्ता गंगा देवी के भाई श्री कालीमोहन भट्टाचार्य के घर बी ३/१६० शिवाला में पहुँचाकर अपने आश्रम चली गईं।

काशी से ११.३.५३ तारीख को बाबाजी महाराज ने हमारे गुरु-भ्राता स्वर्गीय क्षितिजचन्द्रदत्त चौधरी को सारे समाचार देते हुए एक पत्र लिखा। उसका आवश्यक अंश यहाँ पर उद्धृत किया गया है "तुम लोगों को जो कुछ चिन्ता, भय तथा आशंका हुई है, वो सब झाड़कर फेंक देना।"

इतने दिन मैंने खोलकर जो कुछ नहीं कहा था, आज वो सब तुम लोगों को बता रहा हूँ कि यह सब बाह्य घटनायें पिछले दस वर्षों से कभी किसी दिन मेरे दिल को स्पर्श नहीं कर सकी हैं। श्रीगुरु की कृपा से जितनी गम्भीर जो घटनायें घट गयीं हैं, उन सभी में मैं निर्लिप्त था, बाहरी व्यवहार में जो करने को था, वह केवल कर्तव्य समझकर ही किया है। प्रणामी के रुपयों में भी मेरी कभी आसक्ति नही थी। इन सब बाहरी वस्तुओं में केवल बाहरी व्यवहार रखा था, श्रीगुरु ने सन् १९४३ ई. के जनवरी के महीने में अचानक मेरे अन्तर (दिल) को अमृतमय कर दिया है। तभी से दिल हमेशा शान्ति से भरा हुआ है। इन सब बाह्य घटनाओं से किसी दिन वह शान्ति भंग नहीं हुई है। अतः मेरे लिए तुम लोग इतना बैचेन हुए हो, इसका कोई कारण नहीं है। तुम लोग हर वक्त मेरे लिए निश्चिन्त तथा निर्भय रहना अब केवल मात्र स्थूल सूक्ष्म देह जितने दिन है, उतने दिन तक जितना व्यवहार रखना एकदम आवश्यक है वही रहेगा। श्रीगुरु जब, जहाँ, जिस प्रकार रखना चाहते हैं, रखेंगे। लेकिन जैसे सब कुछ त्यागकर चला आया हूँ, वैसे ही यह स्थूल सूक्ष्म शरीर भी कब छोड़कर परमात्म रूपी अनन्त आनन्द समुद्र में विलीन हो जायेगा, उसी की प्रतीक्षा में समय बिताऊँगा, तुम लोगों के प्रति मेरा आशीर्वाद हमेशा ही है तथा रहेगा, मेरा बाहरी व्यवहार देखकर किसी दिन तुम लोग भ्रम में मत पड़ जाना। मैंने सब कुछ छोड़कर देहरादून जाने से पहले यह सब बातें तुम लोगों को खोलकर लिख दी हैं। यथा–

१. तीन वर्ष वहाँ स्थायी रूप से रहूँगा, इस अवधि में कहीं दूसरी जगह नहीं जाऊँगा।

२. पत्र इत्यादि स्वयं नहीं पढ़ूँगा या लिखूँगा यदि बहुत ही आवश्यकता हुई तो दूसरा कोई पढ़कर जवाब लिख देगा, वह मुझे बताने की आवश्यकता नहीं है। यदि पत्र लिखने या पढ़ने लायक कोई साथ में न रहे तो वह भी सम्भव नहीं होगा। इससे कोई बैचेन मत हो जाना।

बाबाजी महाराज के इस पत्र को पढ़कर भक्तों का हृदय मथित कर शोक की अग्नि जल उठी, उन्होंने दुश्मनों की छुरी से घिरे हुए अपने गुरु के आश्रम को छोड़ दिया, इसका हमें कोई दुःख नहीं है। उनके गुरुदेव श्री श्रीसन्तदासजी महाराज मासिक दस हजार रुपये की वकालत की आमदनी, ख्याति, प्रभाव, हाईकोर्ट की जजगिरि सब कुछ तुच्छ समझकर अपना सब कुछ मुक्त हस्त से दानकर एक वस्त्र में संसाराश्रम त्यागकर श्रीवृन्दावन धाम में अमृत की खोज में चले गए थे, वह आदर्श आज उनके सामने है। उनके दादा गुरु जी ब्रह्मज्ञ ऋषि श्री श्रीकाठियाबाबाजी महाराज त्याग और वैराग्य की ज्वलन्त मूर्ति है। केवल एक काठ (लकड़ी) की कौपीन (लँगोटी) पहनकर उन्होंने सौ वर्षों से भी अधिक समय वृक्ष के नीचे बिताया है। कुछ एक भक्त ब्रजवासी की आन्तरिक प्रार्थना पर उन्होंने देह त्याग के मात्र कई वर्ष पहले कुछ एक कुटी का निर्माण कर एक आश्रम की प्रतिष्ठा की तथा जीवन की शाम के कई वर्ष वह वहाँ रहे थे। श्री श्रीसन्तदासजी कृत उनके गुरुदेव की जीवनी पढ़कर जितना हम जान पाये हैं, उसमें देखा जाता है कि श्री श्रीकाठिया बाबा के गुरुदेव श्री श्रीदेवदासजी महाराज का कोई निर्दिष्ट आश्रम नहीं था, हिमालय की प्रचण्ड ठण्ड में भी वह खुले स्थान पर पेड़ के पत्तों की झोपड़ी में रहते थे। निम्बार्क-दर्शन का मूल

मन्त्र है त्याग और वैराग्य। कामिनी और काञ्चन (स्त्री और धन) का इसमें कोई स्थान नहीं है। निष्किञ्चन न होने पर श्री भगवान् की कृपा नहीं प्राप्त की जा सकती। यही पूर्वाचार्य एक मत होकर कह गये हैं। बाबाजी पूर्वाचार्यों में से अन्यतम हैं।

साधना साधक को निवृत्ति मार्ग के रास्ते पर ले जाती है। अतः बाबाजी महाराज चाहे महल में ही रहें अथवा वृक्ष-तले अपना आसन स्थापित करें, हमारे लिए सभी बराबर हैं। वह जहाँ भी अपना आसन स्थापित करेंगे वही हमारा गुरुद्वार होगा। लेकिन वह भिक्षा के द्वारा शरीर धारण करेंगे, यह हम किस दिल से सहन करेंगे? उनके गृहस्थ शिष्य, शिष्याओं की संख्या करीब ३ हजार होगी। इसके अलावा उनके बहुत से गुरुभाई भी हैं, जो उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धावान तथा भक्तिमान हैं। जिनके शिष्य या शिष्या नहीं हैं, ऐसे भी बहुत से व्यक्ति हैं, जो उनको गुरु की भाँति श्रद्धा तथा भक्ति करते हैं। वह भिक्षा के द्वारा जीवन धारण करेंगे, यह समचार जिसको भी मिला सभी के दिल को बहुत चोट लगी। उनको भिक्षावृत्ति से निवृत्त करने के लिए विभिन्न जगहों के गुरुभाई, गुरुबहिन तथा उनके गुरुभाईयों के पास से प्रतिदिन असंख्य पत्र मिलने लगे। बाबाजी महाराज के उपर्युक्त पत्र के पाते ही तुरन्त उनके श्रीचरणों में सभी ने निवेदन किया कि यह संकल्प उनको त्यागना ही पड़ेगा, वह बाकी दूसरे जितने भी नियमों का पालन करें सभी हम शिरोधार्य कर लेंगे, लेकिन हम इतने सारे शिष्य, शिष्या, गुरुभाई तथा गुरुबहिनों के संसाराश्रम में रहते हुए वह भिक्षावृत्ति के द्वारा अपनी तथा साधु-शिष्यों की शरीर रक्षा करेंगे, यह हम लोगों के लिए मर्मान्तक कष्ट का कारण होगा। श्रीभगवान् की इच्छा से उन्होंने हमारी प्रार्थना को मंजूर करते हुए काशी से १५.३.५३ तारीख को पत्र लिखा, उक्त पत्र का आवश्यक अंश नीचे उद्धृत किया गया है–

".......यदि तुम लोगों का मन नहीं माने तो जितने लोग कुछ भेजना चाहते हो, एक साथ एक जगह भेज देना एवं जो भी जितना दें वह लिख देना, अलग-अलग भेजने पर इतना हिसाब रखना तथा प्राप्ति-संवाद देना एक झंझट का काम होगा, क्योंकि यदि वैसा पढ़ा-लिखा कोई पास में न रहने पर यह काम कौन करेगा? यदि अर्थ-प्राप्ति का समाचार देना सम्भव नहीं हुआ तो दस्तखत देखकर ही समझ लेना कि रुपया मिल गया है। लेकिन कोई कष्ट करके रुपया न देना, यह मैं विशेष रूप से तुम लोगों से कह रहा हूँ।........"

वृन्दावन में रहते वक्त प्रतिष्ठा से पहले दिन वह आश्रम छोड़ने के बाद कहाँ रहेंगे, यह प्रश्न श्री श्रीमाँ आनन्दमयी ने किया था। इस पर श्री श्रीमाँ ने अपने देहरादून में रायपुर के आश्रम में जाकर रहने के लिए उनसे अनुरोध किया था। श्री श्रीबाबाजी महाराज भी इस पर राजी हो गये थे। तदनुसार उन्होंने १६ मार्च को शिवाला से रवाना होकर श्री श्रीमाँ आनन्दमयी के आश्रम में रात्रि-वास किया था तथा १७ मार्च को दिन के ११ बजे Doon Express में चढ़कर छह साथियों के साथ वह देहरादून के लिए रवाना हो गये। दूसरे दिन सुबह ६.३० बजे वह देहरादून के रामपुर आश्रम पहुँच गये।

बाबाजी महाराज के एकनिष्ठ सेवक राधाकृष्ण दास जी ने देहरादून से २२.३.५३ तारीख को लिखे हुए पत्र के द्वारा कि वह २०.३.५३ तारीख से ३ वर्ष की अवधि के लिए जिन नियमों का पालन करते हुए तपस्या में व्रती हो गये हैं, उसके बारे में बताया। वहाँ पर उनकी दैनिक कार्यों की नियमावली इस प्रकार थी-

१. वह देर रात २.४५ बजे शय्या त्यागकर शौच, स्नान, तिलक स्वरूप आदि से निवृत्त होकर भजन के लिए बैठते हैं।

२. ४.३० बजे मंगला-आरती-दर्शन कर भजन में बैठते हैं।

३. ७.३० बजे शृंगार-आरती के दर्शनकर ८ बजे मन्दिर में जाकर अपने हाथ से शालग्राम जी को मन्त्र पढ़कर १०८ तुलसी प्रदान करते हैं।

४. ८.३० बजे बाल्य-भोग का सामान्य प्रसाद (फल इत्यादि) ग्रहणकर पुनः ११ बजे तक भजन में बैठते हैं।

५. ११ बजे से ११.३० बजे के बीच कुछ फल-प्रसाद ग्रहणकर दो घण्टे विश्राम करते हैं।

६. पुनः अपराह्न २ बजे शौच, स्नान, तिलक स्वरूप आदि करने के बाद भजन में बैठते हैं तथा ६ बजे तक भजन करते हैं।

७. शाम को ६ बजे भ्रमण के लिए निकलते हैं। भ्रमण से लौटकर सन्ध्या आरती का दर्शन करते हैं। उसके पास आधे घण्टे की अवधि के लिए बाहर बैठते हैं। दर्शन-प्रार्थी कोई उपस्थित रहने पर उस समय दर्शन पाते हैं। उनको सुनाने लायक कोई पत्र इत्यादि रहने पर इस वक्त पढ़कर सुनाना पड़ता है।

८. रात ८ बजे से ६ बजे तक भजन करते हैं। उसके बाद केवल दूध प्रसाद ग्रहण कर सो जाते हैं। उनके घर का दरवाजा हर समय बन्द रहता है।

उनके संगी साधुओं के लिए भी उन्होंने नियम बना दिया है–जैसे देर रात ३.३० बजे के अन्दर सबको बिस्तर अवश्य ही छोड़ना पड़ेगा। तीन बार आरती के बाद स्तोत्र-पाठ करना होगा। साधन्-भजन करना होगा। दिन के वक्त १ घण्टे से ज्यादा कोई भी विश्राम नहीं कर सकेगा। उनके साथ अगर रहना है, तो इन नियमों के मुताबिक सभी को चलना पड़ेगा।

श्रीराधाकृष्णदास जी के लिए अलग नियम बना दिया है, जैसे–बाबाजी महाराज के लिए स्नान का जल, बहिर्वास इत्यादि यथा-स्थान प्रस्तुत (मौजूद) रखना होगा।

रात के अन्त में २.४५ बजे तथा अपराह्न २ बजे शौच, स्नान आदि की सारी व्यवस्था करनी होगी। इसके अलावा गुरु-सेवा के अन्य सारे ही आवश्यक कार्य वह प्रीति तथा भक्ति के साथ सम्पन्न करते थे। उनके पूर्व जन्म की बहुत ही सुकृति के फलस्वरूप ही उन्होंने यह परमपवित्र सेवा का अधिकार प्राप्त किया था, इसमें सन्देह नहीं है। इस प्रसंग में श्रीराधाकृष्णदासजी ने बताया कि सन् १९४९ ई. में आसाम भ्रमण कर बाबाजी महाराज ने जब कुछ समय विन्ध्याचल पहाड़ पर निवास किया था, उस समय एक दिन उन्होंने कहा था, "बाबा ! (साधु के लिए सम्बोधन) श्रीगुरु की कृपा से मैं परिपूर्ण हो गया हूँ। मुझे सभी कुछ मिल गया है। केवल तुम्हारे तथा विश्व के कल्यांण के लिए मुझे कठोर तपस्या करनी पड़ रही है। मैं अपने लिए कुछ भी नहीं चाहता हूँ।

देहरादून के रामपुर में श्री श्रीआनन्दमयी माँ के मकान में श्रीगुरुदेव अपने संगी-साधुओं के साथ लगभग तीन महीने तक रहे थे। वह मकान वास्तव में श्री श्रीमाँ का अपना आश्रम नहीं था, उनके भक्तों के लिए वह सराय या अतिथि-निवास के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। गुरुदेव तथा उनके साथियों को उस मकान का एक हिस्सा उपयोग करने के लिए मिला था, दूसरे व्यक्ति आकर समय-समय पर ठहरते थे। इसके अलावा अन्य कारणों से भी हमारे साधु गुरु-भ्राता उस मकान में स्थायीं रूप से रहने के लिए अनिच्छा दिखाने लगे। उनकी दृढ़ता को देखकर बाबाजी महाराज ने उनको दूसरा मकान देखने की अनुमति दे दी। हमारे एक गृहस्थ गुरु भ्राता (पटना कॉलेज

के प्रोफेसर श्रीजितेन्द्र नाथ घोष) के सहयोग से कनखल में एक छोटा सा मकान वार्षिक ४०० रुपये किराये पर तय किया गया, बाबाजी महाराज को ले जाकर साधु गुरु भ्राताओं ने १४ जून रविवार १६५३ ई. तारीख को देहरादून की डेरा उखाड़कर कनखल जाकर आसन स्थापित किया।

इस सम्बन्ध में बाबाजी महाराज का अपना लिखा हुआ विवरण यहाँ पर उद्धृत किया गया है। "यद्यपि श्री श्रीमाँ आनन्दमयी के देहरादून के इस शिवालय में रहकर साधन भजन करने की भली भाँति व्यवस्था हो गयी थी तथा हम लोगों को भी जगह बहुत पसन्द आकर साधन-भजन में मन भी बहुत लग गया था। फिर भी मेरे शिष्यों के यह मन-माफिक नहीं लग रहा था, अतः अन्य किसी मकान में किराया लेकर रखने का निश्चय किया था। पटना से श्रीजितेन्द्र नाथ घोष नामक एक शिष्य ने गर्मी की छुट्टियों में मेरे पास आकर साधु-शिष्यों में से किसी-किसी को साथ लेकर देहरादून, राजपुर, हरिद्वार, कनखल इत्यादि जगहों पर बहुत से मकान देखे। उनमें से कनखल में २/३ मकान उनको पसन्द आये। कनखल जगह उनको अच्छी लगी। कनखल के उन तीन मकानों में से मैं अपनी पसन्द के किसी मकान में रहकर साधन-भजन करने पर ही अच्छा रहेगा, समझकर मेरा कनखल जाना ही उन्होंने निश्चित किया।

श्रीयुत निताई बोस नामक किसी सभ्य बंगाली का गंगा किनारे का मकान मुझे पसन्द आया। उन्होंने उस मकान का नाम "शान्ति-निकेतन" रखा था। यह मकान शहर से बिल्कुल बाहर गंगा के ऊपर तथा दक्षेश्वर महादेव के मन्दिर के साथ संलग्न स्थान पर स्थित था। हमारे आवश्यकतानुसार सभी घर भी उसमें हैं। स्थान निर्जन तो है ही, दृश्य भी अत्यन्त मनोरम है। सम्मुखस्थ माँ गंगा

कल-कल स्वर में प्रवाहित हो रही हैं तथा दूसरे किनारे पर सामने ही हिमालय मानो आकाश चीर कर खड़ा हुआ है। तब १९.६.५३ तारीख को केशवानन्द स्वामी के आश्रम से इस मकान में हम लोग आ गये। हम लोग "शान्ति-निकेतन" नामक मकान में रहने के बाद प्रतिदिन गंगा स्नान कर साधन-भजन करते रहकर खूब आनन्द प्राप्त करने लगे। यहाँ इतना आनन्द मिलने लगा कि हमको ऐसा लगने लगा मानो हम बैकुण्ठ में वास कर रहे हैं। इसीलिए मालिक की अनुमति लेकर इस मकान का "शान्ति-निकेतन" नाम बदलकर "श्रीबैकुण्ठ-धाम" रख दिया।"

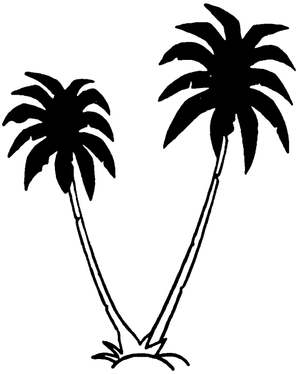

प्रयाग के पूर्ण कुम्भ में श्रीश्रीबाबाजी महाराज

प्रयागे कुम्भमेलायां गत्वा मौनव्रतं स्वकम्।
समापयामास ततोगतो वृन्दावनं शुभम्।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

इस वर्ष तीर्थराज प्रयाग में पूर्ण कुम्भ का मेला लगा, कई कारणों से इस बार के प्रयाग कुम्भ मेले ने प्रसिद्धि प्राप्त की। इस बार चार विशेष स्नान की तारीख पड़ी थी :-

१. ३० पौष मकर संक्रान्ति के दिन।

२. ५ माघ पूर्णिमा, चन्द्र ग्रहण, चूड़ामणि योग में।

३. २० माघ मौनी अमावस्या तिथि को तथा

४. २५ माघ वसन्त पञ्चमी, सरस्वती पूजा के दिन

द्वितीय तथा तृतीय दिन के स्नान के योग-चूड़ामणि योग तथा मौनी अमावस्या तिथि बहुत बर्ष बाद पड़ने के कारण कुम्भ-मेला में स्नानार्थियों की भीड़ भी कल्पना के बाहर हुई थी। विशेषकर सबसे ज्यादा पुण्य-योग मौनी अमावस्या के उपलक्ष्य में (तृतीय स्नान के दिन २० माघ) लगभग ५० लाख नर-नारियों ने त्रिवेंणी-संगम में पुण्य स्नान किया था, ऐसा दैनिक समाचार पत्रों में प्रचारित किया गया था।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज कुम्भ-मेले में नहीं जायेंगे, निश्चित् करके ही २८ आश्विन् १९५४ ई. सप्तमी पूजा के दिन कलकत्ता छोड़कर आसाम भ्रमण के लिए निकल गये थे तथा उस समय वह भ्रमण में ही थे। ब्रज विदेही महन्त तथा श्रीमहन्त को कुम्भ मेल में

उपस्थित रहकर बहुत से कर्तव्य-कर्म करने होते हैं। उनकी विशेष-विशेष स्नान की तिथियों को वैष्णव चार-सम्प्रदाय-खालसा के साधुओं की जो विशाल शोभ यात्रा निकलती है, उसके आगे रहना पड़ता है। वहाँ ब्रजविदेही-महन्त पद प्राप्त होने के बाद से अब तक यही नियम प्रचलित था। वृन्दावन आश्रम-कमेटी के सम्पादक श्री रसिकदासजी ने कई साधुओं को वशीभूत करके भादों के महीने में श्री प्रेमदासजी को महन्त बना दिया। श्री प्रेमदासजी कुम्भ-मेले में जायेंगे ही। बाबाजी महाराज कुम्भ-मेले में जाने पर ब्रजविदेही महन्त-पद की मर्यादा, क्षमता तथा एकाधिपत्य को लेकर प्रेमदासजी के साथ उनका संघर्ष अनिवार्य हो जायेगा। अतः वह दूर हटकर रहना चाहते थे; लेकिन भगवान् का विधान दूसरी तरह का है। बाबाजी महाराज इस समय (आसाम) तिनसुकिया में रह रहे थे। १९ जनवरी को उनको कुम्भ मेले से उनके साधु गुरु-भ्राता, भुवनेश्वर-आश्रम के महन्त स्वामी मनोहरदासजी के पास से इस सन्दर्भ में एक तार द्वारा संदेश मिला कि कुम्भ के मेले में सारे महन्त वहाँ पर उनकी उपस्थिति की प्रार्थना करते हैं। अतः उनका अविलम्ब वहाँ जाना जरूरी है। यथा-

Mohant Dhananjoy Das. tinsukie. kumbhamela Gaugapatty. 19th Jan. 54. All Ani Mahant Want you. Start Immediately--Manohar Das.

तिनसुकिया में सारे गुरु-भाई-बहिन सभी इस समाचार से प्रसन्न हो गये तथा बाबाजी महाराज से कुम्भ-मेले में जाने के लिए अनुरोध किया। साधुओं के आह्वान की वह अवहेलना न कर सके। अतः संगीसाधु शिष्यों में से दो साधु-शिष्य, श्री जानकीदासजी तथा श्रीराधाकृष्णदासजी को साथ लेकर अगले दिन २० जनवरी १९५४ ई. को आकाश-मार्ग (हवाई जहाज) से कलकत्ता चले आये। ८/३१ फर्न रोड पर दो दिन रुककर २३ जनवरी रात ९.५५ बजे दिल्ली एक्सप्रेस से वह इलाहाबाद के लिए रवाना हो गये।

इलाहाबाद शहर में दो दिन रुकने के बाद उन्होंने कुम्भ-मेला-स्थल पर वैष्णव-चार-सम्प्रदाय-खालसा के लिए निर्दिष्ट स्थान पर अलग तम्बू में आसन जमाया। वैष्णव-चार-सम्प्रदाय के साधु-महन्त जिससे बाबाजी महाराज के खिलाफ होकर प्रेमदासजी को ही ब्रजविदेही महन्त के रूप में स्वीकार तथा ग्रहण करें। उसके लिए प्रेमदासजी के पक्ष के लोग प्राण की बाजी लगाकर कोशिश करने लगे। लेकिन लगभग सभी महन्तों ने एक मत होकर कहा कि बाबाजी महाराज जितने दिन देह में जीवित रहेंगे, तब तक वे लोग उनको ही ब्रजविदेही तथा श्रीमहन्त के रूप में मानेंगे। दूसरे किसी को भी उनके इस पद पर नहीं बैठायेंगे। लेकिन यदि उनकी वास्तव में ही इस पद पर रहने की इच्छा न हो, तब वे लोग दुःख के साथ ही दूसरे योग्य व्यक्ति का निर्वाचन करने का प्रयत्न करेंगे। उनकी बातचीत से यही स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ कि बाबाजी महाराज ब्रजविदेही व श्रीमहन्त का पद त्याग करने पर यह सम्मानित पद निम्बार्क-सम्प्रदाय के अधिकार के बाहर चला जायेगा। श्री श्री रामदास काठिया बाबाजी महाराज से बाबाजी महाराज तक तीन पीढ़ियों से यह सम्मानित पद निम्बार्क-सम्प्रदाय के अधिकार में है, लेकिन इस पद के प्रति बाबाजी महाराज का व्यक्तिगत रूप से कोई आकर्षण या मोह किसी समय नहीं था।

लेकिन वैष्णव-चार-सम्प्रदाय के महन्त, साधु व कुम्भ मेला में उपस्थित उनके बहुत से गुरु-भाई व बहिन, शिष्य, शिष्या तथा अगणित गुण-मुग्ध-भक्तों के अनुरोध की उपेक्षा करना उन्होंने उचित नहीं समझा। निम्बार्क-सम्प्रदय के आचार्य श्री श्रीजी महाराज का भी बाबाजी महाराज के इस पद पर बने रहने का भी हार्दिक आग्रह तथा उत्साह था, अतः सभी की प्रार्थना तथा अनुरोध पर उन्होंने इस पद पर बने रहने का ही निश्चय किया।

सन् १९४९ ई. की २० अप्रैल-तारीख को शिलौंग शहर में रहते हुए बाबाजी महाराज ने अनिश्चित काल के लिए मौन-व्रत धारण कर विशेष नियम के अधीन रहने का निश्चय किया था। करीब ५ वर्ष पूरे होने को चले वह वही मौन अवस्था में थे। कुम्भ-मेला में उपस्थित होने पर सभी-साधुओं व दूसरे लोगों को उनसे इस बार मौन भंग करने का अनुरोध करते देखा गया, जिसकी वे उपेक्षा न कर सके। उन्होंने उनकी कातर प्रार्थना के रक्षार्थ मौनी अमावस्या के दिन स्नान के बाद मौन भंग करेंगे, निश्चित किया। यथा-समय स्नान कर उन्होंने पुण्य तीर्थ क्षेत्र में त्रिवेणी संगम स्थल पर पाँच वर्ष का मौन-व्रत भंग किया ३ फरवरी १९४५ ई. को। इस उपलक्ष्य में महन्तों की चिराचरित प्रथा के अनुसार ६ फरवरी तारीख को उन्होंने साधु-सम्मानार्थ एक विशाल भण्डारा दिया। लड्डू, पूरी, सब्जी आदि पक्के प्रसाद की व्यवस्था हुई थी। हजार से ऊपर साधु तथा भक्तों ने प्रसाद ग्रहण किया था। काठिया बाबाजी महाराज की जय की ध्वनि से आकाश तथा दिशायें गूँजने लगीं। समवेत साधुओं के अनुरोध पर तथा उनके सम्मानार्थ बाबाजी महाराज ने अपना आहार का नियम भंगकर उस दिन पक्का प्रसाद (पूरी, सब्जी आदि) ग्रहण किया था।

इसी बीच कुछ साधुओं ने मिलकर पूर्व संकल्प के अनुसार प्रेमदासजी के तम्बू में एक सभा करके प्रेमदासजी को ब्रजविदेही महन्त कहकर घोषणा कर दी। उनकी इस प्रकार की मनोवृत्ति देखकर वैष्णव-चार-सम्प्रदाय के अन्य महन्त व साधु लोग नाराज हो गये। उन्होंने उसी दिन रात को एक विशाल सभा बुलाकर सर्वसम्मति से फैसला किया कि बाबाजी महाराज ही पहले ब्रजविदेही महन्त तथा श्रीमहन्त थे, वर्तमान में भी वही हैं तथा भविष्य में भी वही रहेंगे। सभा में जो फैसला हुआ, वह लिखकर उपस्थित सभी महन्तों ने उस पर

दस्तखत कर दिये तथा वही कार्य-विवरणी छपवाकर प्रचार के लिए बँटवा दी गयी। उक्त सभा की कार्य-विवरणी कलकत्ता के कुछ बँगला दैनिक समाचार पत्रों में ११ फरवरी तारीख को प्रकाशित हुई थी।

बाबाजी महाराज कुम्भ-मेले में आने से पहले ही रसिकदासजी वृन्दावन से कुम्भ मेले में उपस्थित हुए थे। उनके पक्ष के व्यक्तियों से परामर्श कर वर्तमान परिस्थितियों में उनका कर्त्तव्य तथा पद्धति क्या है, उस सम्बन्ध में निर्देश देकर वह मौनी अमावस्या स्नान के पहले ही वृन्दावन लौट आये। वृन्दावन लौटने के बाद उनको निमोनिया हो गया। रोग-जटिल जानकर ३ फरवरी को उनको स्थानीय रामकृष्ण-मिशन अस्पताल मे स्थानान्तरित कर दिया गया तथा ४ फरवरी को उनका देहान्त हो गया। श्रीरसिकदासजी की कर्म-शक्ति असाधारण थी। उनकी लगभग ६६ वर्ष की उम्र थी, लेकिन इस वृद्धावस्था में भी वह युवक की भाँति परिश्रम कर सकते थे। वह श्री श्री १०८ स्वामी सन्त दासजी के गृहस्थ शिष्य थे तथा बाबाजी महाराज के संन्यास-शिष्य थे। यह अत्यन्त दुःख तथा अफसोस का विषय है कि अन्तिम अवस्था में संसार-आश्रम छोड़कर तथा बाबाजी महाराज से संन्यास लेकर भी अपनी सारी शक्ति व अपरिमित संचित अर्थ को अपने गुरु-भ्राता तथा संन्यास-गुरु को लान्छित व अपदस्थ करने मे लगाया था। लेकिन देहावसान से पहले ही इस प्रकार के कार्य के लिए उनके मन मे पश्चात्ताप आया था, वह उनके २५ दिसम्बर १९५३ ई. तारीख को वृन्दावन से बाबाजी महाराज को लिखे गये पत्र से समझा जा सकता है। इसलिए उस पत्र के अन्तिम भाग की हूबहू नकल यहाँ पर उद्धृत की गयी है :-

"हम सभी श्रीश्री ठाकुरजी के हाथ के खिलौना मात्र हैं। वह जिस तरह चला रहे हैं, उसी प्रकार हम चल रहे हैं। हमारी अपनी

इच्छा या अनिच्छा का कोई मूल्य नहीं है। दोष, त्रुटि, हिंसा, द्वेष, विवाद, विसम्वाद के मूल में वही हैं। अद्य प्रेमावतार ईसामसीह के शुभ जन्मदिन पर आपके निकट के दास तथा सेवक की यही प्रार्थना है कि आप मुझे सब प्रकार से क्षमा करें तथा बाबाजी महाराज के शिष्य-प्रशिष्यों में सभी एक साथ मिलकर इस मूल आश्रम का सुनाम तथा आदर्श अक्षुण्ण रख सकें, उसका प्रयत्न करें। इसी से आपकी अक्षय कीर्ति संस्थापित होगी।"

जो भी हो, बाबाजी महाराज प्रयाग के कुम्भ मेले में आये हैं, जानकर श्रीवृन्दावन से वहाँ के प्राचीन दो महन्तों ने अत्यन्त प्रीति के साथ वृन्दावन-कुम्भ के पते पर पत्र लिखा, जो निम्नलिखित है-

श्रीरामकृष्णाभ्यां नमः

श्रीधाम वृन्दावन

३०.१.५४

श्रीमहन्त धनञ्जयदासजी को,

छातावाले बाबा मुरलीदास जी का दण्डवत् पहुँचे और सब सन्त-महन्तों को दण्डवत् पहुँचे। बात यह है कि आप श्रीधाम वृन्दावन वास करें। यदि आपको उस स्थान में न रहना हो तो दूसरी जगह स्थान बनाओ। वृन्दावन में ही सन्तसेवा करो। यदि आपकी इच्छा स्थान बनाने की न हो तो मैं स्थान दूँगा। सन्त-सेवा बराबर आप को करनी है।. ......आगे जो हुआ वह भगवान् जो चाहते हैं, वही होता है। परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि आपने गद्दी छोड़कर बिना किसी से राय लिये चले गये।

अब कृपा करके जो बाबा लिखते हैं, उस पर ध्यान देकर पत्र शीघ्र देना जी। बाबा ठीक लिखते हैं, कृपाकर बाबा जो लिखते हैं, बल्कि सबकी राय यही है। कोई दुष्ट बुद्धि का मनुष्य बिरला आपसे

खिलाफ करे तो करे; परन्तु सब वृन्दावनवासी महात्मा, सद्गृहस्थ सब आपको चाहते हैं, जानियेगा। वृन्दावन धाम आप न छोड़िये, सिर्फ ईंटा, पत्थर ही तो आपसे अलग हुआ है। आप दूसरा ईंटा, पत्थर का घेरा बना सकते हैं। तो फिर आप बाहर क्यों रहते हैं। मेरे को आपश्री का पूरा पता नहीं मिला है। इसीलिए पत्र समय पर नहीं दे सका। सब खबर मिला कि आपश्री कुम्भ पर पधारे, तब लिख रहा हूँ। पत्रोत्तर अवश्य ही देंगे।

पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में-

आपका

छातावाले बाबा मुरलीदासजी

●

✤ श्रीसर्वेश्वरो विजयते ✤

श्रीधाम वृन्दावन

श्रीनिम्बार्क भगवान की जय, श्रीसर्वेश्वर भगवान की जय, श्रीव्रजविदेही सन्त शिरोमणि विजयते। पूज्यचरण श्री १०८ श्रीमहाराज महन्त ब्रजविदेही श्रीधनञ्जयदास जी पुष्पहार अर्पण, तत्पश्चात् दण्डवत्।

आपको यहाँ से जाने से एक प्रचण्ड दुःख सब हम लोगों के हृदय में लगा। विचार था कि आपकी सेवा में पत्र भेजें। तथापि ठीक पता नहीं चला कि आपका निवास कहाँ है। यह तो निश्चय सबको हो गया कि आप श्रीजी के स्थान के पद को त्याग के अचानक पधारे। इसका भीतरी रहस्य सबको प्रकट हो गया। यहाँ के सन्त आपको चन्द-चकोरवत् चाहते हैं और आपके दर्शन के अभिलाषी हैं। सुना है कि श्रीप्रयागराज में आपको सब स्थानधारियों ने बुलाया है। इस पद को आपको त्यागना उचित नहीं। यहाँ सब लोगों की प्रार्थना है कि ब्रज के सब ग्रामवाले साधु-समाज ब्रजविदेही-पद पर आपको ही चाहते हैं। क्योंकि आपके

सिवाय इस पद के योग्य कोई दृष्टि नहीं आती। आपको सब स्थानधारी इस पद के लिए कहें तो अवश्य स्वीकार करेंगे तो बड़ी कृपा होगी।

आपका दासानुदास

चौथमल गीरदावर

ऐसे कई पत्र आये थे। इससे स्वतः प्रमाणित होता है कि बाबाजी महाराज के ऊपर वृन्दावनवासी सन्त, महन्त, सद्गृहस्थ महानुभाव कैसी गहरी श्रद्धा रखते थे। वे महानुभाव यह भी चाहते थे कि बाबाजी महाराज ही ब्रजविदेही महन्त तथा चतुःसम्प्रदाय श्रीमहन्त बने रहें। उनके द्वारा ही सम्प्रदाय की विलक्षण उन्नति होगी। वस्तुतः भविष्य में श्रीगुरुजी सन्तदासजी की कृपा से बाबाजी महाराज जी ने ही श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय की शोभा, चौगुनी बढ़ाई, जो सम्प्रदाय के महानुभावों को भलीभाँति अवगत है।

इनके पत्रों के जवाब में बाबाजी महाराज ने इस प्रकार खबर दी थी कि आसाम-भ्रमण के बीच में से उनको पंचों के आह्वान पर प्रयाग-कुम्भ में आना पड़ा था, इसीलिए कुम्भ का कार्य समाप्त होते ही पुनः आसाम लौटकर बाकी आसाम-भ्रमण सम्पूर्ण करना होगा, क्योंकि जिन सब स्थानों पर जाने के लिए पहले वादा किया था, वहाँ न जाने पर वे लोग अत्यन्त दुःखी होंगे, आसाम-भ्रमण समाप्त कर पुनः उनकी उत्तराखण्ड जाने की इच्छा है। उत्तराखण्ड जाते वक्त यदि मौका लगा तो श्रीवृन्दावन धाम होते हुए उत्तरा-खण्ड जायेंगें और यदि सम्भव न हुआ तो वे दुःखी नहीं हों। उनकी उनके प्रति जो आन्तरिक स्नेह व प्रीति है, उसके लिए वह कृतज्ञ हैं।

११ फरवरी तारीख को बाबाजी महाराज कुम्भ-मेला का स्थान त्यागकर इलाहाबाद शहर गये। वहाँ पाँच दिन विश्राम कर पुनः आसाम जाने के लिए गोरखपुर १६ फरवरी तारीख को रवाना हो गये।

इलाहाबाद छोड़ने से पहले १२ फरवरी तारीख को उन्होंने अपने हाथ से जो पत्र लिखा था, उसमें अन्य विषयों में और कुम्भ-मेला तथा उनके अपने सम्बन्ध में इस तरह से लिखा हुआ था–

"कुम्भ का कार्य बहुत ही सुन्दर तरीके से भगवत्-कृपा से सम्पन्न हो गया है। अमावस्या के दिन त्रिवेणी संगम में जुलूस (सवारी) में जाकर मौन-भंग किया है, जानना। शुरु में २/१ दिन बातचीत करने में परेशानी होती थी, लेकिन अभी उतनी परेशानी नहीं होती है। परन्तु अभी भी स्वाभाविक रूप से बोली नही निकल रही है। लगता है और कुछ दिनों के बाद वैसा होगा, प्रेमदास के दल में जो लोग थे, उनके साथ गौड़ीय सम्प्रदाय के श्रीमहन्त रासबिहारी दासजी ने प्रेमदास को चादर दी थी। इसीलिए सारे महन्तों ने पंचायत करके श्रीरासबिहारी दासजी का वहिष्कार किया है तथा ब्रजविदेही तथा चार-सम्प्रदाय श्री महन्त मैं ही रहा, कहकर घोषणा की। वृन्दावन से भी एक वृद्ध साधु का पत्र आया है। क्या साधु, क्या गृहस्थ हर कोई चाहता है कि मैं वृन्दावन में जाकर वास करूँ। कुम्भ में भी लगभग सभी ने अनुरोध किया कि मैं वृन्दावन में आश्रम बनाऊँ। देखा जायेगा क्या भगवान् की इच्छा है। ६.२.५४ तारीख को मौन भंग के उपलक्ष्य में लड्डू, पूड़ी, सब्जी का पक्का भोजन किया है।"

सम्प्रदाय–प्रचारार्थ आसाम में आश्रमादि का निर्माण

भूमिं क्रीत्वाऽऽश्रमं योगी निर्माप्य पुनरेव सः।
काठियाबाबा स्थानं तत् ख्यातं शिलचरेऽधुना।।

श्री श्री बाबाजी महाराज १८ फरवरी को गोरखपुर छोड़कर रास्ते में कटिहार तथा गौहाटी (गुवाहाटी) में शिष्यों के घर २/३ दिन विश्राम करके २५ फरवरी को पुनः तिनसुकिया पहुँचे। तिनसुकिया से नौगाँव, लामडिंग, बदरपुर, करीम गंज, कालकाघाट इत्यादि जगह होते हुए बाबाजी महाराज २६ मार्च को शिलचर पहुँचे। शिलचर में लगभग एक सप्ताह तक थे। उस समय वहाँ के स्थानीय बिलपाड़ अखाड़े के सेवायत श्रीयुत् रजनीकान्त साधु नामक एक भक्त ने (निम्बार्क-सम्प्रदाय के नहीं) निम्बार्क-आश्रम के एक मन्दिर के लिए शहर के करीब ही बिलपाड़ नामक स्थान पर २ बीघा ३ काठा (बिस्वा) जगह दान की। ५ अप्रैल १९५४ ई. सोमवार को बाबाजी महाराज ने इस जमीन पर नींव रखी। इससे शिलचर शहर के भगवत्-भक्तों के अन्दर अत्यन्त जोश पैदा हो गया।

शिलचर से वह हाइलाकान्दि गये। शिलचर में निम्बार्क-आश्रम के मन्दिर की नींव रखे जाने का समाचार पहले ही हाइलाकान्दि के भक्तों में फैल गया था। इससे वहाँ पर भी समप्रदाय के सभी के बीच इस सन्दर्भ में बहुत ही उत्साह का संचार हुआ। उनके हाइलाकान्दि में शुभपदार्पण के उपलक्ष्य में वहाँ पर भी एक निम्बार्क-

आश्रम-स्थापना की व्यवस्था हुई। ९ अप्रैल शुक्रवार (२६ चैत्र १३६० बँगला) आनन्दमय वातावरण में उन्होंने मन्दिर की नींव की स्थापना की। बाबाजी महाराज आसाम भ्रमण समाप्त करने से पहले पुनः शिलौंग जाकर कुछ दिन रहेंगे, यह एक तरह से निश्चय हो गया था। तदनुसार वह हाइलाकान्दि से पुनः बदरपुर आये, वहाँ से लामडिंग तथा गौहाटी में पुनः १/२ दिन विश्राम कर तथा सभी को दर्शन देकर शिलौंग पहाड़ पर चढ़ेंगे, ऐसी इच्छा थी। लेकिन बदरपुर आने के बाद आकस्मिक परिस्थिति में उनकी सारी परिकल्पना ही उलटा-पुलटा (उल्टा-पुल्टा) हो गयी।

श्रीवृन्दावन के निम्बार्क-आश्रम के सामने रास्ते के दूसरी तरफ जयपुर के महाराज का विशाल मन्दिर है। उस मन्दिर को अस्पताल या सेवाश्रम में परिवर्तित करने के उद्देश्य से रामकृष्णमिशन तथा सरकार के बीच बातचीत चल रही थी। जयपुर के मन्दिर में निम्बार्क-समप्रदाय के पूर्वाचार्यों एवं राधाकृष्ण के विग्रह प्रतिष्ठित हैं। इस कारण वृन्दावनवासी साधु-महन्तों ने मन्दिर को अस्पताल या सेवाश्रम में बदलने के विरुद्ध घोर आपत्ति जताते हुए जयपुर के महाराजा तथा राजस्थान सरकार के पास दरखास्त दी। उस दरखास्त में उन्होने मन्दिर को बाबाजी महाराज को देने के लिए भी प्रार्थना की। उन्होंने दरखास्त इस तरह लिखी कि वह योग्य व्यक्ति हैं, उनकी देख-रेख तथा व्यवस्था में मन्दिर के विग्रहों की सेवा-पूजा इत्यादि भली-भाँति से तो चलेगी ही, बल्कि साथ ही बिना रोक-टोक के साधु सेवा का प्रचलन भी होगा।

इस दरखास्त को पाकर धर्मार्थ-विभाग के मन्त्री बहादुर ने उनके साथ मुलाकात करने के लिए बाबाजी महाराज को खबर देने को कहा। बाबाजी महाराज को बदरपुर आकर यह समाचार मिला। तब

शिलौंग जाना स्थगित रखकर जयपुर जाना ही कर्त्तव्य समझकर वह १६ अप्रैल को पुनः शिलचर जाकर १६ अप्रैल को वहाँ से जानकी दासजी तथा राधाकृष्ण दासजी को संग लेकर हवाई-जहाज से दमदम पहुँच गये। उनके संगी अन्य साधु कन्हैयादासजी, संकर्षण दासजी, सत्यदासजी इत्यादि बाद में रेलगाड़ी से कलकत्ता चले गये।

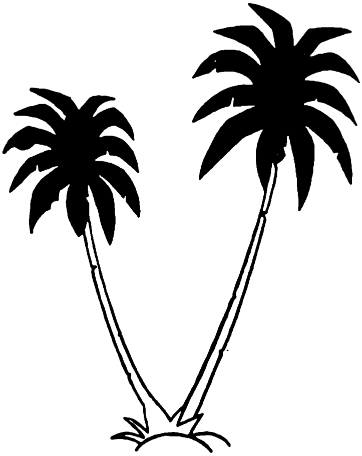

दिव्य साधना का प्रभाव तथा उसका विस्तार

विद्‌योत्तमोन्नतमनाः परमार्थरागो,
वैराग्यभूषितयशो नमनीयवृत्तिः।
सन्मार्गदर्शनपरो भवभीतिहर्त्ता,
श्रीकाठियाप्रभुरभूत् जगदुन्नतांशुः।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

परमाराध्य परम पूज्य श्री श्री १०८ स्वामी रामदास काठिया बाबाजी महाराज कहा करते थे-"हाथी के दो तरह के दाँत रहते हैं, एक बाहर दिखाने के दूसरे भीतर अपने खाने के, भीतर के दाँत दूसरों को मालूम नहीं पड़ते हैं। सन्तों की भी ऐसी दो वृत्ति रहती हैं, एक बाहर दिखाने की, दूसरी अपने भीतर की, उसकी खबर किसी को नहीं मिलती है।" अर्थात् साधु-महापुरुषों की पहली प्रकार की वृत्ति बाहर लोगों की नजर में दिखाने के लिए लौकिक व्यवहार, दूसरी प्रकार की अपने अन्तर-लोक का आत्मस्थ भाव। उस दूसरे प्रकार के भाव (अन्तर-लोक) की खबर कोई नहीं पा सकता है। श्री श्री बाबाजी महाराज के सन्दर्भ में भी ठीक वही एक ही बात लागू होती है। उनकी साधना की बात जो उनके अन्तर लोक का छिपा हुआ तत्व है, वह हमेशा ही दूसरे से अज्ञात होकर रह गया है। हमारे जैसे अज्ञानी मूर्ख के निकट वह किस तरह प्रकाशित होगा? विशेषकर साधना का रहस्य तथा तत्व अन्तर-जगत् की वस्तु है, बाहरी कुछ आनुष्ठानिक क्रिया-

कलाप देखकर उसका रहस्य नहीं समझा जा सकता है और जो लोकातीत महापुरुष हैं, उनके साधन-रहस्य को समझ पाना हमारे जैसे साधारण लोगों के लिए नितान्त पागलपन और घृष्टता के सिवाय और क्या हो सकता है? फिर भी अध्यात्म-जगत् के किसी महापुरुष की जीवनी की आलोचना करने पर उनकी साधना से सम्बन्धित प्रसंग को बिल्कुल छोड़ने से भी नहीं चलता, ऐसा करने से उनकी अंग-हानि तथा असम्पूर्णता रह जाती है। अतः हम भी श्री श्री बाबाजी महाराज के पवित्र जीवन की अध्यात्म-साधना के सन्दर्भ में जितना जान या समझ पाये हैं, उतना यहाँ पर प्रकाशित करने की कोशिश करेंगे। लेकिन गुणातीत पुरुष जैसे गुणों के बन्धन में कभी आबद्ध (बँधते) नहीं हैं, वैसे ही इस लोकोत्तर महापुरुष का अन्तरंग स्वरूप भी हमेशा अनिर्वाच्य (वर्णनातीत) ही रह जायेगा, बुद्धि के द्वारा उसको सम्पूर्ण रूप से समझना या भाषा के द्वारा उसको यथार्थ रूप से प्रकाशित करना कोई भी कार्य सम्भव नहीं है।

लोकोत्तर महापुरुष की जीवनी की आलोचना के दो पक्ष हैं-पहला-बहिरंग, दूसरा-अन्तरंग। अन्तरंग-पक्ष आस्वादन की वस्तु है। वह कृपा-लभ्य है। भाषा के द्वारा उसको व्यक्त करना या दूसरे को आस्वादन कराना सम्भव नहीं है। अतः हम यहाँ उनके जीवन के व्यक्त बहिरंग पक्ष की ही आलोचना तथा विश्लेषण करके उस अन्तरंग पक्ष का थोड़ा सा आभास देने की चेष्टा करेंगे।

बाबाजी महाराज के जीवन के प्रति दृष्टिपात करने पर हमें पहले ही दिखायी पड़ता है कि वे एक त्याग, वैराग्य से पूर्ण, सत्याश्रयी, मुमुक्षु (मोक्ष की कामना रखने वाले) बालक थे। जीवन के प्रथम क्षण उषा काल से ही वह आत्म-दर्शन, भगवद्दर्शन तथा मोक्ष-प्राप्ति के लिए अत्यन्त व्याकुल थे। शास्त्र में मोक्ष-लाभार्थी उत्तम शिष्य का लक्षण

बताया गया है कि उत्तम अधिकारी शिष्य 'शान्त' अर्थात् समगुण युक्त 'दान्त' अर्थात् इन्द्रिय-संयमी, 'उपरत' अर्थात् विषय-भोग से विनिवृत्त 'तितिक्षु' अर्थात् शीत, ग्रीष्म आदि तथा मान-अपमान आदि द्वन्द्व-सहिष्णु, श्रद्धावान अर्थात् गुरु और शास्त्रवाक्य में अटल विश्वास समाहित अर्थात् लक्ष्य वस्तु में एकाग्रचित्त तथा तन्मय विवेकी अर्थात् नित्य और अनित्य वस्तु के सम्बन्ध में विवेक-सम्पन्न, वैराग्यवान अर्थात् सम्पूर्ण भोग्य-विषयों में अनासक्त तथा भोग-कामना शून्य, "मुमुक्षु" अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के लिए आन्तरिक तीव्र आकांक्षा से भरे हुए होंगे।

इसके अलावा उत्तम अधिकारी शिष्य के और विशेष लक्षण हैं कि वे गुरु में सभी प्रकार से आत्म समर्पण करेंगे। तथा बिना विचार से सभी प्रकार से गुरु के आदेश के पालन में तथा गुरु की सेवा में स्वयं को नियुक्त करेंगे। उसकी अपनी स्वतन्त्र इच्छा सभी प्रकार से त्यागकर सभी विषयों में गुरु की इच्छा को ही वरण कर लेंगे। श्री निम्बार्काचार्य ने अपने मंत्र-रहस्य-षोडशी नामक ग्रन्थ में शिष्य के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा है–

"जिनका धन, यौवन, प्राण आदि सभी कुछ गुरु के लिए ही समर्पित हुआ है, जो अपनी आत्मा अर्थात् अपने देहेन्द्रियादि तथा आत्मीय लोगों (रिश्तेदारों) के प्रति अर्थात् अपना कहकर जो कुछ भी है, उस सबके प्रति वैराग्यवान् हुए हैं। ऐसे गुणों से युक्त व्यक्ति ही उत्तम अधिकारी कहे जाते हैं।"

शिष्य पहले ही स्वयं को अपने देहेन्द्रियादि को तथा प्राण को भी एवं अपने धन आदि वस्तु-समूह को भी गुरु में समर्पण करेंगे। तथा सभी प्रकार के सम्बन्धों का विषय करके गुरु की नित्य सेवा करेंगे। कपटता व मोह-त्यागकर अपने देह, इन्द्रिय और मन-प्राण के द्वारा समाहित मन से भृत्य की भाँति, पुत्र की भाँति, मित्र की भाँति

उनकी सेवा करेंगे इत्यादि। श्वेताश्वतर उपनिषद में कहा गया है-"यस्य देवे पराभक्ति यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।" (६२३) अर्थात् जिनकी गुरु में एवं उपास्य देव में समान रुप से पराभक्ति उत्पन्न हुई है, वही उपनिषद्-कथित ब्रह्म-विद्या प्राप्त कर सकते हैं या ब्रह्म को जान सकते हैं।

मुण्डक-उपनिषद् में भी कहा गया है-"तस्मै सविद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्त चित्ताय शमान्विताय, येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यंप्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्।।" (१/२/१३) अर्थात् गुरु के निकट सम्यक् शरणागति, प्रशान्त चित्त, शम-दमादि गुणयुक्त शिष्य को ही ब्रह्मज्ञ गुरु ब्रह्म-विद्या का उपदेश करेंगे, जिस विद्या के द्वारा उसी सत्य स्वरूप अक्षर पुरुष को जाना जाता है। श्रीमद्भगवद् गीता-वाक्य में भी कहा गया है-"तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।" (४/३४) अर्थात् गुरु के निकट यथार्थ रूप से आत्म-समर्पण करके उनकी सेवा करने पर ही वे तत्त्वज्ञ गुरु जिज्ञासु शिष्य को तत्त्व-ज्ञान का उपदेश करते हैं।

उल्लिखित शास्त्र और ऋषि-वाक्य में शिष्य का लक्षण अत्यन्त स्पष्ट रूप से कहा गया है। श्री निम्बार्क ने भी अपने प्रपन्न-कल्पवल्ली ग्रन्थ में कहा है-"वरणीयो गुरुः पूर्ण गोप्तृत्त्वेन मुमुक्षुभिः" अर्थात् मुमुक्षु व्यक्ति सबसे पहले गुरु को ही गोप्तृरूप (श्लोक ५) में अर्थात् रक्षक-रूप से वरण करेंगे। बाबाजी महाराज के जीवन में भी देखने को मिलता है कि उत्तम अधिकारी शिष्य के उल्लिखित समस्त लक्षण ही उनमें परिपूर्ण रूप से मौजूद थे। ऐसे श्रीगुरु में सर्वसमर्पित, गुरुगत प्राण गुर्वैकनिष्ठ शिष्य और साधक अत्यन्त विरले हैं। शमदम, तितिक्षा, श्रद्धा, मुमुक्षुत्व, वैराग्य इत्यादि सारे गुण ही उनमें यथार्थ रूप में विकसित हुए हैं। "प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः। मनःसंयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत् मत्परः।। (गीता ६/१४)

गीता में उक्त ध्यान-योगी के ये सारे लक्षण साधना की प्रवर्तकावस्था में ही उनमें दिखाई पड़े थे। इसी लिए पहली बार देखकर ही उनके श्रीगुरुदेव श्री श्रीसन्तदासजी महाराज ने उनको सर्वश्रेष्ठ उत्तम अधिकारी जानकर उनके भविष्य का उत्तराधिकारी तथा स्थलानुवर्ती के रूप में चिह्नित करके उसी के अनुसार उनको उनके योग शिक्षा-दीक्षा तथा साधना के पथ पर परिचालित किया था।

श्रीश्रीसन्तदासजी महाराज ने श्रीश्रीबाबाजी महाराज को पहलीबार देखकर ही एक बार में संन्यास दीक्षा दे दी तथा सभी प्रकार से उनको आत्मसात कर लिया। यह पहले ही यथास्थान वर्णित हुआ है। दीक्षा के बाद कुछ समय तक गुरु के सान्निध्य में बाबाजी महाराज रहे थे। उस समय नवीन साधक अपने नवानुराग की तीव्र उन्मादना में सदा-सर्वदा ही अपने आहार-विहार, सेवा-कार्य इत्यादि के मध्य भी सर्वावस्था में ही ध्यान-मग्न अवस्था में व्यतीत करते थे। साधना और ध्यान की इस प्रकार की तीव्रता उनके शरीर तथा मस्तिष्क को सहन नहीं हुई। वह पीड़ित हो गये, पागल हो गये, लेकिन लौकिक रूप से बाहरी तौर पर वह पागल होने पर भी उनके उस समय के तीव्र ध्यान के प्रभाव से साधना के अलौकिक प्रभाव तथा शक्ति ने उनके देह-मन को आश्रय किया, लेकिन तब भी वह योग में प्रतिष्ठित नहीं हुए थे, सुपक्व योगी नहीं हुए थे, योग में आरोहण करने के इच्छुक मुनिमात्र थे। अतः बहुत समय उस अलौकिक शक्ति को वह विविध तुच्छ घटनाओं के उपलक्ष्य में या बहुत बार बाल सुलभ कौतूहलवश भी व्यक्त कर देते थे। अपने बड़े भाई (श्रीयुत हीरेन्द्र मोहन चक्रवर्ती) का बात-रोग आरोग्य करना, उनके देश के मकान से लौटने के दिन प्राकृतिक दुर्योगपूर्ण मौसम (आँधी, तूफान, बरसात) को शान्त करना, अण्डाल स्टेशन पर पूर्ण गति से चलती मेल ट्रेन को रोक देना इत्यादि

घटनाओं में उनकी उस समय की अलौकिक शक्ति का प्रकाश हुआ है। यह सभी घटनाएँ पूर्व में ही यथा-स्थान वर्णित हुई हैं। लेकिन यह सब अलौकिक शक्ति प्राप्त करना या उसका प्रकाश करना परमात्म-ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले साधक के लिए अत्यन्त तुच्छ है। बाबाजी महाराज को इस अवस्था में आबद्ध रहने से नहीं चलेगा, उनकी पूर्णता तो प्राप्ति के पथ पर अग्रसर होते जाना है, भविष्य में उनको सुमहान् सद्गुरु की भूमिका ग्रहण कर जगत्-कल्याण साधन में व्रती होना होगा, यह सब समझकर ही उनके श्री गुरुदेव श्री श्री सन्तदासजी महाराज ने उनका पागलपन ठीक कराकर उनको उस अवस्था से उत्तीर्ण किया तथा उनको शास्त्र-अध्ययन में प्रवृत्त कराया।

श्रीभगवान् ने गीता में कहा है—"आरुरुक्षोर्मुनेयोगं कर्मकारण-मुच्यते।" (६/३) योग की अवस्था प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले मननशील पुरुषों के लिए कर्म ही अवलम्बनीय है। निष्काम कर्मानुष्ठान ही योग की अवस्था-प्राप्ति का हेतु या कारण स्वरूप होता है। बाबाजी महाराज तब योगावस्था-लाभेच्छु नवीन साधक थे, उनको निष्काम भक्ति के भीतर होकर ही अग्रसर ही होना होगा। भविष्य में संसाराबद्ध अज्ञानी जनगण को भी शान्ति का पथ उनको दिखाना होगा, अतः उनके श्रीगुरुदेव ने उनको शास्त्र अध्ययन में प्रवृत्त कराया, यह शास्त्र अध्ययन भी निष्काम भाव से श्रीगुरु का आदेश-पालन-बुद्धि से करने के लिए उनको उपदेश दिया।

बाबाजी महाराज तब श्रीगुरुदेव का आदेश पालन बुद्धि से ही शास्त्र-अध्ययन रूपी कार्य निष्काम-भाव से ही करने लगे, परिणाम स्वरूप उस कार्य ने भी उन्हें आध्यात्मिक साधना के पथ पर उनको विशेष रूप से अग्रसर किया था। यह प्रसंग उनके श्री गुरुदेव ने उनको बारबार कहा था कि २० वर्ष तक एकान्त में वासकर एकनिष्ठ रूप

से साधन-भजन के द्वारा जो फल प्राप्त होता है, केवल तीन वर्ष बिना विचारे आत्म-समर्पण के साथ श्रीगुरुदेव का आदेश पालन करने पर उसकी अपेक्षा बहुत अधिक फल प्राप्त होता है। उनके श्रीगुरुदेव की यह बात किस प्रकार एकएक अक्षर सत्य है, यह बाद के समय में बाबाजी महाराज ने स्वयं अनुभव किया था तथा हम लोगों को भी बारंबार उपदेश दिया है।

वास्तव में मनमुखी होकर अहंकार को आश्रय कर साधन-भजन करने पर उससे असली भगवत्-भजन नहीं होता, उससे अहमत्व का भजन ही होता है, उससे अहंकार तथा मन को प्रश्रय (मौका) देना होता है।

अपने अहंभाव और मन-बुद्धि को श्रीगुरु तथा भगवच्चरणों में समर्पण कर उसकी इच्छा को मानकर चलना ही वास्तविक भजन का मार्ग है, शास्त्र और महापुरुषों ने ऐसा ही उपदेश दिया है। उत्तर-काल में बाबाजी महाराज ने भी हम लोगों से बार-बार कहा है-"मन चाहना नहीं करना" **"मनमुखी गँवारा, गुरुमुखी भगवत्प्यारा"** इत्यादि। अर्थात् अपनामन जो चाहे वह नहीं करना (मन-मुखी होकर अपने मनोभावों के अनुसार चलकर मन को ढील नहीं देना) जो मनमुखी होकर चलता है, वह गँवार है और जो गुरु मुखी होकर गुरु की इच्छा के अनुसार चलता है वही भगवान् का प्रिय पात्र होता है इत्यादि।

जो भी हो, बाबाजी महाराज सभी प्रकार से गुरुमुखी होकर गुरु में आत्म-समर्पण कर गुरु की इच्छा से ही मान लिया तथा गुरु के आदेश पर खुलना जिले के अन्तर्गत दौलतपुर की संस्कृत पाठशाला में जाकर न्यायशास्त्र का अध्ययन करने लगे। ये सभी बातें पहले के अध्यायों में भी वर्णित हुई हैं। दौलतपुर में वह लम्बे ८ वर्षों तक रहे थे।

इस दीर्घ ८ वर्ष की अवधि में चतुष्पाठी (टोल) के बाहर वह किस प्रकार समय व्यतीत करते थे, उनके वास्तविक जीवन में कौन-कौन

सी विशेष घटनायें घटी थीं, उनके आध्यात्मिक जीवन का उत्कर्ष कहाँ तक परिपुष्ट हुआ था, इत्यादि विषयों का कोई धारावाहिक इतिहास नहीं है। वह कोई दैनिक-नोट नहीं लिखते थे। अतः इस समय के उनके साधन से सम्बन्धित विच्छिन्न (इधर-उधर छितरी हुई) कहानी तथा घटनाऐं जहाँ तक संग्रह की जा सकी हैं, वही नीचे वर्णित है :-

दौलतपुर जाने से पहले उनके गुरुदेव ने नित्यपूजा के लिए उनको एक शालग्राम-शिला देने का वचन दिया था। उन्होंने इसे पाने के लिए अत्यधिक व्यस्त होकर दौलतपुर जाने के बाद गुरुदेव को पुनः पत्र लिखा। उक्त पत्र में शालग्राम-लाने के लिए वृन्दावन जाने के लिए अनुमति माँगी थी, स्मार्त-मतानुसार वैदिक-सन्ध्या-पूजा न करने के कारण सहपाठियों तथा पण्डितों के पास वह निन्दनीय हो रहे हैं, यह बात भी उनको बतायी। उसके जवाब में श्रीसन्तदासजी महाराज ने उनको लिखा-

"शालग्राम लेने के लिए तुम्हें यहाँ आने की आवश्यकता नहीं है। कुछ दिन आगे-पीछे मिलने पर उससे कोई हानि की आशंका नहीं है। स्थिरता रखनी चाहिए। पण्डित लोग सन्ध्या-वन्दन आदि नहीं करने के दौरान तुमसे घृणा ही करेंगे। उससे तुम्हारा क्या आता-जाता है? तुम दूसरों की बातों पर इतना ध्यान क्यो देते हो? तुम जिस विष्णु-मन्त्र का साधन करते हो, वह क्या सर्वव्यापी नहीं है? समस्त रूप ही क्या उसके रूप नहीं हैं? जो आदित्यस्थ देवता सचराचर गायत्री-मन्त्र के द्वारा उपसित होते हैं, वह क्या विष्णु के अंगीभूत नहीं हैं? उनके एक वामन-अवतार में ही जब त्रिविक्रम रूप का थोड़ा सा आभास प्रदान किया, तब उनके एक पैर (पद) में ही तो त्रिलोक व्याप्त हो गया। जिस त्रिलोक के मध्य क्षुद्र एकांश आदित्य मण्डल है, उस व्यापक विष्णु की उपासना करने पर क्या उस आदित्य की उपासना वर्जित रहती है? तुम क्या नहीं जानते कि वैदिक सन्ध्या-वन्दन की

व्यवस्था शास्त्रों में गृहस्था-श्रमियों के लिए की गयी है? यह वैराग्य-आश्रम के लिए उपेदश नहीं है तथा इस प्रकार के बहुत सा शास्त्र-प्रमाण तुमने देखा होगा। अगर नहीं देखा है तो थोड़ी सी कोशिश करने पर देख सकोगे। जो सर्वाश्रय विष्णु की आराधना करते हैं, उनके लिए दूसरी विशेष आराधना की आवश्यकता नहीं होती है। विष्णु की आराधना में ही सारी आराधनायें सिद्ध होती हैं। (पत्रावली, प्रथम खण्ड ६६ नं. पत्र)

इसके कुछ दिन बाद उनके गुरुदेव के पास से उनको एक शालग्राम-शिला प्राप्त हुई। शालग्राम-शिला के ऊपर भगवत्-बुद्धि आरोपित करने के सम्बन्ध में उनके अनुसन्धान के लिए उत्सुक मन में प्रश्न जागा था, इसी लिए अपने गुरुदेव के पास से निम्न प्रकार का पत्र प्राप्तकर उनका सारा सन्देह मिट गया। श्रीसन्तदासजी महाराज ने लिखा-

"शालग्राम जो भेजा है, उसको वासुदेव समझकर उसी रूप में पूजा करना। जिस प्रकार श्रीमान् सुधीर के घर में ठाकुर जी की पूजा करते थे, उनकी भी ठीक उसी प्रकार पूजा करना, वह विश्व के आधार तथा विश्वरूप हैं, वैकुण्ठाधिपति चतुर्भुज विष्णु भी वही हैं, अवतीर्ण श्रीकृष्ण भी वही हैं। वही सर्वव्यापी, सर्वरूपी हैं। लेकिन फिर भी अरूपी हैं, इस प्रकार से उनकी चिन्ता करना।" अत्यन्त श्रद्धा तथा परमनिष्ठा के साथ भक्ति-युक्त होकर वह शालग्राम जी की पूजा करने लगे। पूजा करते-करते क्रमशः तन्मयता आना प्रारम्भ हुई। शालग्रामजी उनके प्राणों से भी प्रिय वस्तु हो गयी। वह मन-प्राण से उनकी सेवा करते थे। यही साक्षात् गोलोकाधिपति श्रीकृष्ण हैं, यह उनकी दृढ़रूप से धारणा तथा अनुभव की वस्तु हो गयी। एक दिव्य आनन्द की अनुभूति होने लगी। लेकिन नवीन साधक होने से वे इसी से तृप्त नहीं हुए। वह भगवान् के साक्षात् दर्शन प्राप्त करने के लिए बेचैन हो गये। अपनी अक्षमता समझ में आने पर भगवत्-कृपा प्राप्ति के लिए अस्थिर हो गये। उनका कुछ भी नहीं हुआ। भगवत्-कृपा प्राप्त नहीं हुई,

मानव-जन्म व्यर्थ चला गया इत्यादि के अभिप्राय से आवेग पूर्ण एक पत्र लिखकर गुरुदेव के समीप भेजा। पत्रोत्तर में उनके गुरुदेव ने तिरस्कार करते हुए उनको लिखा–

"तुम्हारे प्रति तो भगवत्-कृपा निरन्तर बरस रही है, लेकिन तुम उसको समझ नहीं रहे हो। चिन्तित मत हो, समयानुसार सभी कुछ प्रकाशित होगा। श्रीभगवान् सनत्कुमार ने कहा है-**"न त्वरमानेन लभ्यः"** अधिक शीघ्रता कर जो प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, वे प्राप्त कर ही नहीं पाते हैं। धैर्य धारण करना आवश्यक है। कितने ऋषि, मुनि कितने लम्बे समय तक कितनी कठोर साधना करके भी भगवान् का साक्षात्कार नहीं कर पाये हैं, और तुमने कितने ही दिन साधना की है और क्या ही साधना की है कि दर्शन प्राप्त न कर सकने के कारण इतना चंचल हो पड़े हो?

तुमने आत्म समर्पण किया है, प्रभु ने तुमको ग्रहण किया है, तुम्हारी योग्यता क्रमशः साधित होने पर वह जब सही समय देखेंगे तभी दर्शन आदि आवश्यकतानुसार मिलेगा। वह क्या तुम्हारी तुलना में कम विवेचक हैं? तुम्हारा वास्तविक हित किसमें होगा वह क्या तुम्हारी तुलना में अधिक नहीं समझते हैं? उन्होंने जब तुमको ग्रहण किया है, तब यह दृढ़ रूप से विश्वास करना कि तुम्हारा और कोई विनाश नहीं है। तुम देहान्त के बाद अवश्य ही मोक्ष-मार्ग पर गमन करके परमानन्द प्राप्त करोगे। १०-१२ वर्ष का समय बहुत थोड़ा है। उनका जैसा अभिप्राय है इस समय वैसा ही करके चलायेंगे, इसमें असन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए। कहावत है–**"असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः।"** (पत्रावली, प्रथम खण्ड १२५ नं. पत्र)

प्रिय शिष्य को शासन करते हुए शायद उनके व्याकुल कोमल प्राणों को ज्यादा ही चोट पहुँचायी है, सोचकर वृद्ध गुरु का वात्सल्य स्नेह जाग उठा। तीन दिन बाद ही उन्होंने पुनः उसको लिखा–

"३/४ दिन हुए तुमको एक पत्र लिखा है। तुम यह निश्चित रूप से समझना कि तुम्हारे प्रति भगवत्-कृपा अत्यन्त अधिक है, तुम स्वयं नहीं समझ सकते हो। समयानुसार सब कुछ समझ सकोगे, व्यस्त मत होओ। इस समय रात के अन्त में नींद त्यागकर स्नान आदि करके कुछ समय तक यथा-सम्भव इष्ट मन्त्र का उपदेशानुसार जप करना। अपनी जितनी सामर्थ्य है, उससे ज्यादा तो कोई भी नहीं कर सकता है। अतः मन मुताबिक जप करना नहीं हुआ, समझकर असन्तुष्ट मत होना, धीरे-धीरे कालक्रम से चित्त शुद्ध होगा। वह जितनी जल्दी होगा तुम चाहते हो उतनी जल्दी नहीं होगा समझना। जप समाप्त कर श्री श्रीठाकुरजी की सेवापूजा प्रीति के साथ शक्ति के अनुसार करने की चेष्टा करना, बाद आरती इत्यादि करके उसमें समस्त कार्य अर्पणकर अपनी पढ़ाई में मन लगाना। अब पढ़ाई करना तुम्हारा कर्तव्य है। उसमें मन एकाग्र होने पर बाद में भजन में भी मन एकाग्र होगा।" हे भगवन् ! तुम्हारे नाम-जप, तुम्हारी सेवा-पूजा करने में मैं बिल्कुल अयोग्य हूँ, फिर भी तुमने मुझे इस कार्य में मुझको नियुक्त किया है, इसमे मेरे समस्त अपराध तथा गलतियों को क्षमाकर तुम जप और पूजा ग्रहण करो, इस प्रकार से प्रार्थना कर उनकी प्रसन्नता की प्रार्थना करना। उसके बाद अध्ययन में मन लगाना, और कुछ भी नहीं हुआ, कुछ भी नहीं हुआ। इस प्रकार की व्यर्थ चिन्ता छोड़कर इस तरह के कार्य में जिसने तुमको नियुक्त किया है, वह बहुत भाग्य का फल है, ऐसा सोचकर सन्तुष्ट चित्त से समय बिताने का अभ्यास करना।" (पत्रावली प्रथम खण्ड, १२४ नं. पत्र में)

उनके गुरुदेव के द्वारा लिखे गये उपर्युक्त दोनों पत्रों को पढ़ने पर उनके तत्कालीन मानसिक अवस्था के बारे में थोड़ी बहुत धारणा की जा सकती है। बाबाजी महाराज इस समय भगवत्-दर्शन के लिए

तीव्र आकांक्षा हृदय में पोषणकर उसके निमित्त जप-ध्यान-पूजा इत्यादि अत्यन्त निष्ठा के साथ करते थे। इस समय वासुदेव शालग्रामजी उनके लिए प्रिय से प्रियतम होने लगे। उनका मन-प्राण सभी कुछ उनमें ही अर्पित और निविष्ट हो गया, उनकी सेवा-पूजा लेकर रह सकने पर उनका मन कुछ भी नहीं चाहता, भक्त की इस प्रकार की मानसिक अवस्था देखकर श्रीभगवान् ने उनके मन को और अधिक अन्तर्मुखी करने के अभिप्राय से एक चतुराई की। बाबाजी महाराज एक बार वृन्दावन से दौलतपुर आ रहे थे। वासुदेव शालग्राम जी एक छोटे डिब्बे के अन्दर उनके कण्ठ से लगे हुए थे। रास्ते में काशी में गाड़ी से उतरने के बाद उनको महसूस हुआ कि कहीं कुछ खाली-खाली लग रहा है। कण्ठ में हाथ लगाकर देखा शालग्राम जी गायब हो गये। डिब्बा ही नहीं है। अपने पहने हुए वस्त्र इत्यादि हिलाकर-झाड़कर देखा। वह कहीं छिपे हुए तो नहीं हैं, लेकिन कहीं भी खोआ हुआ धन नहीं मिला। सम्भवतः उनकी नींद की हालत में किसी चोर ने रुपया पैसा है, समझकर उस डिब्बे को चुरा लिया होगा। जो भी हो, उनकी उस समय की मानसिक अवस्था अवर्णनीय है। वासुदेव शालग्राम जी के शोक में वह विस्वल हो गये। दौलतपुर पहुँचकर अपने गुरुदेव को अपने सर्वनाश का समाचार देते हुए शालग्राम जी के लिए बहुत विलाप करते हुए पत्र दिया। उनके गुरुदेव ने उसके जबाब में वासुदेव उनके हृदय में साक्षात् वर्तमान हैं, यह दृढ़रूप से धारणाकर हृदयस्थ वासुदेव की मानसिक पूजा करने का आदेश दिया। उन्होंने भी कुछ दिन गुरु के उपदिष्ट पथ पर चलकर देखा, किन्तु उनका वासुदेव शालग्राम जी खोने के शोक के कारण व्याकुल मनस्थिर नहीं हुआ।

तब पुनः अपनी मानसिक अवस्था का श्रीगुरु के चरणों में निवेदन किया। कल्याण-पथगामी शिष्य की मानसिक अवस्था देखकर

ऋषिवर ने मन-ही-मन आनन्दित होकर उनको उपदेश दिया-"विष्णु हृदयस्थ हैं, वह निश्चय ही सत्य हैं तथा उनमें सम्पूर्ण विश्व स्थित है, यह भी निश्चय ही सत्य है। अर्जुन को जो भगवान् ने समस्त विश्व को निज देह में प्रदर्शन कराया था, वह सम्पूर्ण सत्य जानना। चतुर्भुज नारायण श्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हुए थे, यही शास्त्र का उपदेश है। अतः विश्वास पूर्वक उनका ध्यान तथा प्रीति पूर्वक उनकी सेवा करो, उससे ही सारे कल्याण प्राप्त करोगे। वह प्रभु हैं, समस्त कर्मों का फल उन्हीं के हाथों में है। सेवा करना ही तुम्हारा इस समय का कार्य है। फल जैसे उनकी इच्छा हो, वह देंगे। वही सिर झुकाकर धारण करना होगा।"

गुरुदेव की यह अभयवाणी पाकर उनका शोकाकुल मन शान्त हुआ। इस सन्दर्भ में बाबाजी महाराज ने हम लोगों से कहा है-"इस पत्र को पाने के दिन से मैंने साक्षात् परमात्मा परब्रह्म, वैकुण्ठाधिपति विष्णु और अवतीर्ण श्रीकृष्ण को ही पाया है, सोचकर वैकुण्ठ में ही वासकर रहा हूँ, ऐसा मन में लगने लगा। बाहरी तौर पर मैं न्याय-शास्त्र का अध्ययन अवश्य करता था, लेकिन वह श्रीगुरुदेव का आदेश पालन रूपी कर्तव्य समझकर ही किये जा रहा था, लेकिन अन्तर में वैसा ही भावना मानो फल्गुनदी की धारा की भाँति बिना टूटे लगातार चलने लगी।" (श्री श्रीधनञ्जय दास उपदेशामृत ८१ नं. प्रश्न के उत्तर में १२० पृष्ठ)

इसके बाद आया साधना का तृतीय स्तर। कुछ दिन बाद उनके श्रीगुरुदेव ने उनको एक नये साधन-सूत्र का उपदेश देकर सर्वव्यापी ब्रह्म का ध्यान करने का निर्देश दिया। उन्होंने उनको लिखा-"अनन्त जीव समन्वित यह ब्रह्माण्ड सारा ही ब्रह्म है। वह अनन्त शक्तिमान् है, उसी अनन्त शक्ति के द्वारा उन्होंने इस अनन्त जीवमय

विश्वरूप धारण किया है। तुम या दूसरा कोई उनसे अलग नहीं है। वही विविध रूपों में क्रीड़ा कर रहे हैं। यही सार-सत्य जानना। श्रुति ने स्वयं तथा ब्रह्मवादी ऋषि सभी ने एकमत से यह व्यक्त किया है। इस सम्बन्ध में तुम कुछ भी सन्देह मत करो। यह अनुभव करने की हमेशा कोशिश करना। इस प्रयत्न में सारे ऋषिकुल तुम्हारे सहायक होंगे।" उनके श्रीगुरुदेव का यह उपदेश पाकर बाबाजी महाराज सर्वव्यापी ब्रह्म के ध्यान में डूब गये। कुछ दिन बाद इस व्यापक ब्रह्म का ध्यान करते करते उनके हृदय में एक प्रकार की शुष्कता आयी, इस प्रकार का ध्यान उनके निकट नीरस लगने लगा। तब उन्होंने अपने गुरुदेव को लिखकर बताया कि जब वह हृदय में वासुदेव का ध्यान करते थे, तब उनके मन में एक न समाप्त होने वाले आनन्द का फब्बारा चलता था, लेकिन इस व्यापक ब्रह्म का ध्यान करने जाकर वैसा अब नहीं होता है, बल्कि मन में एक प्रकार की शुष्कता आ गयी है। उनके श्रीगुरुदेव ने उसके जवाब में बताया-"बाबा (बेटा) एक घड़ा जल भरने में कोई कष्ट नहीं होता है, लेकिन जब एक-एक घड़ा करके पोखर (तालाब) भरने में सचमुच बहादुरी की आवश्यकता होती है तथा इस साधना में ही उनको सिद्ध होना होगा।"

श्रीगुरुदेव के इस वाक्य से बाबाजी महाराज उत्साह के साथ और गम्भीर रूप से सर्वव्यापक ब्रह्म की उपासना में डूब गये। धीरे-धीरे श्रीगुरुदेव की कृपा से उनके चित्त में एक गहरी प्रशान्ति तथा आनन्द आने लगा। उनके हृदय की शुष्कता मिट गयी।

इस प्रसंग में एक घटना का यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। बाबाजी महाराज जब इसी तरह प्रायः सदा सर्वव्यापी व्यापक ब्रह्म के ध्यान में डूबे रहते थे, उस समय एक दिन ध्यान मग्न अवस्था में असावधानी वश गिरकर उनका पैर टूट गया। इस समय (सन् १६३२

ई. में) उनके श्रीगुरुदेव श्री सन्तदास महाराज वंग देश में भ्रमण के लिए आये थे। उस वक्त वह गौहाटी आकर कामाख्या तीर्थ में गये तथा वहाँ से श्रीहट्ट, हबीगंज इत्यादि स्थानों का भ्रमण कर शिवपुर आश्रम में लौटे। उनके उस भ्रमण के समय उनकी अनुमति पाकर बाबाजी महाराज भी भग्नपद (टूटा हुआ पैर) लेकर ही अपने गुरुदेव के साथ गौहाटी आये, गौहाटी आकर पैर का दर्द अत्यन्त बढ़ जाने के कारण बाबाजी महाराज चलने-फिरने में असमर्थ हो गये, ऐसी हालत में उनके साधु गुरु-भ्राता श्री परमानन्द दासजी महाराज मातृ-स्नेह देकर उनकी सेवा करते थे। उनको पीठ पर या गोद में उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। उनको गोद में उठाकर शौच के लिए ले जाना, स्नान कराना इत्यादि सारे कार्य वह अत्यन्त ममता से करते थे। उनके गुरुदेव जिस दिन कामाख्या दर्शन करने जायेंगे, उसदिन बाबाजी महाराज की भी उनके साथ वहाँ जाने की तीव्र आकांक्षा हुई। साधु गुरु-भ्राता सभी लोग जायेंगे, केवल मात्र वही घर में टूटा हुआ पैर लेकर बिस्तर पर पड़े रहेंगे। वे लोग गुरु के साथ तथा भक्तों के साथ कितना आनन्द करेंगे, केवल वही टूटे हुए पैर के लिए इस आनन्द-प्राप्ति से वञ्चित होकर रहेंगे। यह सब सोचते-सोचते वह अत्यन्त शोक-विह्वल हो गये। मन के आवेग में गुरुदेव के निकट मन की तीव्र वासना व्यक्त करते हुए संगी बनने की व्याकुल प्रार्थना की। गुरुदेव बोले-"अपना टूटा पैर लेकर ऊँचे पहाड़ पर कैसे चढ़ोगे? इतने ऊँचे पहाड़ पर कोई तुम्हें गोद में उठाकर या पीठ पर लेकर भी नहीं चढ़ सकता।" बाबाजी महाराज ने हाथ जोड़कर दीन भाव से जवाब दिया-"बाबा आपकी कृपा होने पर टूटा हुआ पैर लेकर ही चढ़ सकूँगा।" शिष्य की दीनता देखकर गुरुदेव को दया आयी। थोड़ी देर चुप रहकर बोले-"अच्छा तो फिर चलो।" उनके आनन्द की सीमा नहीं रही। जल्दी तैयार होकर

उनके साथ गाड़ी में चढ़कर कामाख्या पहाड़ के तले में पहुँचे। गाड़ी से उतरकर ऐसा मालूम पड़ा कि जैसे उनके पैर में कोई तकलीफ ही नहीं है। स्वाभाविक रूप से ही पैर चला पा रहे थे। वह उत्साह के साथ आगे-आगे चलकर पहाड़ पर चढ़न लगे। कामाख्या पहाड़ पर जो लोग चढ़े हैं, वे सभी जानते हैं कि यह परिश्रम का मामला है। बाबाजी महाराज अत्यन्त सहज अवस्था में पहाड़ की चोटी पर चढ़कर सारे दर्शनादि का कार्य समाप्त कर बिना किसी परेशानी के पुनः नीचे उतर गये। घर तक अनायास पहुँच गये। लेकिन घर पहुँचने के बाद ही पैर की हालत पहले जैसी हो गयी। तब फिर चलने फिरने की शक्ति से रहित हो गये। श्रीभगवान् की कृपा होने पर पंगु (लंगड़ा) व्यक्ति भी पहाड़ लाँघ सकता है, यह सभी को दिखने तथा समझाने के लिए ही उनके गुरुदेव ने यह लीला की। धन्य हैं सन्तदासजी ! धन्य है तुम्हारी अपार महिमा ! और धन्य है श्री श्रीबाबाजी महाराज का अपार गुरु- विश्वास व भक्ति। इस घटना के बाद उनका पैर धीरे-धीरे ठीक हो गया।

वास्तविक सत्य भी यही है कि श्रीगुरु तथा इष्ट देव में पराभक्ति तथा पूर्ण आत्म समर्पण होने पर ही साधक के निकट परमात्म-तत्त्व प्रकाशित होता है। इस परमात्म-स्वरूप के प्रकाश का कारण एकमात्र उनकी कृपा ही है, साधक के साधन इत्यादि तथा आत्म-समर्पण को निमित्त या उपलक्ष्य मात्र करके यह कृपा वर्षित होती है। श्रुति में भी यह बात कही गयी है जैसे–

"यस्यदेवे पराभक्ति यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिंता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।" हवेः ६/३
"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।।"
कठ १/२/२३

जिनकी इष्टदेव में पराभक्ति उत्पन्न हुई है, उस महात्मा के निकट ही उपनिषद् कथित ब्रह्मविद्या प्रकाशित होती है।

इस आत्मा को प्रवचन के द्वारा, मेधा के द्वारा अथवा बहुपाण्डित्य के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। जिनको यह स्वयं वरण करते हैं, उनके द्वारा ही प्राप्त तथा परिज्ञात होते हैं, उनके निकट ही यह आत्मा अपना स्वरूप व्यक्त करती है।

बाबाजी महाराज के जीवन में भी देखने को मिलता है कि दीक्षा के समय से ही उन्होंने श्रीगुरु में सभी प्रकार से आत्म-समर्पण किया था तथा बिना विचार के गुरु का आदेश पालन करने को ही जीवन का एक मात्र लक्ष्य तथा व्रत बनाया था। उनके श्रीगुरुदेव ने बार-बार उपदेश किया है-"यथार्थ कल्याणार्थी पुरुष का कर्तव्य यह है कि सद्‌गुरु के शरणापन्न होकर स्वयं को सम्पूर्ण रूप से उनके अधीन कर देवे तथा स्वयं कुछ भी विचार न करते हुए सद्‌गुरु के आदेश मात्र का प्रतिपालन करने को जीवन का एक मात्र कर्तव्य समझकर अवधारण करे। ऐसा जो कर सकते हैं, वह तभी कर्तव्य समझकर अवधारण करें। ऐसा जो कर सकते हैं, वह तभी कर्म बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। सभी प्रकार के कर्मों से अलिप्त हो जाते हैं तथा देहान्त होने पर मोक्ष को प्राप्त होते हैं। अपने में कर्तापन की बुद्धि जिनमें है, जो अपने-आप साधन करके परगामी हो जायेंगे समझते हैं तथा गुरु से केवल उपदेश मात्र ग्रहण कर स्वयं ही साधन-भजन करके कृतकृत्य हो जायेंगे समझते हैं, वे अदूरदर्शी अवास्तविक शिष्य हैं। उनका कृतकृत्यता प्राप्त करना बहुत कठिन है।" (पत्रावली द्वितीय खण्ड २६५ पृष्ठ)

श्रीश्रीबाबाजी महाराज ने भी इस उपदेश के प्रकाश में ही इसी प्रकार किया था। फलस्वरूप श्रीगुरुकृपा ने पूर्ण रूप से उनके

ऊपर वर्षित होकर उनको पूर्णता के पथपर उत्तरोत्तर चलाया था। श्रीश्रीबाबाजी की आध्यात्मिक साधना की सफलता प्राप्ति का यही रहस्य है। उनकी गुरु-भक्ति, गुरु में आत्म-समर्पण तथा गुरु के आदेश पालन में निष्ठा की आन्तरिक तथा असाधारण भावना उनमें विद्यमान थी, कोई कपटता या चतुराई नहीं थी। उसी के पुरस्कार स्वरूप उन्होंने प्राप्त किया था श्रीगुरु का अमोध आशीर्वाद तथा वरदान। उनको उनके श्रीगुरुदेव श्री श्रीसन्तदास महाराज ने जो आशीर्वाद तथा वर प्रदान किया था, उनमें से कुछ यहाँ उद्धृत हुए हैं-

१. "तुम्हारा खेया पार लग गया" (बँगला १३३८ सन् की गुरुपूर्णिमा के दिन गुरुपूजा के बाद उनके प्रति उनके गुरुदेव का आशीर्वाद)।

२. "तुम व्यस्त मत होओ, तुम्हारा अभीष्ट पूर्ण होगा" (१६ पौष, ५ जनवरी १९२६ ई. तारीख को लिखित उनके श्रीगुरुदेव का पत्र)।

३. "तुम से तो कहा ही है कि तुम्हें कोई भय नहीं हैं, अभीष्ट सिद्ध होगा" (५ पौष, २० मई १९२७ ई. को लिखा हुआ पत्र)।

४. "तुम्हारे प्रति तो भगवत्-कृपा लगातार बरस रही है.. ......चिन्तित मत होओ, समयानुसार सभी कुछ व्यक्त होगा,....... तुमने आत्म-समर्पण किया है, प्रभु ने भी तुमको ग्रहण किया है, तुम्हारी योग्यता क्रमशः साधित होने पर वह जब उपयुक्त समय देखेंगे, तभी दर्शनादि आवश्कतानुसार मिलेगा। तुम्हारे देहान्त के बाद तुम अवश्य ही मोक्ष-मार्ग पर गमन कर परमानन्द प्राप्त करोगे" (२१ अगस्त १९२५ ई. तारीख को लिखित पत्र)।

५. "भगवान् तुम्हारे प्रति सदय हुए हैं जानना, वस्तुतः किसी विषय में वह अभाव नहीं होने देंगे" (२६ जुलाई १९३४ ई. लिखा हुआ पत्र)।

६. "श्रीभगवत्-कृपा से तुम्हारा अन्तःकरण सम्पूर्ण निर्मल हो जाए यही इच्छा है। श्री श्रीठाकुरजी वैसा करेंगे, ऐसा भरोसा करता हूँ" (१६ श्रावण, ३ अगस्त १९३४ ई. को लिखा हुआ पत्र)।

उनके श्रीगुरुदेव की इन आशीर्वाणियों से ही समझा जा सकता है कि बाबाजी महाराज का अन्तः किस प्रकार निर्मल था। तथा उनको इसी जन्म में सर्वाधिक सिद्ध होकर परमात्म स्वरूप का प्रत्यक्ष ज्ञान तथा श्रीभगवद्दर्शन प्राप्त होगा। वह भी उनके श्रीगुरुदेव के इन आशीर्वाद वाक्यों से ही समझा जा सकता है। क्योंकि गुरुदेव-कृपा से ही श्रीभगवद्दर्शन प्राप्त होता है तथा परमात्म स्वरूप भी प्रत्यक्ष होता है, यह शास्त्र-समर्थित तथा ऋषि-उपदिष्ट परम सत्य है। बाबाजी महाराज के जीवन में भी गुरु-कृपा से यह हुआ था, वह हम श्रीश्रीबाबा की साधना के समय की डायरी से कुछ अनुमान कर सकते हैं। बाद के समय में बाबाजी महाराज ने शिलौंग में, भुवनेश्वर में, विन्ध्याचल में, रामपुर (देहरादून) में कनखल में तथा श्रीवृन्दावन में काठिया बाबा के स्थान में रहकर जब कठोर नियमों का पालन करते हुए साधना की थी, तब उनके उस समय के मन में परिरमात्म स्वरूप के दर्शन के लिए तीव्र व्याकुलता अभिलाषा लिखी हुई उस समय की साधना की डायरी से यथार्थ रूप से व्यक्त हुई है। तीव्र व्याकुलता तथा कातरता के साथ श्रीभगवान् की कृपा से प्रतीक्षा करके भी उन्हीं में सभी प्रकार से आत्म समर्पण कर वह सामर्थ्यानुसार साधना कर रहे हैं; लेकिन साधना का कोई अभिमान उनको नहीं है, क्योंकि उन्होंने अनुभव किया है कि किसी प्रकार की साधना के द्वारा परमात्म-स्वरूप प्रकाशित नहीं होता है। वह स्वयं प्रकाश है, सभी प्रकार से आत्मसमर्पित साधक के समक्ष ही वह प्रकाशित होते हैं। इसी लिए ही हम देखते हैं कि जब विविध घटनाओं के अन्दर उनकी साधना का कठोर नियम भंग हुआ है, तब

भी उससे उनके मन में कोई चंचलता या विकार नहीं आया है। वह मानों सिद्धि तथा असिद्धि में निर्विकार समता का भाव रखे हुए हैं–**"सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते"** (गीता २/४८)–देखा जाता है कि गीता के इस साम्य-भाव में वह प्रतिष्ठित हो गये हैं। एक तरफ परमात्म-स्वरूप-दर्शन के लिए उनकी तीव्र व्याकुलता तथा अभिलाषा तथा उसी के साथ निरन्तर प्रार्थना तथा कठोर नियमों का पालन करते हुए साधना, दूसरी तरफ सभी प्रकार के साधनाभिमान का परित्याग कर श्रीभगवान् के ऊपर सभी प्रकार से आत्म समर्पण, उनकी कृपा की प्रतीक्षा तथा सिद्धि एवं असिद्धि में मन का समभाव रहना-युगपत ये दोनों ही भाव उनकी लिखी हुई उस समय की डायरी में प्रकाशित हुए हैं। वस्तुतः अध्यात्म-साधना का यही रहस्य है। पुरुषकार तथा प्रयत्न करते हुए साधना तथा उसके साथ निरभिमान होकर सभी प्रकार से श्रीभगवान् तथा श्रीगुरु में आत्म-समर्पण तथा भगवद्-कृपा की प्रतीक्षा करना। बाबाजी महाराज ने यही किया था।

शिलौंग, विन्ध्याचल, रामपुर, कनखल, श्रीवृन्दावन इत्यादि स्थानों पर रहकर बाबाजी महाराज ने कुछ समय तक कठोर नियमों का पालन करते हुए साधना की थी। उस समय वह बिल्कुल ही मौन थे। तब कुछ समय से दिन में १२ बजे नमक भी छोड़कर केवल थोड़ा सा महाप्रसाद तथा आधा सेर दूध ग्रहण करते थे तथा रात को केवल आधा सेर दूध ग्रहण करते थे। सुबह ८ बजे बालभोग का बहुत थोड़ा फल प्रसाद ग्रहण करते थे। लेकिन भुवनेश्वर में रामपुर (देहरादून) में तथा कनखल में रहते समय दोपहर को महाप्रसाद भी नहीं ग्रहण करते थे, केवल थोड़ा सा फल ग्रहण करते थे। श्रीवृन्दावन, काठियाबाबा के स्थान में रहते वक्त भी कुछ समय तक के लिए उन्होने अन्न का आहार सम्पूर्ण रूप से छोड़ दिया था। इस प्रकार अन्नाहार सम्पूर्ण रूप

से त्यागकर दिन के समय केवल थोड़ी सी मात्रा में फल तथा रात्रि के समय थोड़ा सा दूध ग्रहण कर अत्यन्त कठोर नियमों का पालन करते हुए मौन रहकर उन्होंने कुल ६ महीने ३ दिन विभिन्न स्थानों पर साधना की थी और सुबह सामान्य फल, दोपहर को नमक रहित केवल सामान्य महाप्रसाद तथा रात्रि को थोड़ा सा दूध ग्रहणकर उन्होंने विभिन्न स्थानों पर कुल २ वर्ष ६ महीने २२ दिन मौनी होकर कठोर नियमों का पालन करते हुए कुल ३ वर्ष १ महीना २५ दिन साधना की थी। वह सम्पूर्ण मौन थे कुल ६ वर्ष १६ दिन। यह सभी कुछ उनकी साधना के समय डायरी के अनुसार लिखा गया है।

उनकी साधना के समय की लिखी हुई डायरी में देखा जाता है कि उन्होंने शिलौंग, भुवनेश्वर तथा विन्ध्याचल में रहते समय सम्पूर्ण मौन रहकर कठोर नियमों का पालन करते हुए साधना की थी। इस समय वह रात्रि के ३ बजे शय्या त्यागकर शौच, स्नान, तिलक-स्वरूप आदि समाप्त कर सुबह ४.३० बजे से ६.३० बजे तक जप-ध्यान में मग्न रहते थे। सुबह ६.३० बजे श्री श्री ठाकुरजी की शृंगार-आरती का दर्शन कर श्री श्री नारायण के चरणों में १०८ तुलसी अर्पण करते थे। ८.३० बजे से ९ बजे के बीच श्री श्रीठाकुरजी के बालभोग का प्रसाद थोड़ा सा ग्रहणकर ९ बजे से ११ बजे तक पुनः जप ध्यान में मग्न रहते थे। ११ बजे के वक्त श्री श्रीठाकुरजी का राजभोग लगाया जाता था। श्री श्रीठाकुरजी का भोग हो जाने पर वह ११.१५ बजे से ११.४५ बजे के बीच प्रसाद ग्रहण करते थे। इस समय दोपहर को वह नमक भी वर्जित कर केवल सामान्य मात्रा में चावल तथा आधा सेर दूध ग्रहण करते थे। साथ में दाल, सब्जी कुछ भी नहीं लेते थे। बाद में १२ बजे से २ बजे तक विश्राम करके पुनः २ बजे से ३ बजे के बीच शौच, स्नान, तिलक-स्वरूप आदि समाप्त कर ३ बजे से ४.३० बजे तक पुनः जप, ध्यान में लग जाते थे। ४.३० बजे से ६ बजे तक

थोड़ा भ्रमण करते थे। बाद मे श्री श्रीठाकुरजी की सन्ध्या-आरती के दर्शन कर पुनः शाम ६ बजे से ८.३० बजे तक भजन (जप, ध्यान) करते थे। रात ८.३० बजे श्री श्रीठाकुरजी के भोग के बाद केवल मात्र आधा सेर दूध प्रसाद ग्रहण करते थे। रात ८.३० बजे से ६ बजे तक केवल आधे घण्टे का समय वह हाथ में रखते थे तथा उस समय किसी को कुछ पूछना होता था (जैसे पत्र आदि का उत्तर देना इत्यादि के संबंध में) या अन्य कोई कार्य रहने पर उसे करते थे। रात ६ बजे से ६.३० बजे के बीच शयन करते तथा रात ३ बजे तक सोते थे।

रामपुर (देहरादून) कनखल तथा श्रीवृन्दावन में काठिया बाबा के स्थान में रहते समय भी बाबाजी महाराज के भजन का नियम लगभग ऐसा ही था। सामान्य १५/२० मिनट समय (कम या ज्यादा) का परिवर्तन हुआ है।

बाबाजी महाराज के इस नियम के प्रति ध्यान देने पर देखा जाता है कि वह आहार, विहार तथा निद्रा सभी कुछ श्रीमद्भगवद् गीता में वर्णित आदर्श के अनुसार ही करते थे। श्रीमद्भगवद् गीता में कहा गया है—**"युक्ताहार-विहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।"** (६/१७) अर्थात् जिनका आहार-विहार नियमाधीन है, जिनकी कर्मचेष्टा भी नियमाधीन है (आलस्य के कारण कम अथवा लाभ के लिए अधिक नहीं है) जिनकी निद्रा तथा जागरण ये दोनों ही नियमाधीन रहते हैं, उनका ही योग दुःख-नाशक होता है। क्योंकि—

"नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति, न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति-स्वप्न-शीलस्य, जाग्रतो नैव चार्जुन।।" गीता ६/१६

अर्थात् अपरिमित अतिभोजी अथवा बिल्कुल अनाहारी का योग सिद्ध नहीं होता है। अत्यन्त निद्रालु (सोने वाला) अथवा अत्यधिक जागने वाले व्यक्ति का भी योग सिद्ध नही हो सकता।

श्रीबाबाजी महाराज ने गीता में उक्त आदर्श पर ही अपना आहार व निद्रा के नियम का अवलम्बन किया था। देह-मन को अत्यधिक पीड़ित करके कृच्छसाधन के वह पक्षपाती नहीं थे। एक मात्र योगी ही विविध प्रकार के हठयोग आदि की प्रक्रिया के द्वारा आहार तथा निद्रा का सम्पूर्ण विधान कर सकते हैं तथा विविध प्रकार के कृच्छ्र-साधन (कष्टकारी साधना) तथा तपस्या भी वही कर सकते हैं। आत्म-समर्पित भक्त या ज्ञानी साधक के लिए वह करना संभव नही है अथवा उनके लिए उसकी आवश्यकता भी नहीं रहती है।

पहले ही कहा जा चुका है कि बाबाजी महाराज की साधना का रहस्य उनके श्री गुरुदेव के प्रति आन्तरिक निष्ठा, अनन्यगुरु भक्ति तथा गुरु व इष्ट में सभी प्रकार से आत्म-समर्पण है। उनकी साधना के समय लिखी हुई डायरी में बहुत से स्थानों पर ही आत्म समर्पण तथा प्रार्थना का भाव प्रस्फुटित हुआ है। नीचे उनकी लिखी हुई साधना की डायरी के कुछ अंश उद्धृत कर रहा हूँ। इससे उनकी उस समय की मन की अवस्था विशेष रूप से बोध-गम्य होगी।

योगीराज श्री श्रीबाबाजी महाराज ने अपनी साधनावस्था में लिखा है–

"हे गुरुदेव ! २४ वर्ष पहले दौलतपुर में अध्ययन-काल में भजन करते-करते भगवद्दर्शन के लिए व्याकुल होकर तुमको पत्र लिखने पर उसके जवाब में मुझको बताया था कि श्री भगवान् सनत्कुमार ने कहा है **"न त्वरमानेन लभ्यः"** अधिक शीघ्रता करके जो प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, वह प्राप्त कर ही नहीं पाते हैं। धैर्य धरना आवश्यक है।......... तुमने आत्मसमर्पण किया है, प्रभु ने भी तुमको ग्रहण किया है, तुम्हारी योग्यता क्रमशः साधित होने पर वह जब सही समय देखेंगे तभी दर्शनादि आवश्यकता के अनुसार मिलेगा।"

तुम्हारे इस उपदेश को पाने के बाद से मैं और व्याकुल न होकर धैर्य धारण पूर्वक स्थिर चित्त से उस समय की प्रतीक्षा करता आ रहा हूँ। लेकिन २४ वर्ष इस प्रकार बीत गये, अभी वह वक्त नहीं आया है, देखकर अब मौका मिलने पर उस योग्यता के संपादन में यदि कुछ सहायता हो, इस उद्देश्य से ही तुम्हारी कृपा के ऊपर निर्भर करके वर्तमान नियम-पालन करते हुए चलना आरम्भ किया है। लेकिन यह नियम-पालन-पूर्वक चलने का जो मौका अब मिला है, यह तुम्हारी ही कृपा है। तुम जब जिस अवस्था में रख रहे हो, वैसे ही रहा हूँ। अपनी कुछ भी सामर्थ्य नहीं है, तुम्हारी कृपा का ही एकमात्र सहारा है। हे विश्वरूप, विश्वाधार, सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वनियन्ता, परमात्मन ! तुमने स्वयं जब मेरे उद्धार के निमित्त गुरु-स्वरूप होकर मेरे ऊपर कृपा की है (श्रीगुरुदेव ने स्वयं लिखित रूप में मुझे बताया है-"गुरु परमात्मा ही हैं, परमात्मा ही तुम्हारे उद्धार के निमित्त गुरु-स्वरूप हुए हैं") एवं गुरु-रूप में तुमने लिखित रूप में बताया है कि तुम्हारे प्रति भगवत्-कृपा लगातार बरस रही है, भगवान् तुम्हारे प्रति सदय हुए हैं, वस्तुतः किसी विषय में वह अभाव नहीं होने देंगे एवं अन्य सभी विषयों में मैंने देखा है कि कोई अभाव आज तक नहीं हुआ है, तब एक अभाव क्यों मेरा रह जा रहा है? तुम्हारे सच्चिदानन्द रूप के दर्शन के लिए मैं इतने समय चातक की भाँति उन्मुख होकर प्रतीक्षा कर रहा हूँ, उसी दर्शन का अभाव क्यों रख रहे हो? तुम जब सर्वज्ञ हो, तब तुम मेरे दिल की इस आकांक्षा को अवश्य ही जान रहे हो, और तुम जब सर्वशक्तिमान् हो, तब तुम इच्छा करने पर एक पल में मेरी इस आकांक्षा को पूरा कर सकते हो। लेकिन तुम मेरे प्रति सदय होने के बावजूद भी तथा मेरे प्रति तुम्हारी कृपा लगातार बरसने के बावजूद भी तुम अभी तक क्यों अपना सच्चिदानन्द-स्वरूप मेरे निकट

प्रकट कर मुझे कृतार्थ नहीं कर रहे हो? हे प्रभो ! तुम्हारे इस शरणागत सम्पूर्ण रूप से अधीन दास के प्रति जो कृपा करने पर उसकी यह आकांक्षा पूरी हो, वह कृपा अब करो, जब लगातार कृपा बरसा रहे हो तथा उस कृपा-वर्षा के फलस्वरूप इस अनन्त जीवमय विश्वरूप को तुमने ही धारण किया है तथा तुम्हीं इन विविध रूपों में क्रीड़ाकर रहे हो, इस सार सत्य को भी मेरी अनुभूति में प्रकाशित किया है तब और यह कृपा-वृष्टि करना बाकी क्यों रखते हो? तुम्हारी इस कृपा-प्राप्ति की आशा में अवसर पाकर यह व्रत नियम करके निर्जन स्थान पर वास करने आया हूँ। कुछ दिन बाद इस निर्जन स्थान को त्यागकर चले जाने पर भी जब तक तुम इतनी कृपा नहीं करते हो, तब तक यह व्रत नियम-पालन करने की ही मेरी एकान्त इच्छा है। हालाकि किसी प्रकार का चाञ्चल्य-भाव हृदय में रखना नहीं चाहता हूँ। जब तुम्हारी इच्छा होगी, तभी तुम मेरी इस आकांक्षा को पूरा करोगे। तुमको मेरी आकांक्षा व्यक्तकर निश्चित तथा चंचलता-रहित भाव से रहकर तुम्हारी इस कृपा को प्राप्त करने के लिए इस व्रत तथा नियम के द्वारा शुद्ध तथा संयत चित्त से प्रतीक्षा करने की इच्छा मात्र की है। अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा ही करो।

साधना के वक्त तथा अन्य हर वक्त यह दृढ़ रूप से धारणा रखनी होगी कि जो अपनी अनन्त शक्ति के द्वारा इस अनन्त जीवमय विश्वरूप को धारण किया है, मैं, तुम या दूसरा कोई उससे भिन्न नहीं है, जो यह विविध रूपों में क्रीड़ाकर रहे हैं, उन्हीं की निरन्तर कृपा मेरे प्रति बरस रही है तथा वही मेरे प्रति सदय हुए हैं (श्रीगुरुदेव ने यह स्वयं कहा है) फिर वह सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान् हैं, इच्छा करने पर वह एक पल में सब कुछ कर सकते हैं, यह हमेशा स्मरण रखकर हताश भाव तथा निरुत्साह त्यागकर पूर्ण भरोसे के साथ सर्वथा आनन्दपूर्ण चित्त के साथ निश्चिन्त होकर प्रतीक्षा करनी होगी।"

बाबाजी महाराज की उल्लिखित डायरी की उक्तियों से समझ में आता है कि साधक के लिए किस प्रकार आत्म-समर्पण तथा निर्भरता व विश्वास के साथ साधना में लगे रहना पड़ता है। वास्तविक रूप में जीव की किसी विषय में बिल्कुल भी स्वतन्त्रता नहीं है, सभी कुछ भगवान् की इच्छा से नियन्त्रित होता है, यह जानकर तथा दृढ़रूप से धारणाकर अपने कर्त्तापन का अभिमान तथा गर्व सम्पूर्ण रूप से छोड़कर सम्पूर्ण निरभिमानी होकर श्री भगवान् व श्रीगुरु में सभी प्रकार से आत्म-समर्पण कर साधना में प्रवृत्त होना होता है, एवम् आन्तरिकता के साथ उनकी कृपा की प्रतीक्षा करते रहना पड़ता है। बाबाजी महाराज ने भी वही किया था, यह उनकी उल्लिखित डायरी की उक्तियों से स्पष्ट समझा जा सकता है।

श्रीगुरु कृपा से ही परम सत्य-तत्त्व शिष्य के हृदय में प्रकाशित होता है तथा वह शिष्य सभी प्रकार से श्रीगुरु के अनुगत रहकर बिना विचारे प्रसन्न मन से आत्म-समर्पण के सहित उनके आदेश का पालन करते जा सकता है। उस अनुगत आत्म-समर्पित शिष्य के प्रति ही श्री गुरु की वह परम कृपा वर्षित होती है तथा **बाबाजी महाराज के प्रति भी वही हुआ था तथा "वासुदेवः सर्वमिति"-सभी कुछ वासुदेव हैं-यह परम ज्ञान तथा प्रत्यक्ष अनुभूति श्री गुरु कृपा से ही बाबाजी महाराज के हृदय में प्रकाशित हुई है, जिसके फलस्वरूप वह एक स्थायी परम शान्ति की अवस्था को प्राप्त हुए हैं, उस विषय में बाबाजी महाराज की लिखी हुई डायरी का एक और अंश यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ :-**

"हे श्री गुरुदेव ! तुमने उपदेश किया था कि अनन्त जीव-समन्वित यह ब्रह्माण्ड सारा ही ब्रह्म है; वह अत्यन्त शक्तिमान् हैं, उसी अनन्त शक्ति के द्वारा उन्होंने अनन्त जीवमय विश्वरूप को धारण

किया है। तुम, मैं अथवा दूसरा कोई उनसे भिन्न नहीं है, वही विविध रूपों में क्रीड़ा कर रहे हैं। यही सार-सत्य जानना।.........

यह सत्य तुम्हारी ही असाधारण कृपा से करीब ६.१/२ वर्ष पूर्व १६ जनवरी १९४३ ई. तारीख को श्रीयुत.......दासजी तथा दूसरे उनके पक्ष के साधु गुरु-भ्राताओं के मेरे साथ भीषण विरोध की शान्ति होने के साथ ही साथ मेरे दिल मे प्रकाशित हुआ है। मेरे हृदयाकाश रूपी समुद्र को मन्थन कर प्रथम हलाहल निकलने पर वह तुमने स्वयं पान कर उसके बाद अमृत निकलने पर वह मुझे पान कराकर अन्तर को चिरशान्तिमय कर दिया है। उस दिन से अनुभव मेरे अन्तर में अन्तःसलिला फल्गुधारा की भाँति लगातार प्रवाहित होकर मेरे अन्तर को सदासिक्त (शान्तिमय) कर रखा है।

उसके बाद भी कितना झगड़ा विरोध हो गया है, लेकिन किसी बात ने मेरे अन्तर की उस (अनुभवजनित) शान्ति को भंग नहीं किया है। मैं तो साधन-भजन कुछ कर नहीं सका हूँ, फिर भी तुम्हारी ऐसी कृपा अयाचित-असीम रूप से प्राप्त की है, इसके लिए मेरा हृदय तुम्हारे प्रति कृतज्ञता से भरा हुआ है। तुमने कहा था-"गुरु आदेश बिना विचार किये पालन करने से ही सब साधन हो जाता है, बीस वर्ष निर्जन स्थान पर वास करके एक निष्ठ रूप से भजन साधन करने पर जो फल प्राप्त होता है, उससे अधिक फल केवल मात्र तीन वर्ष गुरु का आदेश पालन करने पर प्राप्त कर सकते हो।" तुम्हारा यह वाक्य सम्पूर्ण वही तुमने अचानक मेरे अन्तर में प्रकाशित कर मुझे प्रत्यक्ष कराया है। यह अनुभव बहुत जन्मों की बहुत साधना के फलस्वरूप बहुत जन्मों के बाद कोई कभी प्राप्त कर सकने के कारण भगवान् ने गीता में कहा है-

"बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।।"

हे गुरुदेव ! बार-बार केवल लग रहा है कि तुम्हारी कृपा से क्या हो गया हूँ ! मैं कहाँ किस अवस्था में पड़ा हुआ था और आज तुमने मुझे कहाँ लेकर पहुँचा दिया? बहुत जन्मों की तपस्या के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता, वह तुमने पलक झपकते ही मेरे अन्दर प्रकाशित कर दिया है।

जन्म-जन्म कठोर साधना करके भी मैं यह ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता था, लेकिन तुम्हारी असाधारण कृपा से एक पल में प्राप्त कर सका हूँ। तुम्हारे आदेशानुसार जो कठिन न्याय-शास्त्र अत्यन्त कठोर परिश्रम कर अध्ययन किया है तथा आश्रम की प्रति वर्ष ब्रजचौरासी कोस वन-परिक्रमा तथा कुम्भ-मेला के संचालन का दायित्व मैंने सभी प्रकार से अयोग्य होने पर भी मेरे ऊपर जो तुमने दिया था, सैकड़ों बाधा, विघ्न तथा झगड़ा विरोध के भीतर से भी तुम्हारी असाधारण कृपा से वह सभी बिना पीड़ा के अकेले सहनकर उस आदेश का बिना विचारे हुए पालन करने की चेष्टा की है। उसी के पुरस्कार-स्वरूप तुमने मुझको बहुत जन्मों की साधना के द्वारा प्राप्य यह ज्ञान बिना साधना के प्रदान किया है।

हे गुरुदेव ! आज तुम्हारी अपार कृपा से उस महान् दायित्व से अवसर पाकर यहाँ निर्जन स्थान पर कुछ दिन साधना का सुअवसर भी मिला है। आशा करता हूँ कि अब तुम मेरे अन्तर में क्रमशः इस अनुभव की गहराई का सम्पादन करोगे तथा अन्त में पूर्ण सच्चिदानन्द-मय परमात्म रूप प्रकाशकर मेरा सर्वाभीष्ट पूर्ण करोगे !

आज इस निर्जन स्थान पर द्वन्द्वरहित रूप से चंचलता-शून्य चित्त से बैठकर समझ पा रहा हूँ कि तुमने मुझे विविध प्रकार से विवाद, विसम्वाद, विषार्त्त, आपत्ति इत्यादि के बीच डालकर स्वर्ण की अग्नि में दग्ध कर (आग में गलाकर) विशुद्ध करने की भाँति मुझे

गलाकर निर्मल किया है। उसके बाद मेरे अन्तर में इस सत्य को प्रकाशित किया है तथा परमात्म-स्वरूप प्रकाश करने चले हो। अब समझ रहा हूँ तुमने जो कहा था-"भगवान् तुम्हारे ऊपर दयावान हुए हैं जानना। तुम्हारे चित्त को शुद्ध करने के लिए समय-समय पर कुछ विभीषिका मात्र दिखा रहे हैं, तुम्हारे प्रति तो भगवत्-कृपा लगातार बरस रही है। तुम वह नहीं समझ रहे हो, चिन्तित मत होओ, समयानुसार सब कुछ प्रकाशित होगा। तुम्हारा यह वाक्य सम्पूर्ण सत्य है।"

इसके बाद बाबाजी महाराज की साधना के समय की डायरी के और भी कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये गए हैं। इसका पाठ करने पर साधकमात्र का ही विशेष उपकार होगा तथा साधना के सम्बन्ध में नए-नए आलोक पायेंगे, सन्देह नहीं है। बाबाजी महाराज की उस समय की मन की हालत भी इससे बहुत कुछ समझी जा सकती है।

"अब इस निर्जन स्थान पर चंचलता-रहित चित्त से बैठकर भी देख रहा हूँ। 'ब्रह्म इस अनन्त जीव-समन्वित विश्वरूप को धारण कर विविध रूपों में क्रीड़ाकर रहे हैं।' यह सत्य मेरी अनुभूति में प्रकाशित होने पर भी तथा अन्तर में एक स्थायी शान्ति रहना सर्वावस्था में उपलब्धि करने पर आश्रम का दायित्व लेकर वहाँ रहते वक्त विविध घटनाएँ घटने, किसी अवस्था में विचलित न होने पर भी उन सभी घटनाओं के द्वारा सामयिक रूप से जैसा दुःख, क्लेश अनुभव करता था, अब भी कोई दर्शन करने आकर अपने दुःख, क्लेश आदि की बात कहने पर उस समय सामयिक रूप से उनके वह दुःख, क्लेश अन्तर को स्पर्श कर रहे हैं। फिर वे चले जाते हैं, तब उस शान्तिमय अवस्था में स्थित हो रहा हूँ। दूसरों के साथ साधारण व्यवहार करने जाकर भी ऐसा ही होता है, देख रहा हूँ। लेकिन लगता है उनके साथ व्यवहार के समय भी मानो वह शान्तिमय अवस्था थी, लेकिन व्यवहार

के समय दुःख कष्ट आदि का स्पर्श मानो उसको ढककर रखता है। इसका कारण मुझे यह लगता है कि यह स्थूल देह वर्तमान रहने तक जब सत्य, रजः और तमः इन तीन गुणों की क्रिया रहेगी ही, तब इस प्रकार रजः और तमोगुण का कार्य दुख और कष्ट आदि स्पर्श करेंगे ही। लेकिन गुण की क्रिया जैसी भी क्यों न हो, उसमें लिप्त न होकर निर्लिप्त रहना चाहिए, गुणातीत पुरुष के सम्बन्ध में भी श्री भगवान् ने गीता में ऐसा ही उपदेश किया है।

अतः दूसरों के साथ व्यवहार के समय या अन्य समय विविध कारणों से सुख-दुःख इत्यादि अन्तर को स्पर्श करने पर भी उसमें हानि का कोई कारण नहीं है, उस अवस्था में जिससे निर्लिप्त रहा जा सके उस तरफ दृष्टि रखनी होगी। ब्रह्मज्ञ पुरुषों के प्रारब्ध-भोग के निमित्त ही यह स्थूल देह वर्तमान रहता है। अतः उनको भी जब सुख-दुःखादि का भोग इस स्थूल देह के वर्तमान रहने तक करना होता है, तब मेरी भी इस साधना की अवस्था में सुख-दुःखादि समय-समय पर अन्तर को स्पर्श नहीं करेंगे, यह आशा किस प्रकार की जा सकती है? अतः गुणातीत पुरुषों के सम्बन्ध में 'प्रकाशञ्च-प्रवृत्तिञ्च' एवं 'उदासीन वदासीनः' इन दोनों श्लोकों में गीता में सम्यक् वर्णन है। उसका ध्यान करो।

परमात्मा के सर्वातीत, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सच्चिदानन्दमय-स्वरूप का ध्यान करते-करते ऐसा अनुभव कर रहा हूँ कि ब्रह्म के स्वरूपगत अनन्त-आनन्द समुद्र से ही विराट् पुरुष का व्यापक स्थूल-सूक्ष्म शरीर (बुद्धि से क्षिति-तत्त्व तक) तथा व्यष्टि-अनन्त, स्थूल-सूक्ष्म शरीर उनके अधिष्ठातृ जीव समूह के कर्म और उसके कारण सुख, दुःख, रोगशोक, संकल्प-विकल्प आदि सभी कुछ (समग्र विश्व) समुद्र से उत्पन्न झाग, बुलबुले, तरंग, बर्फ-खण्ड आदि जैसे जल से अलग कुछ कुछ नहीं है, उसी प्रकार उस आनन्द-समुद्र से

उत्पन्न ये समस्त जागतिक पदार्थ ब्रह्म के स्वरूपगत आनन्द के अलावा और कुछ नहीं हैं।

श्रुति ने स्वयं यह स्पष्ट रूप से उपेदश किया है, यथा– **यतो वा इमानि भूतानि...............सम्भवतीहा विश्वम्।।** इत्यादि

अतः इस वक्त हमारा अवलम्बनीय साधन यह है कि बुद्धि-तत्व से पञ्चमहाभूत (व्यापक) एवं उन सभी के सम्मिश्रण से जो व्यष्टि रूप में अनन्त स्थूल सूक्ष्म देह प्रकाशित हुआ है, वह सभी, सप्त पाताल, सप्त नरक, भूर्भुवः - स्वर्महः - जन-तपः इत्यादि लोक-समूह इत्यादि प्रकाशित समस्त जगत् ब्रह्म के स्वरूपगत आनन्द-समुद्र का ही झाग, बुलबुला, तरंग, बर्फ-खण्ड आदि की भाँति विभिन्न रूपों में प्रकाशित है एवं जैसे जलात्मक समुद्र से उत्पन्न झाग, तरंग, बुलबुले आदि समुद्र के सिवाय दूसरे कुछ नहीं हैं, वह सब समुद्र ही है, जैसे स्वर्ण से विभिन्न आकारों में निर्मित वलय-कुण्डल आदि स्वर्ण के सिवाय अलग कुछ नहीं हैं, वे स्वर्ण ही हैं, उसी प्रकार आनन्द से विभिन्न आकारों में प्रकाशित ये जागतिक समस्त पदार्थ आनन्द के अलावा और कुछ नहीं हैं, वे सभी आनन्द ही हैं। चिन्मय ब्रह्म उस अनन्त-आनन्द का अविच्छिन्न रूप में अनुभव कर्ता है। मैं उसी चिन्मय ब्रह्म का ही चिन्मय अंश हूँ। अतः अपने स्थूलदेह और सूक्ष्म देह (पञ्चतन्मात्र, इन्द्रिय, अहंकार और बुद्धि) एवं आब्रह्म-स्तम्भ-पर्यन्त दूसरे सभी के स्थूल-सूक्ष्म देह-समूह जागतिक अन्य दूसरी सारी वस्तुएँ तथा सभी के कर्म, सुख, दुःख, रोग-शोक, संकल्प, विकल्पादि इन सभी को ही उस आनन्द-समुद्र के साथ एक रस-भाव से एक जान करते हुए चिन्मय ब्रह्म के अनुभव के विषयीभूत उस अनन्त आनन्द को अपने स्वरूपगत चित के द्वारा सर्वदा अविच्छिन्न रूप से अनुभव करते जाना होगा।

पूर्वोक्त अनुभूति के साथ यह सम्पूर्ण रूप से अधीन होने पर ही परमात्मा का सच्चिदानन्द-मय-स्वरूप प्रकाशित होगा ऐसा मालूम पड़ता है।

श्रीमद्भागवत के वाक्य को हमेशा ध्यान में रखकर सभी कुछ भगवत्-स्वरूप है। अतः सारे कर्म उसी के हैं, वही प्रत्येक जीव के प्रत्येक कर्म के कर्ता हैं; यह जानकर किसी के भी किसी कर्म की प्रशंसा भी मत करना अथवा निन्दा भी मत करना, सर्वदा समदर्शी होकर आनन्दमय अवस्था में रहने की कोशिश करना।

इसके बाद श्री वृन्दावन में निम्बार्क-आश्रम में रहते समय अपनी साधना की डायरी में श्री श्रीबाबाजी महाराज लिख रहे हैं-

अर्थ-प्रधान अर्थात् जगत प्रकृतिक्षर, विनाश शील है और मरण-रहित जीवात्मा अक्षर हैं। संसार के बीज-भूत अविद्यादि दोष हरणकारी एक (अद्वितीय) देव परमात्मा पुनः पुनः अभिध्यान तथा उनमें चित्त-संयोजन के द्वारा "मैं ब्रह्म हूँ" इस प्रकार के तत्त्व-ज्ञान का उदय होने पर, तब विश्व माया की निवृत्ति होती है।

बाबाजी महाराज की साधना की डायरी में लिखित उक्त विषयों का अनुसन्धान करने पर समझ में आता है कि सत्य, तपस्या, तत्त्व, भावना, स्वाध्याय, मंत्र-जप और एकनिष्ठ भक्ति और आत्म-समर्पण (ईश्वर प्रणिधान) के साथ वह साधना में प्रवृत्त हुए थे। उनकी उस साधना का उद्देश्य था, सभी जगह सभी प्राणियों में ब्रह्म की उपलब्धि, अपने को भी उस ब्रह्म से अभिन्न रूप में अनुभव तथा उसी परमेश्वर-परमात्मा-परब्रह्म के जगन्नियन्तापन की प्रत्यक्षानुभूति।

साधना के लिए बाबाजी महाराज ने जिन नियमों का अवलम्बन किया था, वे सभी नियम भी सभी शास्त्रों के सार का अवलम्बन करके ही किया गया था। इस सम्बन्ध में उन्होंने रामपुर (देहरादून) रहते वक्त डायरी में लिखा है-

“.........ये नियम पातञ्जल-योग दर्शन, वेदान्त-दर्शन तथा गीता इत्यादि के सार का अबलम्बन करते हुए किया गया है। उन समस्त शास्त्रों का सार विषय (साधना से सम्बन्धित) ये है कि भक्ति के साथ ईश्वर का ध्यान किये जाने पर उनकी कृपा से अति शीघ्र समाधि प्राप्त होती है तथा उसके फलस्वरूप मोक्ष प्राप्त होता है, (पातञ्जल-योग-सूत्र का समाधि पाद २३ सूत्र और भाष्य) मन्त्र-जप, मोक्ष-शास्त्र के अध्ययन तथा तदर्थ भावनाओं के द्वारा चित्त एकाग्र होता है तथा परमात्मा प्रकाशित होता है, व्याधि आदि समस्त बाधायें दूर होती हैं, जीव के स्वरूप का ज्ञान होता है, ईश्वर में सर्व कर्मार्पण रूपी ईश्वर प्रणिधानकारी पुरुष चाहे सोते ही रहें या बैठे ही रहें अथवा पथ पथ पर भ्रमण ही करते रहें, वे हमेशा ही आत्मस्थ रहते हैं। उनके वितर्क सारे नष्ट हो जाते हैं, अविद्या इत्यादि संसार-बीज का क्षय-अनुभव करके वे नित्य युक्त होकर ब्रह्मानन्द-भोग के भागी हो जाते हैं। निम्नवर्ती कोई भूमि अधीन न करके भी ईश्वर के अनुग्रह से एकदम प्रज्ञा भूमि प्राप्तकर सकते हैं। ईश्वर-प्रणिधान से समाधि-सिद्धि होती है तथा उसके फलस्वरूप समस्त वस्तुओं का यथार्थ स्वरूप अवगत हुआ जा सकता है। (समाधि-पाद २८-२९ सूत्र, साधन-पाद १, ३२, ४५ सूत्र एवं विभूतिपाद ६ अ सूत्र एवं उसकी भाषा द्रष्टव्य है) भक्तियोग में आराधित होने पर ब्रह्म प्रकाशित होते हैं, वह वेदान्त दर्शन में भी ३/२/२४-२५ सूत्र में उपदिष्ट हुआ है। उपासना के समय अपने मुक्त स्वरूप का चिन्तन तथा परमात्मा को अपनी आत्मा मानकर ध्यान करना होगा। (ब्रह्मसूत्र ३/३/५२ तथा ४/१/३ सूत्र द्रष्टव्य है)।

किस प्रकार की अवस्था में निर्जन स्थान पर अकेले आहार आदि तथा इन्द्रियों आदि का संयम कर किस प्रकार साधना करनी होगी, वह गीता के छठे अध्याय के ३/४ तथा १० से लेकर ३३ तक

श्लोकों में तथा १८ अध्याय के ४५ से ५५ श्लोकों में वर्णित हुआ है। कठोपनिषद के २/३/१०-११ श्लोकों में भी योग उपदिष्ट हुआ है। उपरोक्त सूत्र उनके भाष्य तथा श्लोकों का साधना के समय पुनः पुनः अनुसरण कर दृढ़रूप से निर्दिष्ट पथ पर चलने के लिए सर्वदा दृष्टि में रखना होगा। श्रीगीता जी ने कहा है-

जो पुरुष बहिःस्थित इन्द्रिय-भोग्य विषयों में आसक्ति-शून्य होते हैं, वे आत्मा में जो सात्त्विक आनन्द स्वतः ही विद्यमान है, वह प्राप्त होते हैं एवं (इसके बाद) ब्रह्म में समाहित चित्त होकर आत्मभाव में स्थित होते हैं एवं अक्षय आनन्द के अधिकारी होते हैं।

विषयों के साथ इन्द्रियों का योग होने पर जो सुख अनुभूत होता है, उससे परिणाम में दुःख की ही उत्पत्ति होती है, वह सुख आदि और अन्तविशिष्ट होता है अर्थात् अल्पकाल स्थायी है, अतः हे कौन्तेय! ज्ञानी पुरुष इस प्रकार की भोग-प्राप्ति से प्रसन्न नहीं होते हैं।

इस जन्म में शरीर-परित्याग के पूर्व अर्थात् जीवित रहते ही जो काम और क्रोध से उत्पन्न मनोविकारों को सहनकर सकते हैं, वे पुरुष ही वास्तव में योगी हैं एवं वे ही स्थायी सुख प्राप्त करते हैं।

जिनकी आत्मा में ही सुख है, आत्मा में ही जिनकी क्रीड़ा (आमोद) है, आत्मा में ही जिनकी दृष्टि है, वे योगी अहंज्ञान-परित्याग पूर्वक अर्थात् सभी के साथ अभेद भाव प्राप्त होकर बाद में परब्रह्म को प्राप्त करते हैं।

पुनश्च :-

हे कौन्तेय ! अत्यन्त बलवान सभी को परास्त करने वाले इन्द्रिय यत्नशील विवेकी पुरुष के मन को भी निश्चय ही बलपूर्वक हरण करता है (विषयों के साथ युक्त करता है)।

उन सभी इन्द्रियों को संयत करते हुए समाहित होकर मुझको

आत्म स्वरूप में आश्रय कर अवस्थित रहना। जिनकी सभी इन्द्रियाँ वशीभूत हुई हैं, उन्हीं की प्रज्ञा प्रतिष्ठित हुई है।

जिसकी सभी इन्द्रियाँ वशीभूत नहीं हुई हैं, उसके बुद्धि नहीं है तथा उसका ध्यान भी नहीं होता है और जिसका ध्यान नहीं होता है, उसके शान्ति भी नहीं है। जिसको शान्ति प्राप्त नहीं हुई है, उसको आनन्द किस प्रकार से प्राप्त होगा?

क्योंकि विषय लिप्त इन्द्रियों के बीच जिन इन्द्रियों के पीछे मन दौड़ता है, वह इन्द्रियाँ समुद्र के बीच नौका को वायु जैसे अपनी इच्छा के अनुसार चलाता है, उसी प्रकार उस पुरुष के ज्ञान को हरण कर लेती हैं।

अतः हे महाबाहो ! जिसके इन्द्रिय-समूह इंन्द्रियों के विषय-समूह से सभी प्रकार से निगृहीत हुए हैं उसी की प्रज्ञा प्रतिष्ठित हुई है।

चारों तरफ से पानी भरते रहने पर भी समुद्र जैसे पूर्ण नहीं होता तथा अपनी सीमा को न लाँघकर अचल रूप में वर्तमान (टिका) रहता है, उसी प्रकार सारे विषय सर्वदा सामने उपस्थित होते रहने पर भी जिनका मन कभी विचलित नहीं होता, वही शान्ति प्राप्त करते हैं। लेकिन जो भोग कामनाशील है वे कभी शान्ति-प्राप्त नहीं कर सकते।

जो पुरुष सभी प्रकार की कामना का परिहार पूर्वक, स्पृहा शून्य, ममता-रहित तथा निरहंकार होकर जीवन-यात्रा का निर्वाह करते हैं, वे ही शान्ति प्राप्त करते हैं।

डायरी की इन सभी उक्तियों से हम देखते हैं कि श्री श्रीबाबाजी महाराज अपने लक्ष्य के प्रति स्थिर तथा चंचलता-रहित रहकर प्रयत्न के साथ साधना करते चले हैं तथा उस साधना में तथा लक्ष्य में ये सभी शास्त्र-वाक्यों ने उनके पथ-प्रदर्शक होकर उनको साधना में सर्वदा उत्साह प्रदान किया है। अन्त में उन्होंने समस्त साधना को भी उन्हीं श्रीभगवान् में समर्पित कर सभी प्रकार के अभिमान को

त्यागकर उनमें ही सम्पूर्ण आत्म समर्पण कर उनकी कृपा की प्रतीक्षा कर रहे हैं–यह भी हम उनकी निम्न लिखित डायरी की उक्तियों से देख सकेंगे। वह रामपुर (देहरादून) रहते वक्त अपनी डायरी में एक जगह लिख रहे हैं–

अब अन्य कोई कामना नहीं है। भगवान् की इच्छा की प्रतीक्षा में रहने मात्र की इच्छा है। वह जब जैसी इच्छा ही करेंगे। श्रीगुरु के तथा शास्त्र के उपदेश के अनुसार इष्ट-मन्त्र-जप तथा मन्त्रार्थ की भावना, ईश्वर का ध्यान तथा उनमें सभी कर्मों का अर्पण अवश्य ही सामर्थ्य के अनुसार करते जाना चाहिए। कब वह (सच्चिदानन्द मय परमात्मा) स्वयं प्रकाशित होंगे, मोक्ष प्राप्त होगा इसकी चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसमें आत्म समर्पण कर उनकी इच्छा की प्रतीक्षा में अत्यन्त प्रसन्न चित्त से रहना होगा। उनकी जष इच्छा होगी प्रकाशित होगे। श्रीगुरु ने जब कहा है-"तुम्हारी योग्यता क्रमशः साधित होने पर वह जब सही समय देखेंगे, तभी दर्शनादि आवश्यकतानुसार मिलेगा, तुम्हें परागति प्राप्त होगी, अभीष्ट सिद्ध होगा इत्यादि तब होगा ही, इसमें कोई सन्देह का कारण नहीं है।

कैसा अपूर्व है यह आत्म-समर्पण का भाव ! परमात्म-ज्ञान प्राप्ति की इच्छा रखने वाले मोक्ष-प्रार्थी साधकों के लिए अन्तिम में साधन के अन्त में इसी प्रकार से सभी प्रकार की साधना तथा साधना के अभिमान को भी श्रीभगवान् को समर्पण करना होगा; क्योंकि श्रीभगवान् किसी प्रकार की साधना से प्राप्य नहीं हैं। वह स्वयं कृपाकर जिसको वरण करते हैं, वही उनको जान पाता है। अतः सभी प्रकार से आत्म-समर्पण तथा उनमें सभी कर्मों का अर्पण कर प्रसन्न मन से सर्वावस्था में उनकी इच्छा को ही वरणकर चलना एवं उनकी कृपा की प्रतीक्षा में रहना ही उनको पाने का उपाय है। साधक को साधना के

अभिमान का भी त्याग करना होगा। श्रीमद्भागवत के उल्लिखित १०/१४/८ श्लोक में भी इसी प्रकार आत्म समर्पण तथा उनकी कृपा की प्रतीक्षा में रहने की बात ही कही गयी है और हम यहाँ भी देख रहे हैं कि श्री श्रीबाबाजी महाराज ने भी वही किया है।

अन्त में श्री श्री बाबाजी महाराज को पूर्ण रूप से परमात्म-साक्षात्कार कब हुआ है, उसका स्पष्ट रूप से उनकी डायरी में उल्लेख नहीं है। लेकिन उनकी डायरी के अन्तिम पृष्ठ पर उपनिषद् के परमात्म-स्वरूप से सम्बन्धित कई श्लोक तथा उनका बंगानुवाद दिया हुआ है। उससे देखा जाता है कि अन्तिम श्लोक में ऋषि कह रहे है कि उन्होंने उस अजर, पुराण पुरुष को जाना है, इत्यादि। अतः भाव यह है कि बाबाजी महाराज उस अजर-अमर पुरुष को जानकर आप्तकाम हुए हैं।

श्रीश्रीबाबाजी की साधना की डायरी यहीं पर समाप्त हुई है। इस डायरी के सम्पूर्ण अंश को यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है, केवल विशेष-विशेष अंश ही उद्धृत हुआ है। इससे पाठक बाबाजी महाराज की साधना तथा तबकी मानसिक अवस्था इत्यादि के सम्बन्ध में धारणा कर सकेंगे तथा साधकगण भी अपनी साधना के पथ पर इससे बहुत सहायता तथा अनुप्रेरणा पा सकते हैं, सोचकर ही इसको यहाँ पर उद्धृत किया है।

वास्तविक रूप से ब्रह्मज्ञ महापुरुषों तथा उच्चकोटि के साधकों की साधना का रहस्य कभी भी सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित नहीं किया जा सकता हैं; क्योंकि वह सम्पूर्ण ही आभ्यन्तरिक (अन्तरस्थ) वस्तु है, अन्तर की चीज है, वह बाह्य रूप से समझने की वस्तु नहीं है। वह हमेशा ही साधारण-बुद्धि से अगम्य है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः !!!

द्वितीय खण्ड

प्रथम अध्याय

तीर्थ-भ्रमण

तीर्थेषु प्रेमदं सौम्यं भक्तानामार्त्तिनाशकम्।
व्रजविदेहिनं वन्दे महान्तं धर्मनायकम्।।

सन् १६४० ई. के अन्तिम भाग में श्रीयुत बाबाजी महाराज तीर्थ-भ्रमण के लिए निकले। इस बार समूचे दक्षिण भारत के प्रधान-प्रधान तीर्थ स्थानों के दर्शन कर लगभग तीन महीने बाद आश्रम लौटे, उनके तीर्थ-भ्रमण की संक्षिप्त कहानी, उनके अपने हाथ से लिखे पत्र में से यहाँ उद्धृत की गयी है :-

...........मेरे तीर्थ-भ्रमण के बारे में जानना चाहा है, अतः वह लिख रहा हूँ। २४ नवम्बर को श्रीवृन्दावन से रवाना होकर दिल्ली गया, वहाँ पर एक दिन रहकर वहाँ से हरिद्वार जाकर ब्रह्मकुण्ड में स्नान किया, वहाँ से नैमिषारण्य, अयोध्या होकर कलकत्ता गया, वहाँ कई दिन रहकर क्रमशः (बालेश्वर स्टेशन से ५/६ मील दूर स्थित) क्षीर-चोरा गोपीनाथ जी, भुवनेश्वर, साक्षी गोपाल, जगन्नाथ जी इत्यादि के दर्शन किये। जगन्नाथ जी से रवाना होकर क्रमशः श्रीकूर्ममूर्ति, सिमाचलम् में श्रीनरसिंह जी की मूर्ति के दर्शन किये तथा गोदावरी स्टेशन पर उतरकर कृष्णा (गंगा) में स्नान किया एवं ब्राञ्च लाइन से मंगल गिरि स्टेशन जाकर पाना नरसिंह जी के दर्शन किये। उसके बाद पुनः बेजुरादा लौटकर वहाँ से मद्रास गया, वहाँ पार्थ-सारथी इत्यादि के

दर्शन किये। वहाँ से रवाना होकर (विर्दलपुर जंक्शन से लगभग ६ मील दूर स्थित) महाबलिपुरम् के दर्शन किये। उसके बाद क्रमशः चिदम्बरम् में चिदम्बरम् नटराज, शेषशायी भगवान, कुम्भ कोणम् में नागेश्वर, चक्रपाणि, शाङ्र्गपाणि, कुम्भेश्वर, विश्वेश्वर, तंजोर में वृहदीश्वर इत्यादि के दर्शन करते हुए श्रीधाम रामेश्वर गया। वहाँ श्रीरामेश्वरजी, पार्वतीजी इत्यादि के दर्शन किए तथा श्रीचौबीस तीर्थ के जल से आचमन तथा प्रोक्षण किया। मंगला आरती तथा शयन आरती के दर्शन किए। वहाँ से क्रमशः धनुष्कोटि (रामनाथ स्टेशन पर उतरकर ६ मील दूर) दर्भशयनम्, मदुरै (मदुरै में मीनाक्षी देवी और सुन्दरनाथ देव के दर्शन) तोताद्रि, लम्बेनारायण, छोटे नारायण, कन्याकुमारी, सुचिन्द्रम्, पद्मनाभ, जनार्दन (तेल काशी जंक्शन से ८/६ मील दूर), आकाश गंगा, कोदई, कैनाल, नीलगिरी, श्रीरंगम् (यहाँ श्रीरंग जी के दर्शन), कालहस्ति, शिवकांची, विष्णुकांची, किष्किन्धा (वहाँ पम्पासरोवर, चिन्तामणि घाट, अन्जना पहाड़ पर अन्जना गुफा, स्फटिक शिला, चक्रतीर्थ, मतंग ऋषि का तपस्या स्थल, मतंग पहाड़, हमपी गाँव में विख्याक्ष महादेव और विजयनगर राजधानी का धांशा व शेष इत्यादि दर्शन और तुंगभद्रा में गंगा स्नान), पण्ढरपुर (विठ्ठल भगवान के दर्शन), नासिक, मुम्बई, सूरत (यहाँ ताप्ती नदी में स्नान), उज्जयिनी, ओंकारनाथ जी (यहाँ नर्मदा में स्नान तथा ओंकारनाथ जी के दर्शन), नाथद्वारा होकर पुष्कर गया, पुष्कर से आश्रम लौटा। मैंने तीर्थ-भ्रमण का विशेष कोई नोट नहीं लिखकर रखा है, एक के बाद एक जैसा याद आया वैसा लिखा है। अधिक वर्णन करके लिखने का अब समय नहीं है। आशा करता हूँ कि इसके द्वारा ही संक्षेप में सब कुछ जान सकोगे। अब मेरी बंगदेश की तरफ जाने की कोई बात नहीं है। मौका मिलने पर तथा शरीर स्वस्थ रहने पर बैशाख के महीने में गंगोत्री, यमुनोत्री होकर बद्रीनारायण

जाने की इच्छा है।" श्री श्रीबाबा जी महाराज के दक्षिण भाग के भ्रमण के साथ ही उनके गुरुभ्राता श्रद्धेय स्वामी श्रीमत् सुरेश्वरदासजी ने इस भ्रमण घटना के सम्बन्ध में जो संक्षिप्त विवरण किया है, वह भी यहाँ पर लिखा गया है।

"श्रद्धेय महन्त जी के साथ दक्षिणात्य भ्रमण के समय हम किस स्थान से कहाँ, कब, कैसे गये वह नोट किया था, बाद में विस्तार से लिखने का समय नहीं मिला या इच्छा नहीं जागी। श्रद्धेय महन्त जी महाराज के जीवन की घटना तथा मैंने उनको किस तरह से देखा है, वह लिखने की मेरी कोई क्षमता नहीं है, क्योंकि श्रीमद् गोस्वामी प्रभुपाद ने कहा है-"सम्प्राण न होने पर क्या संग होता है? दो व्यक्तियों का चित्त एक अवस्था में आने पर तब संग होता है। एक मकान में रहना ही संग नहीं है और विशेषकर मैं तो श्री श्रीबाबाजी महाराज का सर्वकनिष्ठ (सबसे छोटा) साधु चेला हूँ, इन लोगों के साथ प्रथम जीवन में परिचत नहीं हो सका हूँ। लेकिन दक्षिण भाग में भ्रमण के दौरान जो भी विशेषता मेरी आँखों ने देखी है, वह संक्षेप में लिखने की कोशिश कर रहा हूँ।"

पद्मपुराण इत्यादि में जिस प्रकार से मन को विशुद्ध करके तीर्थ यात्रा करने एवं तीर्थ का माहात्म्य अवगत होकर श्रद्धा के साथ तीर्थकृत सम्पादन करने की विधि है, हम वह सब जानते नहीं है एवम् उसी विधान के अनुसार पालन नहीं करते हैं, इसीलिए हम शास्त्र लिखित फलप्राप्त नहीं कर पाते हैं। मैंने ध्यान देकर देखा है कि हमारे महन्तजी अपने पूर्वार्जित सुकृत के फल से स्वभावतः ही शास्त्रोल्लिखित गुणों से अलंकृत हैं। पहली बात वह गुरु-वाक्य और शास्त्रवाक्य में श्रद्धा-सम्पन्न है, तीर्थादि कृत्य में आलसी नहीं हैं, स्वभावतः शान्त-भाव से युक्त हैं तथा सरलता से पूर्ण हैं। शास्त्र में शान्त स्वभाव-अवलम्बन पूर्वक अन्तःकरण विशुद्ध रखकर तीर्थ-दर्शन की विधि है।

एक दिन रेलगाड़ी से उतरकर किसी तीर्थ को गये। जगह का नाम ठीक से याद नहीं आ रहा है, शायद कुम्भ-कौणम होगा। उस स्थान पर काबेरी नदी पर रात ६ बजे के बाद गये। तब भी देखा महन्त जी ने अत्यन्त श्रद्धा के साथ उस नदी के पानी में विधि के अनुसार आचमन करके तीर्थकृत्य सम्पादन करने लगे, लेकिन मैं घर लौटने के लिए व्यस्त था। लेकिन महन्तजी प्रत्येक स्थान पर देव-दर्शन तथा पूजादि के लिए उस स्थान के ब्राह्मण जैसा उपदेश देते। वह अत्यन्त शान्त-भाव से समाहित चित्त से उसको पूरा करते थे, हमारी तरह धैर्यहीन तथा चंचल नहीं होते थे।

एक दिन शाम को जब हम विष्णुकान्ची में श्री श्रीबरदराज भगवान के मन्दिर गये, वहाँ श्री श्रीबरदराज की प्रतिनिधि मूर्ति लेकर पुजारी तथा सेवकगण मन्दिर की परिक्रमा के लिए निकल गये थे। हम तब श्री श्रीमहालक्ष्मी मन्दिर के दर्शनकर मूलमन्दिर में जाकर पट (द्वार) बन्द करके जगमोहन में प्रतीक्षा करते रहे। लगभग डेढ़ धण्टे बाद पुजारी तथा सेवकगण परिक्रमा करके श्री श्रीप्रतिनिधि मूर्ति के साथ लौटे। पुजारी हमारे महन्त जी को देखकर बोले-"आप क्या सहस्र नाम के द्वारा तुलसी के साथ श्री श्रीबरदराज की पूजा करायेंगे? तो उस पूजा के लिए आपको इतना देना पड़ेगा।"

महन्त जी ने तुरन्त राजी होकर वह मूल्य दे दिया, दो पुजारी जल्दी ही सहस्र तुलसीदल लाकर एक-एक तुलसीदल विष्णु नाम उच्चारण करते हुए श्री श्रीबरदराज के श्रीचरणों में अर्पण करने लगे एवं हमारे महन्तजी को अपने हाथों से चंबर (चमर) करने का आदेश दिया। मैंने ध्यान से देखा कि तनमय होकर श्री श्रीबरदराज के प्रति दृष्टि स्थिर कर उस सहस्र नाम के साथ पूजा और तुसलीदल समर्पण के समय शुरु से लेकर अन्त तक (पूजा समाप्त होने तक) एक ही रूप

से चमर करते रहे। पूजा समाप्त होने पर पूजा का आशीर्वाद माला ग्रहणकर अत्यन्त प्रसन्नचित्त से घर लौट आये।

इसके अलावा उनके साथ इस आश्रम में इकट्ठे रहते वक्त उनकी विशिष्टता के सम्बन्ध में जो कुछ गौर किया है, वह भी संक्षेप में लिख रहा हूँ। पहली बार श्री श्रीबाबा जी महाराज के देहावसान के बाद प्रयागराज के अर्द्ध-कुम्भ के मेले में उनके साथ मेरा विशेषरूप से परिचय हुआ। तभी वह निरभिमानी व सरल स्वभाव के लगे, क्योंकि उनके चाल-चलन या बातचीत में वह एक पण्डित या श्रीमहन्त होने के कारण किसी प्रकार का अभिमान है, ऐसा कुछ समझ में नहीं आया। बाद में श्रीवृन्दावन आश्रम में रहते वक्त देखा है कि वह जब भी श्री श्रीठाकुर जी के सामने हाथ जोड़कर आत्मनिवेदन करते थे या सामने साष्टांग प्रणाम करते थे, तभी उनकी आँखों में, चेहरे के भाव में तन्मयता तथा आन्तरिकता प्रस्फुटित हो जाती थी। फिर जब गुरुपूर्णिमा पर या श्री श्रीबाबा जी महाराज की जन्मतिथि पर श्री श्रीबाबाजी महाराजजी की पूजा करते थे या आरती करते थे, तब भी उनकी तन्मयता तथा भावावेश देखकर मुग्ध हुआ हूँ। श्रीमत् शालग्राम दास जी के निकट सुना है कि एक बार शिवपुर में गुरुपूर्णिमा के उत्सव में इन महन्त जी की पूजा से प्रसन्न होकर श्री श्रीबाबा जी महाराज ने स्वयं कहा था-"तुम्हारा खैया पार लग गया।" यहाँ तक की साधारण कार्य में जैसे चिट्ठी-पत्री लिखना इत्यादि उसमें भी देखा है कि वह जब भी जो भी काम करते थे (पूजा करना हो या एक चिट्ठी लिखना हो आदि) वह उसे अत्यन्त दिल लगाकर पूरा करते थे। उनकी लिखाई घनी होने पर भी सुस्पष्ट, पढ़ने योग्य तथा साफ-सुथरी थी। गलती या कोई अक्षर इत्यादि नहीं छूटता था और दाक्षिणात्य भ्रमण के दौरान बहुबार गौर किया है कि दिन के समय जब भी वह जिस स्थान पर

स्नान करने के बाद भजन में बैठते थे-तब भजन में बैठते ही तन्मय हो जाते थे। व्यग्रचित्त होकर वह कभी जप नहीं करते थे।" दाक्षिणात्य-भ्रमण समाप्त कर फिर तीन महीने बाद बाबाजी महाराजजी ने उत्तराखण्ड की ओर यात्रा की। उत्तराखण्ड से उन्होंने जो पत्र लिखा था, वह निम्नलिखित है-

ॐ हरिः

रामबाड़ा

८.६.८१

परमप्रीति भाजन !

प्रिय बाबू, उत्तराखण्ड भ्रमण के समय पत्र देने के लिए आपने लिखा है, लेकिन इतने दिन कोई भी अवसर नहीं मिला। गंगोत्री, यमुनोत्री के रास्ते में डाकघर सुविधानुसार नहीं मिला। आज प्रसाद पाने के बाद शाम को ३ मील ऊपर केदारनाथ जाने की इच्छा है। वहाँ डाकघर होने से थोड़ा समय पाकर पत्र लिखकर रख रहा हूँ। सोचा है, वहाँ पहुँचकर चिट्ठी डाक में डाल दूँगा। श्री गुरुदेव और श्रीभगवान की कृपा से यमुनोत्री, गंगोत्री, गोमुखी, मूड़ाकेदार, त्रियुगीनारायण इत्यादि तीर्थ होकर आज पूर्वाह्न ११ बजे यहाँ आकर पहुँचा हूँ, गंगोत्री, यमुनोत्री का रास्ता बहुत ही कठिन है।

कलकत्ता के गंगा किनारे जो गंगोत्री-गोमुखी-स्थान श्रीगुरुदेव के दृष्टिपथ पर पड़कर हरपार्वती ने दर्शन दिया था तथा वहाँ देव ने मन्त्र दिया था, वह गोमुखी १८ मील दूर है। गंगोत्री से गोमुखी जाने का रास्ता दुर्गम है, वहाँ कभी ही कोई जा सकता है। वह स्थान भी जाकर दर्शन किया है। वहाँ बर्फ के पहाड़ के भीतर से गंगाजी खूब तेज के साथ बाहर निकल रही हैं। उसी स्थान पर गंगाजी प्रथम प्रकट हुई हैं। दर्शन तथा स्नान करके इतना आनन्द मिला कि वह भाषा में

वर्णन नहीं किया जा सकता है। गोमुखी के भी ऊपर, जहाँ जाने का कोई भी रास्ता नहीं है तथा हिम्मत करके जो गोमुखी जाते हैं, उनमें से कोई भी व्यक्ति उस जगह जाने का साहस नहीं करता है; उस गोमुखी से और ४ मील ऊपर भी मैं चढ़ा था। गोमुखी के ऊपर के उस स्थान को दर्शन करके लगा कि यह स्थान हरपार्वती, देव-देवी, सिद्ध-गन्धर्व-चारण इत्यादि का निवास स्थान है। वहाँ पर दो सरोवर दिखाई दिये। एक का पानी नीला तथा दूसरे का पानी गंगाजल की तरह सफेद था। चारों तरफ उन्नत मस्तक बर्फ से ढके हुए पर्वत विराजमान हैं। वह स्थान भी वास्तव में कैलाश, स्वर्ग इत्यादि है, ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास हुआ है। वहाँ जाकर मेरा कैसा भाव हुआ था, उसका भाषा में वर्णन नहीं कर सकता। मुझे नहीं लगता कि पृथ्वी पर कोई और इस प्रकार का स्थान है।

और ८-९ दिन में बद्रीनारायण पहुँच पाऊँगा, आशा करता हूँ। बद्रीनारायण से श्रीवृन्दावन आश्रम लौटने में १६-१७ दिन लग सकते हैं।

भरोसा करता हूँ कि भगवद्कृपा से वहाँ पर आप सभी कुशलता पूर्वक हैं। वहाँ के हमारे गुरुभाई, बहन सभी को तथा श्रीमान् इत्यादि को मेरा कुशल समाचार देना। संग में और भी ६ साधु हैं। सभी अच्छे हैं। अत्र मंगलम्

आपका शुभाकांक्षी

श्रीधनञ्जय दास

उत्तराखण्ड तीर्थ-भ्रमण में श्रीयुत् बाबाजी महाराज के साथ और छः साधु संगी हुए थे। उनमें से किसी-किसी ने कहा कि वे बहुत मुश्किलो के साथ गोमुखी तक जा सके थे। उससे ऊपर जाने में समर्थ नहीं हुए थे। श्रीयुत् बाबाजी महाराज गौमुखी-वासी किसी साधु कों

पथ-प्रदर्शक के रूप में साथ लेकर रास्ता-घाट-विहीन वर्फ से दबे हुए खतरनाक रास्ते पर और चार मील ऊपर चढ़े थे। वह जिस स्थान पर गये थे, उस स्थान पर हवा बहुत कम थी। स्वास-प्रस्वास की क्रिया बंद हो जाती थी, साधारण मनुष्य के लिए जीवित अवस्था में वही पहुँचना बहुत ही कठिन है।

सन् १९५१ ई. के जुलाई के महीने में वृन्दावन से कलकत्ता आने के रास्ते पर श्रीयुत् बाबाजी महाराज हजारी बाग गये थे। उस समय १४/७/५१ तारीख को हजारी बाग के वकील श्रीयुत् सुरेन्द्र नाथ राय के घर पर कुछ लोगों ने उनके उत्तराखण्ड भ्रमण का वृतान्त सुनना चाहा। उस पर उन्होंने (मौनी अवस्था) में अपनी कॉपी में भ्रमण वृतान्त कुछ लिखकर उनको पढ़ने को दिया, इसमें बहुत सी नई बातें रहने के कारण उनका लिखा हुआ यहाँ उद्धृत कर दिया।

'मैं पहले यमुनोत्री उसके बाद गंगोत्री गया था। उसके बाद वहाँ से लौटते वक्त रास्ते में केदारनाथ व बद्रीनारायण गया था। गंगोत्री से गोमुखी भी गया था। गोमुखी बहुत कम लोग ही जा पाते हैं। कोई-कोई साधु जाते हैं। उस गोमुखी में ही गंगा वर्फ के पहाड़ में से निकली हैं। अत्यन्त वेग के साथ निकल रही हैं। सुबह ९.०० बजे वहाँ पहुँच कर देखा, वहाँ गंगा के पानी में वर्फ के टुकड़े तैर रहे हैं। उसमें उतरकर मैंने स्नान किया। तब शरीर सुन्न हो गया था। मेरे संगियों में से कोई-कोई गोमुखी गया था। लेकिन मैं गोमुखी से और भी ३/४ मील ऊपर चढ़ा था।'

वहाँ लोग नहीं जा सकते हैं। एकदम हिमालय का मध्य स्थान है। वहाँ उसके ऊपर और कोई पहाड़ नहीं है। असली कैलाश वही है। वह स्थान समतल है। बगल में कुण्ड की तरह पानी पड़ा है। उसका पानी बिल्कुल गंगा के पानी की तरह सफेद है। उस स्थान पर बैठे-बैठे

लगा कि यह हर पार्वती का स्थान है। देवता, सिद्धाचारण आदि उस जल में स्नान करते हैं। वहाँ की हवा इतनी हल्की है कि सांस लेने में भी तकलीफ हो रही थी, मानो दम अटक रहा हो। इतनी ठंडी हवा थी कि उसमें हाथ पैर तथा सारा शरीर सुन्न पड़ा जा रहा था। फिर हिम्मत करके वहाँ मैं आधे घण्टे से ऊपर था। कुछ दूर ऊपर जब मैं चढ़ा था, तब जिस वर्फ के पहाड़ के भीतर से गंगा बाहर निकल रही हैं, वह पहाड़ बहुत दूर तक चला गया है दिखाई पड़ा तथा उस पहाड़ के ऊपर एक कुण्ड था जिसका पानी दूर से नीला दिख रहा था, उसके बाद में भी दो तीन पहाड़ पार कर वह समतल स्थान मिला था। मेरे साथ गंगोत्री के पास के (गंगादासजी नामक) एक साधु भी गये थे। उन्होंने भी मुझसे कहा-"ऊपर अगर आप जायें तो मैं आपके साथ जाऊँगा। वहाँ बहुतों ने जाने की कोशिश की है लेकिन कोई जा नहीं सका। अँग्रेजों ने भी एक बार तम्बू इत्यादि लेकर जाने की कोशिश की थी, लेकिन जा नही सके। बीच में ही वर्फ में डूब कर मर गये। इसलिए अगर ऊपर जाना है तो जिन्दगी की आशा छोड़कर जाना पड़ेगा।" मैंने कहा-उसमें मुझे कोई आपत्ति नही है। आप संग चल सकें तो चलें। तब मैं और वह ऊपर चढ़ने लगे। बाकी सब लौट गये। हमने करीब १२.०० बजे चढ़ना शुरु किया। ३-३.३० बजे उस समतल जगह पर पहुँच गये तथा चार बजे के बाद नीचे उतरना शुरू किया। गंगोत्री से बारह मील दूर एक धर्मशाला लकड़ी की बनी हुई है। उस धर्मशाला से गोमुखी छः मील दूर है। उतरते वक्त बिल्कुल धर्मशाला के निकट जाकर उतरे। तब शाम हो गई थी। उस समतल स्थान के एक ओर बद्रीनारायण पहाड़ का शिखा, एक तरफ केदारनाथ पहाड़ का शिखा तथा एक तरफ कैलाश पहाड़ (जिस कैलाश पर्वत के पास मानसरोवर के दर्शन करने बहुत से लोग जाते हैं) का शिखा था।

बद्रीनारायण तथा केदारनाथ पहाड़ के शिखा बहुत पास थे। कैलाश पहाड़ की चोटी करीब एक मील दूर थी, लेकिन सीधे नही उतरा जा सकता है, इसलिए केदारनाथ तथा बद्रीनारायण इतना रास्ता चलकर घूम-घूम जाना पड़ता है। पहले एक पहाड़ पार कर वहाँ से गंगा का वर्फ का पहाड़ देखा। वहाँ गंगा का पहाड़ बहुत नीचे पड़ गया था तथा एक नदी का पानी यदि वर्फ बन जाये और वह अगर ऊँचा हो तो जैसा दिखाई देता है, उसी तरह गंगा का बर्फ पहाड़ एक नदी की तरह चौड़ी दीवार मानो बहुत दूर तक चली गई है, दिखाई पड़ रहा था। वहाँ का दृश्य इतना सुन्दर है कि वर्णन नहीं किया जा सकता।

मेरी तो उस समतल स्थान से और लौटने की इच्छा नहीं हो रही थी। उस जगह अगर मृत्यु हो जाये तो भी अच्छा महसूस हो रहा था। मैंने तो अपने साथियों (शिष्य, गुरुभाई इत्यादि जो गोमुखी साथ गये थे, उन सभी) से कह ही दिया था–"अगर मैं लौटकर आऊँ तो कोई बात नहीं है; लेकिन अगर नहीं लौटूँ तो समझ लेना और नहीं लौटूँगा, वहीं पर मृत्यु हो गयी। लेकिन संग के उस साधु के लिए लौटने को मजबूर होना पड़ा। वह साधु बेचैन हो पड़े थे।"

श्रीश्रीबाबाजी महाराज की इस उक्ति से उनके मन का तीव्र वैराग्य, अपने शरीर के प्रति भी आसक्ति हीनता, मृत्यु के प्रति निर्भीकता, तीर्थ के प्रति अनुराग आदि उच्चकोटि के साधकोचित् सद्गुण ही व्यक्त हुए हैं।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज सैकड़ों प्रकार के शारीरिक कष्ट तथा मानसिक दुःखों की भी परवाह न करके अचल, अटल भाव से श्री गुरु के आदेश का पालन करते थे।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज के श्री गुरुदेव ने उनको श्री निम्बार्क वेदान्त तथा श्रीश्रीरामदास काठिया बाबा के नाम का प्रचार तथा शास्त्र

का प्रचार करने का निर्देश दिया था तथा उसी उद्देश्य से उनको शास्त्र का अध्ययन भी कराया था। इसीलिए परवर्ती काल में देखा जाता है कि उन्होंने अपने वृद्ध शरीर में गिरे हुए स्वास्थ्य को लेकर भी उस गुरु-निर्देशिका का पालन करने के लिए कठोर परिश्रम कर विविध शास्त्र-ग्रन्थ तथा आचार्यों की जीवनी की रचना तथा प्रचार किया है तथा निम्बार्क-दर्शन-समिति तथा श्री रामदास काठिया बाबा संस्कृत महाविद्यालय की प्रतिष्ठा की है। श्रीवृन्दावन, सुखचर तथा काशी धाम में आश्रम की प्रतिष्ठा कर श्री काठिया बाबा के नाम पर ही उन सभी आश्रमों का नामकरण किया है। फिर दिखाई पड़ता है कि उनके श्री गुरुदेव ने उनको श्रीवृन्दावन में निम्बार्क-आश्रम का महन्त बनाकर वहाँ के श्री श्री ठाकुरजी के सेवायत के रूप में उनकी तथा साधुओं की सेवा के कार्य में नियुक्त किया था। महन्त के रूप में वह सेवा कार्य भी प्राणों की बाजी लगाकर विविध प्रतिकूलता का सामना करके भी कर गये हैं। बाद में जब उस आश्रम के श्री श्री ठाकुर विग्रह स्वयं अग्नि काण्ड को उपलक्ष्य कर अन्तर्धान हो गये, केवल तभी वह उस आश्रम को छोड़कर चले आये। ये सभी कार्य वह गुरु-आदेश-पालन ज्ञान से ही कर गये हैं। वास्तविक रूप में श्री श्री बाबजी महाराज का सारा जीवन ही श्री गुरु तथा इष्ट के चरणों में तथा उनके आदेश पालन में निवेदित तथा सभी प्रकार से ही समर्पित था, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

देशान्तरों में आश्रम तथा विभिन्न संस्थाओं का निर्माण

योो ज्ञाने परमार्थचिन्तनघने मन्योत्कटे साधने,
सिद्धः शुद्धविचित्रचारुचरितो यो ब्रह्मचर्ये स्थितः।
संङ्कल्पात् परिकल्पिता बहुमठा येन प्रतिष्ठापिता,
राधा-माधवविग्रहग्रहयुताः सौन्दर्यपूतास्तथा।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

श्रीश्रीसन्तदास काठियाबाबाजी महाराज ने हमारे बाबाजी महाराज को कहा था कि-"तुम हमारे बाबाजी महाराज (श्रीश्रीरामदास काठियाबाबाजी) के दिव्य नामामृत का प्रचार करना।" अतएव श्रीयुत बाबाजीमहाराज जी ने अपने अन्तिम जीवनकाल तक श्रीगुरुजी की आज्ञा का पालन किया है। उन्होंने श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के अनुपम व विलक्षण सिद्धान्त तथा योगीराज स्वामी रामदास काठिया बाबाजी की वाणी एवं गुणों के प्रचारार्थ देश-विदेशो में कई आश्रम व संस्थाओं का निर्माण करवाया।

पुराना निम्बार्क-आश्रम-त्यागकर श्रीयुत बाबाजी महाराज साधुवृन्द सहित साधनार्थ उत्तराखण्ड गये थे। तदनन्तर कुछ भक्त महानुभावों के प्रार्थनानुसार आश्रमादि निर्माणार्थ विचार किया। फलस्वरूप श्रीधाम वृन्दावन में जमीन खरीद कर एक विशाल भव्य आश्रम का निर्माण करवाया। वह आश्रम **"श्रीकाठिया बाबा का स्थान"** नाम से प्रसिद्ध है। श्रीमद्भागवत-सप्ताह, सनतन धर्म-सम्मेलन व अखण्ड

श्रीयुगल महानाम-संकीर्तन महायज्ञ, आदि आध्यात्मिक एव सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से (ईस्वी १९५८) २८ मई गंगा दशहरा को श्री युगल विग्रह की प्रतिष्ठा हुई। विग्रह का नाम रखा गया-श्री श्री वृन्दावन-विहारीजी। यह युगलविग्रह (भगवान्) बहुत ही अलौकिक घटनाओं के माध्यम से श्रीकाठियाबाबा का स्थान, गुरुकुल मार्ग मे लाये गये थे। मूर्ति-प्रतिष्ठा के पूर्व श्रीयुगलविग्रह सहित सन्त, महन्त एवं आचार्यों का जुलूस निकाला गया था। इस विशाल शोभायात्रा में जगद्गुरु निम्बार्काचार्य, जगद्गुरु शंकराचार्य एवं श्रीमहन्त, महामण्डलेश्वर समुपस्थित थे। तदुपरान्त विशाल झड़ाभण्डारा के साथ महामहोत्सव सम्पन्न हुआ था।

सन् ६.२.७२ में श्रीयुत बाबाजी महाराज श्रीधाम वृन्दावन के कुम्भहेतु बैण्डबाजा तथा शोभायात्रा-सहित श्रीयमुनाजी के परम पुनीत तट पर पहुँचे। कुंभ में चतुःसम्प्रदाय-खालसा का झण्डा-स्थापन एवं अनुपम साधु-सन्त समाराधन की व्यवस्था थी। वृन्दावनकुंभ में ब्रजविदेही महन्त का विशेष महत्त्व रहता है। वह ही वृन्दावनकुंभ का शुभारम्भ करते हैं, यही प्राचीन परम्परा है।

खैर जो भी हो, वृन्दावन-कुंभ के वाद सन् १९६२, १२ मार्च को श्री श्री बाबाजी महाराज ने सोच-विचारकर अपने ही सुयोग्य विरक्त शिष्य श्रीमान् जानकीदासजी-वेदान्त-वेदान्ततीर्थ को **"श्रीकाठिया बाबा का स्थान"** के महन्त (सेवायत) तथा ब्रजविदेही महन्ताई चादर प्रदान किया।

उसके बाद श्री श्री बाबाजी महाराज, अपनी शुभ जन्मभूमि भड़ागाँव पधारे थे। वहीं पर उन्होंने स्वीय सम्प्रदाय-सिद्धान्त के प्रचारार्थ श्री श्री काठियाबाबा आश्रम का निर्माण करवाया तथा आश्रम में राधाकृष्ण युगल-विग्रह की प्रतिष्ठा धूमधाम से की थी।

भड़ा-जन्मस्थान में कुछ दिन विश्राम लेकर श्रीश्रीबाबाजी महाराज जी चिकित्सा-हेतु कलकत्ता पधारे थे। वहाँ पर किसी बातचीत के दौरान कुछ भक्तों ने कलकत्ता नगरी में स्वसम्प्रदाय प्रचारार्थ श्रीकाठियाबाबा का आश्रम बनवाने के लिए महाराज जी से प्रार्थना की। उन लोगों के प्रार्थनानुसार श्री श्री बाबाजी महाराज ने सन् १९६३, २९ दिसम्बर को २४ परगना में (सुखचर) गंगाजी के पवित्र तट पर अवस्थित एक मकान-सहित जमीन खरीद ली। उत्तरकाल में उसी को मरम्मत करके तथा विशेष अंश तोड़कर विशाल भव्य आश्रम का निर्माण करवाया। आश्रम का नाम रखा–**"काठिया बाबा का आश्रम"**। सन् १९६९, ३० अप्रैल को उन्होंने सुखचर-आश्रम में श्रीराधावृन्दावन बिहारी जी सहित श्रीगोपालजी, शालग्रामजी, श्रीहनुमान् व श्रीगरुड़जी की प्रतिष्ठा की। प्रतिष्ठा के अवसर पर श्रीविष्णुयज्ञ (१०८ ब्राह्मणों द्वारा) तथा विविध शास्त्रीय अनुष्ठान अनुष्ठित हुए थे। बड़े-बड़े संगीतकार तथा सन्त, महन्त, महामण्डलेश्वर एवं आचार्य महानुभाव, वाराणसी, हरिद्वार एवं श्रीधाम वृन्दावन से पधारे थे। सब की समुपस्थिति में प्रतिष्ठा महामहोत्सव की शोभा चौगुनी हुई थी। श्रीगंगाजी के तटवर्ती सुखचर में काठियाबाबा का आश्रम दिव्य-रमणीय स्थली है। यह श्री श्री बाबाजी महाराज की तपोभूमि भी है। श्रीगंगाजी के सुरम्य पुनीत तट पर अवस्थित सुखचर के काठियाबाबा आश्रम में बाबाजी महाराज का भव्य समाधि-मन्दिर विराजित है। सुखचर काठियाबाबा आश्रम की प्रशंसा करते हुए किसी भक्त कवि ने विलक्षण कहा है–

"गंगावक्षसि निर्मले सुखचरे संस्थाप्य रम्याश्रमं,
द्वैताद्वैतपरं जनानुपदिशन् वेदान्ततत्त्वं स्वयम्।
संतृप्तश्च समर्प्य शिष्यनिवहे तत्कार्यभारं महत्,
मुक्तिक्षेत्रमणौ तपस्यति महान् शान्त्यै च भूत्यै भुवः।।"

(धनञ्जयदास चरितम्)

अगरतला के श्रद्धालु भक्तजनों की विशेष प्रार्थना पर श्रीयुत् बाबाजी महाराज अगरतला पहुँचे। अगरतलावासी परम भक्तजन, उनको हार्दिक स्वागत किये। भक्तजनों में बड़ी उमंग तथा उत्साह देखकर बाबाजी महाराज ने आगरतला में आश्रम बनाने का निश्चय किया। आश्रम बनाने का विचार बनते ही अगरतलावासी श्रीयशोदा वणिक ने श्रीकाठियाबाबा आश्रम के लिए बाबाजी महाराज को एक विशालाकार सुरमणीय तपोभूमि-सदृश जमीन का दान किया। श्रीश्रीबाबाजी महाराज ने इसे श्री श्री ठाकुरजी की ही इच्छा समझ कर अपने प्रवचन में कहा कि "अभी आगरतला में जंगल में मंगल होगा। वस्तुतः श्रीनिम्बार्कीय पथ ही परम शान्तिमार्ग का पथ-प्रदर्शक व उज्जवल प्रदीप है। इसका प्रचार-प्रसार होना परम आवश्यक है।" कुछ दिनों बाद सन् १९७९, ९ जुलाई श्रीगुरुपूर्णिमा के दिव्य अवसर पर श्री श्री बाबाजी ने अगरतला में मन्दिर की प्रतिष्ठा कर उसमें श्रीयुगलविग्रह तथा हनुमानजी, गरुड़जी की मूर्ति की स्थापना की। बहुत ही सजावट तथा विधि-विधान के साथ प्रतिष्ठा-महामहोत्सव कार्य सम्पन्न हुआ था। इस समय वहाँ पर विशेष कार्यकर्त्ता के रूप में श्रीयुत सदानन्ददासजी विराजमान हैं। अगरतला आश्रम में श्रीयुगलविग्रह की प्रतिष्ठा एवं श्रीगुरु-पूर्णिमा-महोत्सव धूमधाम से सम्पन्न होने के बाद श्रीश्री बाबाजी महाराज साधुवृन्द-सहित काठियाबाबा आश्रम सुखचर में वापस गये। सुखचर-आश्रम में थोड़े ही दिन विश्राम के उपरान्त वे श्री काठियाबाबा का स्थान, श्री धाम वृन्दावन में पहुँचे।

श्रीधाम में श्री बाबाजी की समुपस्थिति में श्रीमत्स्वामी सन्तदासजी बाबाजी महाराज का तिरोधान महामहोत्सव, विविध आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के साथ मनाया गया। उसके अनन्तर महाराज जी ने अपने शिष्यद्वय श्रीजगदीश त्रेहान एवं श्री वेदप्रकाश 'दुया' के

प्रार्थनानुसार दिल्ली गये। वहाँ पर बाबाजी अपने शिष्य जगदीश त्रेहान के घर पर कुछ दिन ठहरे। श्री जगदीश बाबू ने बाबाजी महाराज का भव्य स्वागत किया। तत्पश्चात् महाराज जी अपने शिष्य श्रीरामनाथ शर्मा जी की प्रार्थना पर पंजाब गये।

वहाँ पर वे श्री काठियाबाबा रामदासजी के जन्मस्थान का कुछ अंश एवं रमणीय तीर्थस्थानों को दर्शन करके बहुत आह्लादित हुए थे। पंजाब में बाबाजी ने निम्बार्क दर्शन एव श्रीकाठियाबाबा रामदासजी की अमृत वाणी का व्यापक प्रचार किये। उनके दिव्य प्रवचनो को सुनकर पंजाबवासी भक्तगण विशेष प्रभावित हुए तथा कई महानुभाव दीक्षा मन्त्र द्वारा दीक्षित हुए। पंजाब में भी बाबाजी ने आश्रम बनाने का विचार-विमर्श किया था।

इस तरह श्रीनिम्बार्क दर्शन तथा श्रीकाठियाबाबाजी के (श्रीरामदासजी) जीवनदर्शन तथा आदर्शजीवन के सम्यक् प्रचारार्थ श्रीयुत् बाबाजी महाराज ने भारतवर्ष में (वृन्दावन, काशी, हरिद्वार, कलकत्ता, दिल्ली, मुंबई, आसाम, शिलांग, आगरतला, शिलचर, प्रभृति) तथा विदेशों में भी कई आश्रम तथा धर्मसंस्थाओं का निर्माण करवाये।

काशी (वाराणसी) में भी बाबाजी महाराज द्वारा निर्मित भव्य आश्रम तथा संस्कृत महाविद्यालय है। सन् १९७१, २८ अप्रैल को वाराणसी में संस्कृत महाविद्यालय तथा आश्रम की स्थापना हुई थी। इस पुनीत अवसर पर विशाल धर्मसभा का आयोजन रहा। सभी पण्डित तथा धर्माचार्यों ने श्रीनिम्बार्क वेदान्त, संस्कृत महाविद्यालय तथा बाबाजी महाराज की अनुपम कीर्ति की भूरि भूरि प्रशंसा की। काशी की किसी महापण्डित ने अपने प्रवचन मे बहुत कुछ कहने के उपरान्त कहा कि–श्री श्री बाबाजी महाराज जैसे महापुरुष इस अवनीतल पर बहुत थोड़े ही अवतरित हुए हैं। जिन्होंने समग्र भारत तथा विदेशों में भी

निम्बार्कीय सिद्धान्त विजय वैजयन्ती का सम्यक् आरोपण किया। फिर उन्होंने कहा–

"काश्यां शिवालयपदे विमले महान्तं,
विद्यालयं सपदि कारितवान् स्वशिष्यैः।
छात्राश्च तत्र हि पठन्त्यखिलं स्वशास्त्रं,
सोऽयं धनञ्जयगुरोर्महिम्नैव नूनम्।।"

(धनञ्जयदास चरितम्)

श्रीश्रीबाबाजी महाराज ने विविध आश्रम तथा सत्संस्थाओं का निर्माण करके अपनी जीवद्दशा में ही अपने सुयोग्य शिष्यों पर आश्रम सचालन कार्य सौंप करके सदा सर्वदा श्रीभगवच्चरण कमल के ध्यान में अधिकतर समय व्यतीत करते थे। परम रमणीय-स्थल सुखचर काठियाबाबा आश्रम में हमारे सबसे बड़े साधु गुरुभाई श्रीयुत् श्यामसुन्दरजी को महन्त (सेवाइंत) बनाया। उनके सहसा गोलोकवास हो जाने से श्रीयुत राधाविहारी दासजी को श्री श्री बाबाजी महाराज महन्ताई चद्दर प्रदान किया। श्रीयुत राधाविहारीदासजी मिलनसार, प्रेमी तथा अतीव सरल स्वभाव के त्यागी सन्त थे। उन्होंने कई वर्ष तक महन्ताई का उत्तरदायित्व सुचारु रूप से निभाया, जो सर्वथा प्रशंसनीय रहा। महन्त राधाबिहारी दासजी के परमधामवास के उपरान्त सन्त समाज तथा कमेटी ने डॉ० श्रीयुत् वृन्दावन बिहारी दासजी को महन्ताई चद्दर प्रदान कर सुखचर श्रीकाठियाबाबा आश्रम की गद्दी पर बैठाया। श्रीयुत वृन्दावन बिहारीदासजी विद्वान् मिलनसार तथा व्यवहार कुशल सन्त है। उन्होंने अल्प महन्ताई काल में ही निम्बार्क सम्प्रदाय तथा गुरुपरम्परागत सन्त, महापुरुषों के दिव्य जीवनदर्शन तथा साहित्य के प्रभूत प्रचार प्रसार किये।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज अपने सुयोग्य शिष्य श्रीयुत राधाकृष्ण दास को शिलचर आश्रम का संचालक बनाये थे। श्रीयुत राधाकृष्णदासजी श्री

बाबाजी महाराज के एक निष्ठ सेवक थे। प्रायः सम्पूर्ण जीवन उन्होंने महाराज जी की ही सेवा में व्यतीत किया। ऐसे सेवक विरल ही मिलते हैं।

श्रीयुत बाबाजी महाराज ने अगरतला-आश्रम की महन्ताई-चद्दर अपनी जीवद्दशा में श्रीमान् अयोध्यादास जी को प्रदान किया था; लेकिन वे संयमाभाव के कारण उस गद्दी की रक्षा नहीं कर सके। एतदतिरिक्त श्री श्री बाबाजी महाराज के सुयोग्य विरक्तशिष्यों में श्रीमत्स्वामी जगन्नाथदासजी, श्रीमत्स्वामी सरयुदासजी, श्रीमत्स्वामी अन्नपूर्णादास जी, श्रीमत्स्वामी शुकदेवदासजी तथा श्रीमत्स्वामी संकर्षणदासजी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अपने जीवनकाल में ही महाराजश्री ने उपर्युक्त विरक्त शिष्यों पर आश्रम का कार्यभार योग्यतानुसार सौपा था। श्रीयुत जगन्नाथदासजी बहुत ही कर्मठ तथा त्यागी सन्त हैं। वे कुंभ का उत्तरदायित्व तथा "वृन्दावन काठियाबाबा का स्थान" के सकल कार्य सुचारुरूप से संभाल रहे हैं। श्रीयुत सरयुदासजी वृन्दावनस्थ **काठिया बाबा का स्थान** के श्रीयुगलविग्रह की सेवापूजा में दीर्घकाल से एकनिष्ठतापूर्वक लीन हैं, जो सर्वथा सराहनीय है। अभी कुछ ही वर्ष व्यतीत हुआ श्री सरयूदासजी ने कुंभ में श्रीमहन्ताई ली तथा गुरुदेव जी के जीवनचरित तथा साहित्य के प्रसारार्थ भारत की राजधानी दिल्ली में भव्य आश्रम बनवाया। जिसमें प्रतिदिन पचासों की संख्या में सन्त-सेवा होती है। श्रीयुत अन्नपूर्णादासजी तथा श्रीमहन्तशुकदेव दासजी श्री निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्रचारार्थ देश-विदेश में भ्रमणरत हैं तथा विभिन्न संस्थाओं की सेवा में उनका जीवन समर्पित है। आश्रमों के परम हितैषी गोलोकवासी संकर्षणदास जी ने स्वसम्प्रदाय तथा गुरुदेव की अनुपम सेवा की थी, जो किसी को अविदित नहीं है। श्रीधाम वृन्दावन आश्रम में उनकी सेवा के स्वरूप का वर्णन किस लेखनी से जाए? वह स्वान्तर्वेद्य विषय है। ●

विभिन्न संस्थाओं में भाषण

निम्बार्कदेशिकवरेण समर्थितां तां,
स्वाभाविकीं निखिलशास्त्रसमन्वितां च।
भिन्नात्मिकां तदपि चारुतमामभिन्नां-
सिद्धान्तसारसरणिं व्यतनोन्महात्मा।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

श्री श्री बाबाजी महाराज ने देश-विदेशों में सम्प्रदाय के **प्रचारार्थ अनेक संस्थाओं का निर्माण करवाया। जन कल्याणार्थ उन्होंने** कई जगह भाषण दिये, जो संक्षिप्त रूप में निम्नलिखित हैं-

● शिलाँग सनातन-धर्मसभा में सभापति के रूप में उन्होंने अपने प्रवचन में कहा कि जो शिष्य गुरुदेव के अधीन होकर यानि श्रीगुरु की आज्ञा निर्विकार, निःसंकोच तथा निष्कपट रूप से पालन करता है, उसका जीवन सुखमय हो जाता है। श्रीगुरुजी के उपदेशानुसार भगवान् के अस्तित्व पर अटल रहकर बचपन से ही चंचल मन वशीभूत करने से उसके लिए संसार स्वर्ग तथा अमृतमय हो जाता है। पाठशाला से लेकर ऊपर की कक्षा तक पढ़ने के लिए जैसे शिक्षा गुरु की आवश्यकता होती है, वैसे भगवतसाधना के लिए भी गुरुजी का प्रयोजन है-**तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः**। श्री भगवान के चरणकमल तक पहुँचाने वाले श्रीगुरु ही हैं। श्री गुरु-चरणों में समर्पित जीवन ही परम मोक्ष-प्राप्त करने में समर्थ है। अतः यह ही परम मानव-धर्म है। मनुष्य-जीवन में नित्य भगवच्चिन्तन ही परम मंगलमय कार्य है। इससे ही जीव अति मानवीय स्वरूप को प्राप्त कर अमर होते

हैं–**अतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**। धर्म शब्द की विलक्षण व्याख्या यह है–"घृ" धातु से मन प्रत्यय के योग से धर्म शब्द बना है। विश्व-संसार को जो धारण कर विद्यमान है, वही धर्म है। शास्त्र ने कहा–"यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।" "अभ्युदय" का अर्थ है–जागतिक, सुखशान्ति-लाभ तथा परलोक में स्वर्ग-लाभ एवं "निःश्रेयस" शब्द का अर्थ है–परममोक्ष-लाभ। ब्रह्मविद्या की प्राप्ति से ही मोक्ष-लाभ होता है। विद्या दो प्रकार की है–परा एवं अपरा। साम, ऋक, यजुः, अथर्व, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष आदि अपरा विद्या है। जो विद्या के द्वारा परमधर्म को जाना जा सकता है, वही पराविद्या है। पराविद्या के द्वारा ही परम शान्ति मिलती है। श्री गुरुदेव के श्रीचरणों में समर्पित चित्त होकर ही पराविद्या की शिक्षा लेनी चाहिए। यही एकमात्र सहज-सरल मार्ग है तथा प्राचीनतम परम्परा है–"स गुरुमभिगच्छेत **श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठो समित्पाणिः।**"

कई लाख जन्म की तपस्या के फलस्वरूप यह मानव जन्म प्राप्त हुआ। तुलसीदासजी ने भी कहा है कि–

बड़े भाग्य से मानुष तनु पावा। सुरदुर्लभ सद् ग्रन्थन गावा।।

ऐसे मानव-जीवन को केवल विषय-भोगों में ही लिप्त रखा तो क्या फायदा हुआ? बड़ी वेदना का विषय होगा। इस मानव-जीवन की सार्थकता तो श्रीभगवत्-भजन में ही है।

श्रीभगवन्नाम नित्य-निरन्तर जप करना ही कलियुगीय श्रेष्ठ साधना है। नाम-संस्मरण से ही नामी का दर्शन होता है। जिसका नाम लेकर पुकारोगे वह अवश्य ही तुम्हारी रक्षा-हेतु प्रकट होंगे। इस तरह सहज पद्धति को जानकर भजन करते रहो, जीवन धन्य हो जावेगा। निरन्तर दिव्य-रसमय शान्ति की अनुभूति होगी। तुम लोगों का कल्याण हो, यही शुभ कामना है।

● सन् १९७३ में कलकत्ता महानगरी में स्थित रामकृष्ण-मिशन तथा श्रीसन्तदास निम्बार्क-दर्शन-समिति द्वारा समायोजित सनातन धर्मसभा में बहुत से विद्वानों के प्रवचन के उपरान्त श्रीश्रीबाबाजी महाराज ने अपने सभापतित्व के भाषण में कहा है कि अनादि-वैदिक-सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता श्रीनिम्बार्क भगवान् ने जनमंगल-हेतु अनुपम मार्ग का अनुसरण किया। निम्बार्कीय सिद्धान्त में सभी दर्शनों का समन्वय है। इसके सम्यक् अनुशीलन से सारे दर्शन तथा योगों का अभिज्ञान हो सकता है। उन्होंने कहा कि प्रेमलक्षणा भक्ति-द्वारा ही ईश्वर में अनुराग उत्पन्न होता है। वे पराभक्ति-लभ्य हैं। अतः पराभक्ति तथा मोक्ष के स्वरूप को जानकर ईश्वर के श्रीचरणों में आत्मसमर्पण कीजिए। यह मानव-जीवन धन्य हो जावेगा। मोक्ष-स्वरूप के प्रसंग में ब्रह्मसूत्र ४ अः ४ पाद में और निम्बार्क-भाष्य में वर्णित हुआ है कि ब्रह्मज्ञानी पुरुष का जब देहान्त होता है, तब वे अर्चिरादि मार्ग से गमन करके स्वीय स्वाभाविक चित्स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर ब्रह्मभावापन्न होते हैं। वे अपहृतपाप्मा (निष्पाप), जरारहित, मृत्युरहित, शोकहीन, क्षुधा-तृष्णारहित, सत्यकाम तथा सत्यसंकल्प होते हैं। वे जन्मादि विकार-शून्य होते हैं और अपने को स्वाभाविक अचिन्त्य, अनन्तगुणसागर-सर्वविभूति-सम्पन्न ब्रह्मस्वरूप ही अनुभव करते हैं। ब्रह्मानन्द-स्वरूप होने से वे भी आनन्दमय हो जाते हैं और अपने स्वरूपगत चित्त के द्वारा उस आनन्द को अविच्छिन्न-भाव से सर्वदा अनुभव करते हैं, वे स्वीय संकल्प के अनुसार शरीरधारण करके भगवद्-लीलारस-भोग कर सकते हैं, अशरीरी भी रह सकते हैं। स्वप्नकाल में भगवत्-सृष्ट शरीरादि द्वारा बद्ध जीव का जैसे भोग होता है, वैसे ही मुक्त पुरुष का स्वसृष्ट शरीरादि के अभाव में भगवद्-सृष्ट शरीरादि के द्वारा भी भोग हो सकता है। जगत्-सृष्ट्यादि व्यापार को

छोड़कर मुक्तपुरुषों की सर्वविध शक्ति प्राप्त होती है। सम्यक् जगत की सृष्ट्यादि सामर्थ्य जो एकमात्र ब्रह्म का ही है, सो "सकारणं कारणाधिपाधिपः" इस श्रुतिवाक्य तथा **"मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्"**—इस भगवद्-वाक्य में स्पष्ट रूप से उक्त हुआ है। "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता" इस श्रुतिवाक्य में मुक्त पुरुष का ब्रह्म के साथ केवलमात्र भोगविषय में ही समता रहने का उपदेश है, सामर्थ्य में समता रखने का उपदेश नहीं है।

मुक्तपुरुषों का संसार में पुनरागमन नहीं होता है। वे आनन्दमय ब्रह्म को प्राप्त होकर सदा के लिए आनन्दमय हो जाते हैं। **रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्यानन्दी भवति**—यही मोक्ष है। इस मोक्ष-स्वरूप या प्रकृत आत्मस्वरूप को जानकर इस मानव-जीवन को धन्य करें यही श्रीसर्वेश्वर प्रभु के चरणों में हमारी अभ्यर्थना है। इन शब्दों द्वारा यहीं पर हम अपनी वाणी को विराम देते हैं।

● सन् १९७५, ६ जुलाई को बाबाजी महाराज ने गुवाहटी रहते समय अपने प्रवचन में श्रीभगवत्कृपा के विलक्षण स्वरूप को समझाते हुए कहा है –

"कृपाऽस्य दैन्यादियुजि प्रजायते
यया भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा।
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः
सा चोत्तमासाधनरूपिका परा।।"

अर्थात् दीनता, निरभिमानिता, तन्मयता आदि गुणयुक्त जीव विशेषों के प्रति श्रीकृष्णचरण कमलों की जब असाधारण कृपा होती है, तब ही उन भाग्यशाली दिव्य जीवों के हृदय कमल में जो सबके ईश्वर है, जिनके कोई ईश्वर नहीं है, अर्थात् एकमात्र सर्वेश्वर हैं, उनकी प्रेमलक्षणा भक्ति प्रकट होती है। वही सर्वोत्तमा फलरूपा भक्ति है। अन्यान्य भक्ति तो उस प्रेम-भक्ति की साधनारूपा मात्र हैं।

श्रीभगवान् किसी प्रकार साधनादि कर्म के अधीन नहीं हैं। वे स्वप्रकाशस्वरूप और स्वेच्छामय हैं। वे कृपा करके जिसके निकट अपने को प्रकाश करेंगे, वही उनका दर्शन लाभ कर सकता है। अतः उनकी कृपा के लिए ही साधनादि की आवश्यकता है। कृ-पा अर्थात् करने पर मिलेगी। अतः कृपा प्राप्त होने के लिए साधना परम अपेक्षित है। किन्तु साधना स्वप्रकाश भगवान् को प्रकाश नहीं कर सकती। जीव ही साधना के फलस्वरूप भगवत्कृपा प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। परमस्वतन्त्र स्वेच्छामय स्वप्रकाश भगवान् कब कृपा करके मुझे कृतार्थ करेंगे, मेरे पास अपना स्वरूप प्रकाश करेंगे, ऐसी प्रतीक्षा और आर्त्ति के साथ उनकी कृपा और प्रसन्नता लाभ करने के लिए सदा प्रार्थना करना, केवल-मात्र यही साधकों का कर्तव्य है। शरणागति-योग और आत्मसमर्पण के साथ उनका विधान मानकर साध्यानुसार साधनादि करते हुए प्रतीक्षा करें-"तांस्तितिक्षत्व भारत।" यही भगवद्दर्शन और मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग है। इसलिए ब्रह्माजी ने भगवान् की स्तुति करते हुए कहा है-

"तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षणमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्।।"

हे भगवान् ! कब आपकी कृपा होगी, इस प्रकार उनकी कृपा के लिए प्रतीक्षा करके जो काय-मन-वाक्य से श्रीभगवान् को नमस्कार करके अपने कृत कर्मों के फल को अनासक्तभाव से भोग करते हुए जीवन धारण करते हैं, वे ही मुक्तिपद के अधिकारी होते हैं। अतः साध्यानुसार श्रीगुरुजी के बताए हुए मार्ग में साधन करने से अवश्य ही आप लोग भगवत्कृपा को प्राप्तकर कृतकृत्य होंगे। इन शब्दों द्वारा यहीं पर हम अपने प्रवचन को विराम देते हैं।

'श्रीकाठियाबाबा का स्थान' के महन्त पद का संप्रदान

तच्छिष्या वहवो विभान्ति भुवने दीक्षैकशिक्षान्विता,
तेष्वेवायमहो महोविलसितो वृन्दावनेऽस्मिन् मुदा।
श्रीमद्रासबिहारिनामक बुधश्रेष्ठो विभात्यादृतः,
श्रीमान् सम्प्रति काठियाभिघमहापारम्परीपूजितः।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

श्रीश्रीबाबाजी महाराज वृद्धावस्था के कारण प्रायः अस्वस्थ रहते थे। इसलिए विविध आश्रमों के उत्तरदायित्व योग्य शिष्यों पर ही अर्पित करना चाहते थे। कुंभ में जाकर साधु-सन्त-सेवा आदि का उत्तरदायित्व निभाना उनके लिए असम्भव था। इधर हमारे गुरुभाई श्रीयुत जानकीदास जी किसी अनिवार्य कारण से सन् १९७४ मार्च महीने को श्रीधाम वृन्दावन स्थित श्रीकाठिया बाबा का स्थान त्यागकर जाने से स्वतः ही श्री श्री बाबाजी महाराज जी के ऊपर पुनः वृन्दावन आश्रम संचालन का उत्तरदायित्व आ पड़ा। इसलिए श्रीमहाराज जी सर्वदा चिन्तित रहते थे।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज अपने प्रिय गृहस्थ गुरुभाई श्रीयुत रामदास बंद्योपाध्याय जी से परिचित थे। श्रीरामदास बंद्योपाध्याय जी, श्री श्री बाबाजी महाराज को श्रीगुरु जी जैसी श्रद्धा करते। दोनों ही एक साथ दौलतपुर (वंगप्रदेश) में पढ़ते थे बचपन में। श्रीश्रीबाबाजी महाराज ने रामदास बंद्योपाध्याय जी से उनके सर्वकनिष्ठ पुत्र को अपने संरक्षण में रख संस्कृत पढ़ाने की इच्छा प्रकट की। गुरुभाई रामदास

जी ने उनसे सहमत होकर, अपने (कनिष्ठ) पुत्र श्री रमाप्रसाद बंद्योपाध्याय को संस्कृत पठन-हेतु काशी भेज दिया। श्री श्रीबाबाजी महाराज ने बालक रमाप्रसाद को काशी आश्रम में रख व्याकरण, न्याय तथा वेदान्तशास्त्र का अध्ययन करवाया। ब्राह्मण-बालक को अपनी गद्दी पर बैठाने की इच्छा बाबाजी की पहले से ही थी। इधर जन्म-जन्मान्तर के संस्कारवश बालक रमाप्रसाद ने बाबाजी से संन्यास दीक्षा लेने की आज्ञा के लिए प्रार्थना की। बाबाजी महाराज उन्हें संन्यास दीक्षा देकर नाम रखा "श्रीरासबिहारी दास।"

सन् १६८१ के प्रारम्भ में ही बाबाजी बहुत ही अस्वस्थ हो गये। कई बीमारियों ने उन्हें पकड़ लिया। विशेष शारीरिक अस्वस्थता के कारण उन्होंने श्रीधाम वृन्दावन के समस्त महन्त तथा ब्रजमण्डल के मुख्य-मुख्य महन्तों को आमन्त्रित कर सबके समक्ष श्रीरासबिहारीदासजी को महन्ताई-चद्दर प्रदान की तथा राजतिलक से सुशोभित किया। तदुपरान्त वृन्दावन के सभी महन्त तथा ब्रजमण्डल के अनेकानेक महन्त-श्रीमहन्त महन्ताई-चद्दर प्रदान कर स्वामी रासबिहारी दास को श्रीकाठियाबाबा का स्थान का महन्त तथा ब्रजविदेही महन्त घोषित किया। उसके बाद आमन्त्रित सभी महन्तों का स्वागत व सन्त समाराधनोपरान्त महोत्सव सम्पन्न हुआ।

प्रयागकुम्भ में श्री श्रीबाबाजी महाराज एवं श्रीमहन्ताई का संप्रदान

अज्ञाननाशाय कृपावतीर्णं, दीक्षाप्रदानाय च मानवानाम्।
आनन्दकन्दं हतपापजातं, श्रीमद्गुरुंनित्यमहं भजामि।।
यस्यास्ति योग्यमतिमान् बहुशास्त्रवेत्ता,
शिष्यो महाननुगरासविहारिदासः।
यस्य प्रभावममितो नतमस्तकास्ते,
सर्वे महत्तममहाभिधगण्यमान्याः।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

श्रीश्रीबाबाजी महाराज ने आश्रम के महन्त तथा ब्रजविदेही महन्त बनाने के बाद स्वामी रासबिहारीदास जी। को कुम्भ का श्रीमहन्ताई-चद्दर प्रदान करने का विचार किया। उस समय वह बहुत ही अस्वस्थ थे। इलाहाबाद-कुम्भ में जाने की शक्ति नहीं थी, किन्तु कर्तव्य भी निभाना था। प्रयागकुम्भ समासन्न देख लीलाचतुर महापुरुष श्री श्रीबाबाजी महाराज स्वस्थ हो गये। जीवों के उद्धार के लिए ही ऐसे महापुरुष समय-समय पर इस अवनीतल पर आविर्भूत होते हैं। असमाप्त कार्य को तो पूरा करना ही औचित्य है। धर्म संस्थापनार्थ ही गुरुरूप में स्वयं भगवान् धरातल पर प्रकट होते है-संभवामि युगे-युगे। कभी वे स्वयं आते हैं, कभी सद्गुरुदेव के रूप में।

खैर जो भी हो, बाबाजी महाराज को आरब्ध-कर्म सम्पूर्ण करना ही है। वे अपनी अलौकिक शक्ति से स्वस्थ हो इलाहाबाद

प्रयागकुम्भ के पुनीत अवसर पर वैरागी-खालसा (चतुःसम्प्रदाय खालसा) में पहुँचे। सन् १९८२ के जनवरी महीने में समस्त खालसाधारी श्रीमहन्त तथा सम्पूर्ण समाज को आमन्त्रित कर, उन्होंने सबके समक्ष श्रीरासबिहारीदास जी को चारसम्प्रदाय की महन्ताई-चद्दर प्रदान किया तथा तिलक-लगाकर सुशोभित किया। तदुपरान्त सभी श्रीमहन्तों ने चद्दर ओढ़ाकर उन्हें चार-सम्प्रदाय का श्रीमहन्त घोषित किया। अब तक श्रीरासबिहारी दासजी (लेखक) विधिवत् श्रीगुरुजी के बताए हुए मार्ग पर चलकर, उन्हीं के पदांक-अनुसरण करते हुए आश्रम के महन्त, ब्रजविदेही महन्त तथा चारसम्प्रदाय-श्रीमहन्त का उत्तरदायित्व सम्भालते आ रहे हैं। श्रीकाठियाबाबा का स्थान की शोभा उत्तरोत्तर बाबाजी की परम अनुकम्पा से दूनी-चौगुनी हो रही है, जो सभी को प्रत्यक्ष है। सन् १९८१ व १९८२ के बाद निम्बार्क-सम्प्रदाय तथा बाबाजी महाराज के जीवन एवं साहित्य के प्रचारार्थ इस सेवक (रासबिहारी दास) ने कई आश्रम बनवाये, जो किसी को भी अविदित नहीं हैं। ज्यादा क्या लिखें, अब तो विदेशों में भी निम्बार्क-विजय-वैजयन्ती उड्डीन हो रही है।

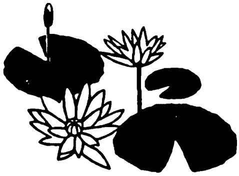

श्रीसद्गुरु–रूप में अलौकिक लीला

उद्धरति समोहात् स्खलनाच्च शिष्यान् यः,
शास्ति साधनशैथिल्ये सन्मार्गञ्च दर्शयति।
परमेश्वरः लभ्यश्च यत्कृपया भूतेशः,
सद्गुरुं धनञ्जयं प्रणमाम्यहर्निशम्।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

पहले ही हम लिख चुके हैं कि स्वयं श्री भगवान् जीवकल्याण-हेतु श्रीसद्गुरु रूप में धराधाम में अवतरित होते हैं। अतः भगवत्स्वरूप श्री श्रीबाबाजी महाराज ने सद्गुरु जी के रूप में आविर्भूत होकर शोकार्त्त जनता के प्रभूत कल्याण साधन किये हैं। निम्नलिखित कुछ घटनाओं के माध्यम से हम उनके सद्गुरु-रूप में अलौकिक लीला-भाव को लौकिक मार्ग से समझ पायेंगे।

● १४ दिसम्बर १६८४ की रात के बारह बजे थे। दक्षिण कलकत्ते की गोविन्द घोषाल लेन के २२ वीं नम्बर मकान मे एक चीख गूँज उठी, जिससे भवानीपुर के उस अभिजात मुहल्ले में रात की नीरवता दो क्षण के लिए काँप उठी। मुखर्जी परिवार की उच्च शिक्षिता बहू शर्मिष्ठा उस समय तकिये में मुँह छिपाये थर-थर काँपने लगी थी। उसकी चीख सुनकर पति अलकेश जाग उठे। शर्मिष्ठा को तकिये में मुँह छिपाये रोते देखकर अलकेश ने उसके चेहरे को हाथों में लेकर उठाया। डर के मारे शर्मिष्ठा की आँखें फटी-फटी सी थीं। गोरा चेहरा आतंक के कारण सफेद पड़ गया था। शर्मिष्ठा कुछ कह भी नहीं पा रही थी। उसकी हालत देखकर अलकेश ने पूछा-"क्या हुआ शमी, क्यों डर गयीं?"

अलकेश का स्पर्श पाकर शर्मिष्ठा मानो होश में आयी। बड़ी मुश्किल से उसने अपने को सम्भाला। फिर अलकेश के कंधे पर हाथ रखकर कहा, "पानी पीऊँगी।"

मेज पर रखी सुराही से पानी लेकर अलकेश ने दिया। एक साँस में शर्मिष्ठा ने गिलास का पूरा पानी पी लिया। अलकेश मन में जिज्ञासा लिए प्रतीक्षा करता रहा।

थोड़ी देर बाद शर्मिष्ठा बोली, "लकड़ी का कौपीन बांधे तीन संन्यासी आये थे।"

इतना कहकर शर्मिष्ठा आगे कुछ न कह सकी। उसका चेहरा फिर सफेद होने लगा। अलकेश ने उसे सम्भालने के लिए झट कहा, "सपने में न?"

चौंककर शर्मिष्ठा बोली, नहीं, सपने में नहीं। मैं उस समय जाग रही थी। आज ठीक दस बजे सो गयी थी। इसलिए एक घण्टे के बाद नींद खुल गयी। हाथ-घड़ी में देखा, ठीक ग्यारह बजे थे। एक गिलास पानी पीकर फिर सोने की कोशिश की। लेकिन नींद नहीं आयी। फिर पन्द्रह मिनट बाद कमरे में अचानक मीठी खुशबू भर गयी। खुशबू बड़ी अच्छी थी। एक बार लगा कि गुलाब की खुशबू तो नहीं? ठाकुरजी के सिंहासन के पास जाकर देखा। वहाँ अगरबत्ती नहीं जल रही थीं, इसलिए फिर लेट गयी। डर लगने लगा तो भगवान् का नाम लेने लगी। फिर ठीक बारह बजे वे तीनों आये।

रहा नहीं गया तो अलकेश बोला, भ्रम हुआ होगा।

शर्मिष्ठा ने जोर से सिर हिलाया और कहा, मैंने गलत नहीं देखा। मैंने अपनी आँखों से देखा कि वे ठाकुरजी के सिंहासन के पास आकर खड़े हुए। तीनों लकड़ी के कौपीन बाँधे हुए थे। कमर तक उनकी जटायें थीं। एक के गले में रजनीगन्धा की माला थी। एक दम

दायें खड़े थे। बीच में जो खड़े थे, उनका शरीर विशाल था। भारी तोंद थी। उनके हाथ में बेंत का गांठदार सोटा था। दायें हाथ में कमण्डल और बायें हाथ में चिमटा था। वे तीनों मेरी तरफ देखकर मुस्करा रहे थे।

"फिर?"

"सबसे दायें खड़े संन्यासी ने मुझसे कहा, कल सबेरे दस बजे तुम्हारे घर एक लड़की आयेगी। उत्तर कलकत्ता से आने वाली लड़की का नाम वासन्ती है। आज रास्ते में आते समय तस्वीर की दुकान में तुमने कुर्सी पर बैठे जिस संन्यासी का चित्र देखकर सन्तान की प्रार्थना की थी, उसके बारे में वह लड़की बताएगी। उसके बारे में जान लेने पर तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी।" मुझे तो उस समय बड़ा डर लगा जब तीनों संन्यासियों ने एक स्वर मे कहा–"मनोकामना पूरी होगी।" तभी तो मैं डर कर चीख पड़ी थी।

अलकेश हँसा और बोला, "बहुत अच्छा हुआ। अब तो सो जाओ।" शर्मिष्ठा ने खिन्न स्वर में कहा, "क्यो मेरी बात पर विश्वास नहीं हुआ? समझ रहे है कि मैंने सपना देखा है? ऐसे सिरियस मामले में मैं कैसे आपसे झूठ कह सकती हूँ? फिर यह कोई मजाक की बात नहीं है विश्वास करें, मैं भगवान् का नाम लेकर कह रही हूँ कि तीन संन्यासी आये थे। वे लकड़ी के कौपीन पहने हुए थे। मैंने कभी नहीं सुना कि कोई साधु लकड़ी का कौपीन पहनते हैं।"

अलकेश थोड़ा गम्भीर हो गया। शर्मिष्ठा का चेहरा भी बड़ा गम्भीर था। वह ऐसी लड़की नहीं थी कि फालतू बात करती। इसलिए अलकेश ने पूछा, कल तस्वीर की दुकान में किसकी तस्वीर के सामने प्रार्थना की थी?

कल गड़ियाहाट में तस्वीर मढ़ने की एक दुकान के सामने से जाते समय एक साधु का चित्र देखकर मुझे बड़ा अच्छा लगा था।

इसलिए उस चित्र के सामने खड़े होकर प्रार्थना की थी। लेकिन वह बात मुझे याद भी नहीं थी। शर्मिष्ठा बोली।

फिर तो कल ही, नहीं, कल तो रविवार है। परसों लाइब्रेरी में भारतेर साधक (भारत के साधक) सिरीज देखूँगा कि कौन संन्यासी लकड़ी का कौपीन पहनते थे। मैंने अभी तक ऐसा किसी संन्यासी के बारे में नहीं सुना। आफिस की लाइब्रेरी में भी देखूँगा। परसों शाम तक पता चल जायेगा। अलकेश ने कहा।

शर्मिष्ठा बोली, परसों शाम को क्यों? उन संन्यासियों ने तो बताया है कि कल सवेरे दस बजे वासन्ती नाम की लड़की आएगी। यदि वह आती है तो सारी बात मालूम हो जायेगी। फिर तो आप मेरी बात पर विश्वास करेंगे?

इतना कहकर शर्मिष्ठा ने होंठ फुला लिये। अलकेश ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, शम्मी, मैं तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं करता, फिर भी ऐसे विषय पर सोचना पड़ता है। कल यदि वासन्ती नाम की लड़की नहीं आयी तो मैं इस बारे में पता करूँगा। लकड़ी का कौपीन पहनने वाले संन्यासी अवश्य होंगे।

लेकिन मेरा मन कह रहा है कि वासन्ती जरूर आयेगी। शर्मिष्ठा ने विश्वास के साथ कहा।

दूसरे दिन १५ दिसम्बर रविवार था। शर्मिष्ठा और अलकेश बड़ी बेचैनी से एक अजनवी लड़की वासन्ती की प्रतीक्षा कर रहे थे। बार-बार उनकी निगाह घड़ी की तरफ जा रही थी। फिर ज्यों-ज्यों समय बढ़ता गया, उनकी प्रतीक्षा भी बढ़ती गई। उस समय दस बजने में पन्द्रह मिनट बाकी थे कि घंटी बज उठी। अलकेश ने तुरंत जाकर दरवाजा खोला। उसके पीछे शर्मिष्ठा भी दरवाजे तक पहुँच गयी थी।

सामने एक अपूर्व सुन्दरी खड़ी थी। उस युवती के रेशमी बाल खुले हुए थे। चेहरे पर जाने कैसी तन्मयता थी। युवती ने पूछा कि क्या यह अलकेश मुखर्जी का मकान है?

विचित्र कौतूहल से भरा अलकेश बोला, जी हाँ। मैं अलकेश मुखर्जी हूँ। उस युवती ने मधुर स्वर में फिर पूछा, क्या आपकी पत्नी शर्मिष्ठा देवी हैं?

शर्मिष्ठा तुरन्त आगे बढ़कर बोली, जी हाँ। मैं शर्मिष्ठा मुखर्जी हूँ।

फिर वह युवती बोली, मेरा नाम वासन्ती है। कल रात को गुरुकुल से स्वप्नादेश मिलने पर मैं आपके पास आयीं हूँ। निम्बार्क-सम्प्रदाय के महन्त श्री १०८ स्वामी धनञ्जयदासजी काठियाबाबा ने स्वप्न में मुझे आपको यह पुस्तक देने का निर्देश दिया है। इसलिए यह पुस्तक लायीं हूँ। इसमें काठियाबाबा का जीवन-चरित्र है। इसको पढ़ने पर आप सबकुछ जान जायेंगी। यदि आप अधिक जानना चाहती हैं, तो उनके आश्रम में आ सकती हैं। चौबीस परगना जिले के सुखचर में और हावड़ा जिले के शिवपुर में उनका आश्रम है।

शर्मिष्ठा ने वासन्ती को ले जाकर कमरे में बैठाया। उसने और अलकेश ने गतरात की सारी घटना बताकर काठिया बाबा के बारे में जानना चाहा। वासन्ती ने आत्म सन्तोष की हँसी-हँसकर न जाने किसको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा, निम्बार्क सम्प्रदाय के संन्यासी लकड़ी का कौपीन बाँधते हैं। इस सम्प्रदाय के आदि गुरु हैं भगवान् विष्णु इसलिए इसका मूल केन्द्र है वृन्दावन।

ये संन्यासी लकड़ी का कौपीन क्यों पहनते हैं?

परम विष्णु के दर्शन पाने के लिए ये तपस्या करते हैं, इस कारण इनको संसार का सारा सुख त्यागना पड़ता है। इनमें कठोर त्याग और आत्म-अनुशासन होता है। लकड़ी का कौपीन बाँधना इसी

साधन का एक अंग है। इससे काम-भावना का दमन होता है, ज्यादा नींद नहीं आती है।

आपने इन संन्यासियों के बारे में कैसे जाना?

यह एक आश्चर्यजनक अध्याय है। मेरा घर उत्तर कलकत्ता की अरविन्द सरणी में है। एक बार व्यक्तिगत कारण से मैं अपने जीवन से ऊब गयी थी। अपने भाग्य से क्षुब्ध होकर मैंने आत्महत्या करने का निश्चय किया था। फिर एकदिन मेज की दराज से नींद की गोलियाँ निकाल रही थी कि लकड़ी का कौपीन पहने इन्हीं संन्यासियों ने न जाने कहाँ से आकर मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा–बेटी, आत्महत्या करना बड़ा पाप है। यह जीवन ईश्वर के लिए होता है। इसलिए ऐसे अमूल्य जीवन को तुम नष्ट नहीं कर सकती।

शर्मिष्ठा से रहा नहीं गया। उसने पूछ ही लिया, कहाँ से आये वह संन्यासी?

वासन्ती बोली, कई दिन पहले मैं कालेज स्ट्रीट की तरफ से प्रकाशनी से काठिया बाबा का यह जीवन चरित्र खरीद लायी थी। शायद आपको विश्वास न हो, लेकिन मैंने अपनी आँखों से देखा कि वे उसी पुस्तक से निकल कर आये और मुझे आशीर्वाद देकर अदृश्य हो गये। बाद में मैंने जाना था कि वे ५३वें काठिया बाबा थे। उनके पहले और ५२ काठिया बाबा थे। उनके आदि गुरु थे श्रीहंस भगवान् और उस परम्परा में अन्तिम थे धनञ्जयदास काठिया बाबा।

शर्मिष्ठा का कौतुहल फिर भी नहीं मिटा। उसने कहा, मैंने तो तीन संन्यासियों को देखा है?

जी हाँ। जिनके हाथ में कमण्डल था, वे रामदास काठिया बाबा थे, जिनके हाथ में रजनीगन्धा की माला थी, वे थे धनञ्जयदास काठिया बाबा थे, उन्हीं ने आपसे बात की थी। उनका उदास स्वर बड़ा मधुर है। सुनते ही मन शांन्त होता है। वासन्ती ने कहा था।

ये धनञ्जयदास काठिया बाबा कौन थे? यह जानने के लिए अतीत की यात्रा करनी पड़ेगी।

वह पुराने जमाने के जमींदार का मकान था। उसके चारों तरफ बहुत बड़ा बाग था। घर में राधामाधव का मन्दिर। सजी-सजायी बैठक थी। मकान के आस-पास कम-से-कम पन्द्रह शिव मन्दिर थे। पूरे परिसर में प्राचीनता का आभास था और वातावरण में धार्मिकता का समावेश।

चक्रवर्ती के वंश में वह मकान भी एक चक्रवर्ती था। उन दिनों उस परिवार का बड़ा बोलवाला था। रास-पूर्णिमा के दिन बहुत बड़ा उत्सव होता था। राधामाधव के मन्दिर-प्रांगण में यात्रा (लोक-नाट्य) होता था। यात्रा-मण्डली कलकत्ता से आती थी। उस उत्सव के दौरान कई दिन ब्राह्मण-भोजन कराया जाता था।

ऐसे वातावरण में चक्रवर्ती बाबू के घर में एक विचित्र शिशु खेला करता था। उस शिशु का जन्म बड़ा रहस्यमय था। उसके पैदा होते समय उसकी माँ को प्रसव वेदना नहीं हुई थी। ग्यारह भाई-बहिनों में वह चौथा था। उन दिनों उसे देखकर उसके माता-पिता भी न सोच सके थे कि एक दिन उनके पुत्र साधक की इच्छा मात्र से उस भवन का सिंहद्वार खुल जायेगा। संसार की भोग-लालसा से विरक्त होकर वह अन्जाने की खोज में निकल पड़ेगा। स्नेह की डोर या माया का बन्धन उसे बाँध न सकेगा।

वही शिशु बड़ा हुआ। गृह-त्यागकर संन्यासी बना। वही धनञ्जयदास काठिया बाबा कहलाया। पश्चिम बंगाल के बाँकुडा जिले के भड़ा ग्राम में धनञ्जय जी का जन्म हुआ था। जातक की राशि धनु थी और लग्न भी धनु थी। पूर्वाश्रम का नाम था धीरेन्द्रमोहन चक्रवर्ती पिता थे पूर्णचन्द्र चक्रवर्ती और माता थी खुदुमणी देवी।

धनञ्जयदास काठिया बाबा निम्बार्क-सम्प्रदाय के साधु थे। निम्बार्क-शब्द से भी छोटी सी विचित्र कहानी जुड़ी हुयी है। द्वापर के

बाद कलियुग के आरम्भ में एक साधक थे नियमानन्द। उनके बारे में भविष्य पुराण में उल्लेख है–

स्वामी नियमानन्द निम्बार्क-सम्प्रदाय के आदि गुरु थे। उनके गुरु थे स्वयं भगवान् नारद। इसी प्राचीन ऋषि निम्बार्काचार्य के साथ एक विचित्र कथा जुड़ी है। नियमानन्द का आश्रम वृन्दावन से १३ कोस दूर निम्ब ग्राम में था। एक दिन सायंकाल नियमानन्द के आश्रम में कुछ अतिथि आये। नियमानन्द ने उनका सादर सत्कार कर उनके लिए भोजन की व्यवस्था की। भोजन की व्यवस्था होते-होते सूर्य डूब गया। इसी लिए अतिथियों ने भोजन नहीं किया। लेकिन अतिथि नारायण भूखे हैं, यह भी कैसे हो सकता था? इसलिए नियमानन्द ने आश्रम-प्रांगण में जो निम्ब यानि कि नीम का पेड़ था, उस पर चढ़कर भगवान् विष्णु के सुदर्शन-चक्र का आह्वान किया। रात का अँधेरा दूर हुआ और धूप निकल आयी तब अतिथियों ने भोजन किया। अतिथियों के भोजन कर लेने के बाद सुदर्शन चक्र लौट गया। तो सबने आश्चर्य से देखा कि रात का एक पहर बीत गया था। उस घटना के बाद नियमानन्द का नाम निम्बादित्य पड़ा। निम्बादित्य को नारद से ब्रह्मज्ञान मिला था।

उसके बाद एक वर्ष भी नहीं बीता, शर्मिष्ठा माँ बनीं। उनको पूरा विश्वास है कि यह सन्तान काठिया बाबा का आशीर्वाद है। उन्होंने अपने बेटे का वही नाम रखा जो वासन्ती के माध्यम से स्वप्नादेश में मिला था–शौनक।

● कई साल पहले एक दिन सन्ध्या अतीत होने के बाद सुखचर-आश्रम मे जाकर देखा तो गुरुजी के कमरे का दरवाजा बन्द हो गया था। बाहर से ही प्रणाम करके जब मैं वापस आ रहा था तो मन में भावना आई कि क्या यह प्रणाम बाबाजी तक पहुँचेगा? मैं बहुत कष्ट करके बाबाजी को प्रणाम करने आया था, किन्तु बाबाजी के दर्शन

से वंचित रह गया। इस बात का खेद मेरे मन को काफी लम्बे समय तक सताता रहा।

अन्य एक दिन वृन्दावन में भक्तों से घिरे हुए बाबाजी महाराज अपनी चारपाई पर बैठे हुए थे। मैं अन्दर जाकर उनकी दृष्टि आकर्षित करने में असफल रहा। मै बाबाजी को साष्टांग प्रणाम नहीं करता था, जब तक कि उनकी दृष्टि मुझपर न पड़ जाये। सोचता था कि उन्होंने जब मेरी ओर देखा ही नहीं तो मैं ऐसा कष्टदायक प्रणाम/व्यायाम क्यों करूँ? (यानि देहात्मबोधी मन इस नीच भावना से ऊपर नहीं उठ सकता) लेकिन उस दिन काफी भीड़ की रुकावट समझते हुए उनकी दृष्टिपात की सम्भावना कम रहने के कारण बाबाजी को साष्टांग प्रणाम करके एक बीस वर्षीय गुरुबहिन जो कि बाबाजी को पंखा झल कर हवाकर रही थी, उनसे पंखा लेकर मैं बाबाजी को पंखे से हवा करने लगा। मैं उनके पीछे रहकर ही पंखा चला रहा था, इसलिए बाबाजी महाराज मुझे नहीं देख पाये थे। उस समय आश्रम में एक बोझिल मामले में विचार-विमर्श चल रहा था। मैंने पंखा चलाते हुए ही अपनी गलती स्वीकार कर ली थी। वृन्दावन पहुँचने के बाद मैं बहुत कमजोर महसूस करने लगा। कुछ मिनट में ही हाथ विवश हो गया था। पंखा गुरु बहिन के हाथों में वापस कर देने की इच्छा हुई। हालाँकि ऐसी इच्छा करना शोभनीय नहीं था। उन्होंने मेरी ओर दृष्टि डालकर मुझे गुरुजी के पसीने से भीगे हुए माथे की ओर इशारा किया। बस फिर क्या था मैंने पंखा चलाना और तेज कर दिया। क्षण भर में ही मेरा हाथ स्प्रिंग जैसा चलने लगा। मानों कि पता नहीं कहाँ से एक अलौकिक शक्ति मेरे हाथ में आ गयी थी। बाबाजी तो बहुत ही व्यस्त थे, उन्होंने मेरी ओर कभी दृष्टि डाली ही नहीं तो वह शक्ति पता नहीं कहाँ से आ गयी थी। इससे यह जाहिर होता है कि सद्गुरु सर्वव्यापी और अन्तर्यामी भी होते हैं। अतः बाहर से देखने में या न देखने में

कोई अन्तर नहीं पड़ता है। मन में आ रहा था कि मेरे अनजाने में बाबाजी ने मुझको देख लिया होगा। उस दिन शाम को बाबाजी ने मुझसे पूछा, "क्या तुम उस समय नहीं आये थे।" बाद में सोचकर देखा कि बाबाजी ने मुझसे ऐसा सवाल एक बार ही किया था, जब मेरा आना जरूरी था। सुबह मुझको उन्होंने नहीं देखा था, लेकिन मुझको समझा दिया था कि उनके लिए देखा और नहीं देखा में कोई अन्तर नही है–वे ऐसा ही अपने-आप सब जान सकते हैं।

महन्त महाराज सन्तदासजी स्वामी जी की पत्रावली का एक अंश इस घटना के बाद दुर्बोध्य या स्व-विरोधी महसूस नहीं होता "गुरु को सामान्य मनुष्य बुद्धि से विचार मत करना। वस्तुतः स्वयं भगवान् ही गुरु-रूप में शिष्यों पर कृपा करते हैं। अतः गुरुजी का भगवद्-भाव और मनुष्य-भाव दोनों ही साथ-साथ रहेता है। मनुष्य-भाव से किसी विषय के बारे में अनवगत रह सकते हैं, लेकिन भगवद्-भाव से उससे अवगत हो जाते हैं।" इस अलौकिक तत्त्व को समझना कठिन है। साक्षात् वार्तालाप से समझाने की कोशिश की जा सकती है। (पत्रावली २८ भाग, प्र० २७५) जिन्होंने इस तत्त्व को मुझे साक्षात् वार्तालाप के जरिये से समझाया था, उनको शत-शत प्रणाम "तस्मै श्री गुरवे नमः"।

● सन् १९७८ का साल, काठियाबाबा नगर में (नागी छड़ा त्रिपुरा) बाबाजी महाराज, विमल बाबू, सुरेश बाबू और मेरे साथ विचार विमर्श करते हुए ये तय किया गया कि आन्तर्जातिक शिशु वर्ष में जो छात्र और छात्रा अष्टम कक्षा की वृत्ति-परीक्षा में सबसे अधिक अंक प्राप्त करेगा, उसको स्वामी सन्तदास स्वर्ण-पदक से पुरस्कृत किया जायेगा। इसके ठीक दो साल बाद शिशुवर्ष उदयापित होने वाला था। उस समय मेरा पुत्र श्रीमान् रमेन्द्र नाथ दास छठी कक्षा में पढ़ रहा था। अगले दिन मैं इस लड़के को लेकर काठिया बाबा के पास गया था। लड़का जब उन्हें प्रणाम कर रहा था, तो तब ही उन्होने मुझसे पूछा,

"क्या यह तुम्हारा लड़का है ?" मैंने कहा, "हाँ प्रभु मेरा ही लड़का है।" उन्होंने मुस्कराकर कहा था, "तुम भी स्वर्ण-पदक प्राप्त कर सकते हो।" मैं और मेरा लड़का दोनों ही एक साथ बोल उठे, "आपके आशीर्वाद से हो सकता है।" अलौकिक शक्ति से सम्पन्न काठिया बाबा का कहा हुआ यह वाक्य सिद्ध हुआ और दो साल बाद मेरा लड़का ही स्वर्ण पदक विजेता रहा।

सन् १९७८ में अगरतला में इण्डोलजिकेल-गवेषण केन्द्र प्रतिष्ठित हो गया था। श्री श्री बाबाजी महाराज की इच्छानुसार कमेटी बन गयी थी। मुझको रिसर्च-गाइड तथा प्रधान बनाने का प्रस्ताव स्वयं बाबाजी की तरफ से ही आया। इस दायित्व के गुरुभार से घबराकर मैंने बाबाजी ये प्रार्थना की कि "मैं यह गुरुभार कैसे निभाऊँ। यहाँ पर बहुत से पण्डित सज्जन हैं, उनमें से किसी को भी इस पद पर बिठा दीजिए न।" बाबाजी ने कहा, "आप से ही यह काम अच्छा चलेगा। अन्वेषण के लिए आपकी मर्यादा की वृद्धि होगी।" अपूर्व रूप से उनकी भविष्यवाणी सिद्ध हो गयी थी, क्योंकि थोड़े ही दिनों बाद कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रसिद्ध मौयाढ गवेषण का स्वर्ण पदक मुझे मिल गया, जिसका परिणाम बाद मे निकला था। लेकिन बाबाजी की दिव्य दृष्टि उससे पहले ही अवगत हो गयी थी।

● हमारे परिवार के साथ निम्बार्क-सम्प्रदाय का सम्बन्ध लगभग तीन पीढ़ियों से चला आ रहा है। मेरे पूज्यपाद श्री श्री गुरुदेव, मेरे माता-पिता, चाचा, ताऊ तथा मेरे बड़े भाई सभी के गुरुभाई थे। श्री श्री अनन्तदासजी महाराज और मेरे गुरुजी महाराज के साथ मेरे पिताजी की हार्दिक तथा गहरी मित्रता थी। उनके साथ मेरे जन्म के पहले से ही आन्तरिक सम्बन्ध चले आ रहे थे। अतः बचपन से ही मैं गुरुजी को देखती चली आ रही थी। मेरे मन की बहुत सी घटनायें आज भी मेरे चित्त हो हिला देती हैं।

सुखचर में आश्रम-स्थापना के बाद उनसे योगायोग और अधिक बढ़ गया था। परिणत उम्र में मैं पहले दर्शन में ही श्री श्री गुरुदेव के अन्तरयामित्व तथा दूसरी अलौकिक शक्तियों का परिचय पाने लगी, जैसे योगेश्वर्य, दूरश्रवण, दूरदर्शन यानि दूर स्थित व्यक्ति की कथा या प्रार्थना सुन लेने की शक्ति का परिचय मुझे मिलने लगा। लेकिन उन्होंने अदृश्य होने की तथा सूक्ष्मशरीर धारण करने की सामर्थ्य प्राप्त कर ली या नहीं, यह जानने की प्रबल इच्छा होने लगी।

वे इन दिनों शक्तियों के अधिकारी बन गये थे या नहीं यह सब जानकारी होने से पहले ही मैं और मेरे पति दोनों ने ही उनसे दीक्षा ले ली थी। उसके उपरान्त मेरे जीवन में एक नया अध्याय शुरु हो गया था। श्री श्री गुरुदेव महाराज के अपार्थिव शक्ति तथा अलौकिक सहायता व योगेश्वर्य हमारे जीवन को आच्छादित करके रखा था और अभी भी है। परन्तु सूक्ष्म-शरीर धारण करने की क्षमता है या नहीं, यह जानने की उत्सुकता ने हमें बेचैंन कर रखा था। सौभाग्य से थोड़े दिनों में ही मेरी आशंका दूर हो गयी थी। दीक्षा लेने के एक महीने के अन्दर ही एक रात को दो या ढाई बजे के वक्त मैं जप करने बैठ गयी थी। अचानक मेरे मकान के फाटक के सामने लकड़ी से बने हुए खड़ाऊँ पहन कर चलने की आवाज सुनाई दी और ऐसा लगा कि जैसे कोई मेरे घर की तरफ ही आ रहा है। वह धीरे-धीरे चलकर मेरे सोने वाले कमरे तक आकर चुप हो गया था फिर चलकर मेरे पीछे पहुँचा और मेरे सिर पर हाथ रखा। मुझे बहुत डर लगा। मैंने जब सिर घुमाकर देखा तो आश्चर्यचकित हो गयी, क्योंकि देखा तो गुरुजी प्रसन्न मुद्रा मे खड़े हुए हैं। और मेरी ओर देख रहे हैं। उस वक्त मुझे क्या करना चाहिए, यह समझ में नही आने से मैंने फिर से जप करना प्रारम्भ कर दिया। मेरे पति भी उसी रात उसी समय निद्रित अवस्था मे ही खड़ाऊँ की आवाज सुनकर जाग गये थे और देख रहे थे कि

मैं जप कर रही हूँ। मैं जप करने में और वे नींद में, यह शोभा नहीं देता, इससे शर्मिन्दा महसूस कर मेरे पति ने लिहाफ से अपने आपको ढक लिया। बाद में जब हम सुखचर-आश्रम में गये तब गुरुजी ने मुझसे पूछा, "क्या तुम्हारी इच्छा पूरी हुई?" ऐसा भी बहुत बार हुआ कि वे मुझसे बातें कर रहे थे और नजदीक बैठे हुए दूसरों ने कुछ नहीं सुना।

● करीब-करीब ११ साल पहले मैं और मेरी पत्नी ने सौभाग्य से बाबाजी महाराज से नाम-ग्रहण किया था। नाम-ग्रहण से पूर्व मैं अपने श्वसुर महाशय के साथ जाकर बाबाजी महाराज के दर्शन उनके सुखचर-आश्रम में कई बार किया था। शुरु में मेरे जैसे गृही व्यक्ति के मन में बहुत से इधर-उधर के प्रश्न जागे और नाम लेने का तो कोई इरादा ही नहीं। बाद मे मेरी पत्नी के मन में लेने की इच्छा उठी और नाम लेने का दिन भी निश्चित हुआ। अचानक ही मेरे मन में भी नाम लेने का अभिप्राय आया। मैंने पत्नी से मुस्करा कर कहा। इस प्रकार से हम दोनो ने सुखचर-आश्रम में ही बाबाजी महाराज से नाम लिया था।

इसके बाद मेरे जीवन में बहुत सी घटनायें घटी थीं, इन सब घटनाओं मे से जिस घटना ने मेरे मन में गहरी छाप छोड़ी थी, वह इस प्रकार थी :-

सन् १९८३ का नवम्बर का महीना था, यानि कि गुरुदेव की देहरक्षा के बाद की बात है। मेरे दो लड़के कलकत्ता के मशहूर स्कूल में पढ़ रहे थे, जो गुरुदेव की सहायता से ही सम्भव हुआ था। मेरे इन दोनों लड़कों के विद्यारम्भ का शुभ मूहुर्त भी श्री श्री गुरुदेव के ही श्रीहस्तों से तय हुआ था। इस साल मेरा बड़ा लड़का आई. सी. एस. की परीक्षा जो कि दशम मान के बाद होती है, दे रहा था और दिल्ली बोर्ड इस परीक्षा को संचालित करता है। परीक्षा से पहले ही गुरुदेव ने मेरे लड़के को आशीर्वाद देते हुए कहा था कि वह परीक्षा में अच्छा

करेगा। इस परीक्षा का नतीजा निकलने से पहले ही श्री गुरुदेव ने देहरक्षा कर ली थी। परीक्षाफल महीने की २४ तारीख को निकला था। श्री श्री गुरुदेव का चतुर्दशाह उसी दिन मनाया जा रहा था। उस अवसर पर गुरुदेव की प्रसन्नता के लिए एक भण्डारे का भी आयोजन किया गया था। उसी में भाग लेने के लिए मै और मेरी पत्नी अपने दोनों लड़कों के साथ सुखचर आश्रम में जाने वाले थे और हम लड़के के परीक्षाफल जानने के बाद जाने वाले थे। मैं स्कूल गया तो पता चला कि परीक्षाफल तो आ गया, लेकिन मेरे लड़के के अंक पत्र मे विज्ञान विषय के स्थान पर क्रास लगा हुआ था, जिसका मतलब था परीक्षा में अनुपस्थिति होना या किसी प्रकार की गड़बड़ी। इससे मैं विचलित हो गया था और उद्वेग लेकर ही सुखचर-आश्रम में पहुँचा। प्रसाद पाने की पंक्ति के आसन पर बैठा हुआ प्रसाद पाने की इन्तजारी में था, तब मेरा लड़का बोल उठा कि गुरुदेव ने जब आशीर्वाद दिया था कि मैं परीक्षा में अच्छा फल प्राप्त करूँगा तो और दुर्भावना कैसी? उनका आशीर्वाद सच होकर ही रहेगा। प्रसाद पाकर मैं घर लौटा। हम कलकत्ता के रहने वाले थे और नतीजा निकला दिल्ली से। तो उसी वक्त वहाँ जाकर कुछ मालूम कर पाना सम्भव नही था। अतः गुरु-कृपा ही एक मात्र रक्षा समझकर मैं २५ तारीख को फिर स्कूल गया और स्कूल के कर्तृपक्ष को लड़के के परीक्षाफल के बारे मे पता लगाने के लिए अनुरोध किया। मेरे आग्रह पर स्कूल से दिल्ली को टेलीफोन भी करवाया गया और एक चिट्ठी भी भिजवाई गयी, लेकिन मुझको समझाया गया कि उस सर्वभारतीय परीक्षा में एक-आध भूल हो जाना असम्भव नहीं है तथा इतने अनगिनत विद्यार्थियों के नतीजे की छानबीन करने में १०-१५ दिन लग जाना कोई अस्वाभाविक नहीं है। यानि कि दिल्ली से जवाब आने में देर हो सकती है। इस अनिश्चित अवस्था में मैं गुरुदेव का मन में नाम ले रहा था और प्रार्थना कर

रहा था कि जितनी शीघ्र हो सके जवाब आ जाये। दो दिन बाद ही स्कूल से मुझे खबर भिजवाई गयी कि दिल्ली से मेरे लड़के के सब विषयों के नम्बर आ गये हैं तथा दिल्ली के कर्तृपक्ष ने गलती होने से खेद प्रकट करते हुए कहा कि गलती से क्रास-चिन्ह छप जाने के लिए वे लोग भी ताज्जुब मान गये और इसीलिए मेरे घर पर खबर भिजवाई। श्री श्री गुरुजी महाराज की कृपा से मेरा पुत्र सिर्फ अच्छी तरह से पास ही नहीं, बल्कि उसने सर्व भारतीय परीक्षा में नवम स्थान-अधिकार भी किया था। इस अलौकिक घटना से श्री श्री गुरुजी की वाक्‌सिद्धता निःसदेह रूप से प्रकट होती ही है।

● श्री श्री बाबाजी महाराज की जिन अप्राकृत लीलाओं की अनुभूतियाँ हमें प्राप्त करने का सौभाग्य मिला था, वे सब यहाँ विवृत करना सम्भव नहीं है। उनमें से केवल एक या दो घटनाएँ बतलाने की कोशिश करती हूँ। मेरी बड़ी लड़की और मेरे दामाद भारत से बाहर जाने के लिए वायुयान का टिकट काटने से पहले दिन मैं दोनों को लेकर बाबाजी महाराज के पास गई और उनसे कहा कि ये दो फलाना दिन, फलाने समय पर वायुयान से विदेश जाने की चेष्टा में हैं। यह सुनकर उन्होंने निषेध न कर केवल सलाह दी कि उस निर्धारित समय के वायुयान से न जाकर किसी अन्य समय के हवाई-जहाज से जाना बेहतर होगा। उनकी सलाह के अनुसार वे जाकर निर्धारित दिन की पहली उड़ान से न जाकर दूसरी उड़ान से जाने की टिकट ले आये। बाद में अखबार में खबर छपी कि पहली उड़ान के सभी यात्री दुर्घटना में मर गये, जबकि दूसरी उड़ान सभी यात्रियों को लेकर खुशहाल पहुँचा। इस खबर से मुझे कितनी सांत्वना मिली यह कौन बता सकता है? यह खबर मिलने के बाद श्री श्री गुरुदेव को स्मरण करने लगी और सिर्फ उनकी कृपा से ही मेरी लड़की व दामाद बच गये थे; यह सोचने लगी।

उस समय दूसरे एक दिन दोपहर को श्रीश्रीबाबाजी महाराज भोजन के उपरान्त अपने कमरे में विश्राम कर रहे थे। उस वक्त हमारे गुरुभाई श्री परेशचन्द्र घोष अपनी पत्नी को साथ लेकर बाबाजी के दर्शन करने के लिए सुदूर दमदम से आये। बाबाजी के कमरे का दरवाजा बन्द था और महाराज विश्राम में थे। यह जानकर वे निराश हो गये कि सायं चार-पाँच बजे से पहले वे दरवाजा नहीं खोलेंगे। उधर उन दोनों को तब तक इन्तजार करने की गुँजाइश नहीं थी, क्योंकि बहुत जरूरी किसी अन्य काम से उन्हें एक दूसरी जगह जाना था। बाबाजी के दर्शन की सम्भावना नहीं पाकर दुखी हो गये। उधर बाबाजी अन्तर्यामी होने के कारण उनके आगमन और दर्शन न पाने की दुविधा को जान गये थे और अचानक ही उनके कमरे का दरवाजा खुला तो उन्होंने सस्त्रीक घोष महाशय को देख लिया। लेकिन ऐसे ही पूछ बैठे, "क्या गंगामाई अभी तक नहीं आई है ?" गंगामाई श्री श्रीबाबाजी महाराज की गुरुभग्नी है। उनके उस दिन अपराह्न में आने की बात थी। गंगामाई के बारे मे पूछना उनका एक बहाना था। जिससे कि अन्तर्यामी होने का अन्दाजा किसी को न हो सके या उनकी अलौकिक शक्ति का किसी को पता न चल पाये। असल में अन्तर्यामी होने के कारण ही श्रीयुक्त घोष और उनकी पत्नी के आगमन से अवगत हो गये थे और असमय ही कमरे का दरवाजा खोल दिये, जिससे कि घोष-दम्पति उनके दर्शन लाभ कर सकें। उन दोनों ने गुरुजी को प्रणाम किया। गुरुजी ने उन दोनों को आशीर्वाद देकर उनसे कुशल-मंगल पूछा और फिर विश्राम करने लग गये।

● शायद १९७९ ईसवीं में महन्त महाराज श्री श्री १०८ स्वामी धनञ्जय दासजी महाराज मेरे उपर्युक्त निवास-स्थान पर पदार्पण किये थे और कई दिनो तक ठहरे थे। मेरे निवास स्थान के प्रवेश द्वार पर एक कामिनी के फूल का पेड़ था। उस समय कामिनी फूल के

खिलने का मौसम नहीं था। लेकिन मेरे मन में यह भावना आई कि उस समय कामिनी का फूल खिल जाता तो कितना अच्छा होता, जिसकी खूशबू से बाबाजी की अभ्यर्थना बहुत अच्छी हो सकती थी। ब्रह्मज्ञ महापुरुष श्री श्री धनञ्जयदासजी यदि कृपा करें तो इस असमय में भी फूल खिल सकता है। क्या भक्तवत्सल गुरुदेव ऐसी कृपा नहीं करेंगे? इस भावना से प्रेरित होकर मै दयालु गुरुदेव से प्रार्थना करने लगा कि उनके आगमन के समय कामिनी फूल का पेड़ भी अपने फूलों से श्री श्री धनञ्जय दासजी का स्वागत करे। दिन चलता रहा लेकिन फूल नहीं खिला। उनके आने का दिन नजदिक आ गया। उनके आने के पूर्वदिन साँझ के समय में भी पेड़ मे कोई कलियाँ दिखाई नहीं दी। मैं इससे बहुत दुखी होकर इससे कातरता से प्रार्थना करने लगा कि फूल खिल जाये तो कितना अच्छा होगा। दूसरे दिन सुबह जब उस पेड़ की तरफ नजर डाली तो देखा कि उसमें काफी फूल खिले हैं और उनकी खूशबू से घर सुगंधित हो गया है। उस आनन्द से मेरी आँखों में आँसू आ गये। मैं दयालु प्रभु का नाम लेकर जय ध्वनि करने लगा। क्षणभर में फूलों के समारोह के बीच श्री श्री धनञ्जयदास जी का शुभागमन हुआ। मुझको देखते ही उन्होंने पूछा, "क्या हाल है? सभी अच्छे हैं न?" आश्चर्य की बात है कि परदिन पेड़ में एक भी फूल नहीं था। इस अलौकिक घटना से श्री श्री धनञ्जयदासजी स्वामी महाराज का भक्तवात्सल्य तथा अलौकिक अन्तर्यामीत्व ही प्रकट होता है।

● उक्त त्यागी संन्यासी का एक छोटी उम्र का चेला था। अचानक ही उस पर एक भूत का असर हो गया था। उसने तकलीफ से जोर-जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया। उसकी हालत बहुत ही बुरी होने लगी। साधुओं में से जो जो कुछ भी कर सकता था या प्रतिकार कर सकते थे, सभी उपायों का प्रयोग किया। लेकिन उस किशोर चेले की यन्त्रणा तनिक भी कम नहीं हुई थी। तब सभी ने श्री श्रीकाठिया

बाबा जी की शरण लेने की सलाह दी। काठिया बाबा मन्त्र-सिद्ध महापुरुष जरूर ही किसी उपाय से उस चेले को भूत के प्रभाव से मुक्त कर देंगे। तब त्यागी संन्यासी काठिया बाबा की छत्रछाया में आकर कातरता से उनसे प्रार्थना करने लगे–'कृपया मेरे चेले को भूत के उपद्रव से मुक्त करवा दीजिए'।

उदारमना बाबाजी के मन में उस किशोर चेले के लिए अनुकम्पा आई और उसको उनके पास लाने के लिए त्यागी संन्यासी से अनुरोध किया। त्यागी संन्यासी उसको उनके पास ले गया तो बाबाजी ने उसके शरीर पर एक मन्त्र जप करते हुए हाथ फेरने लगे और उससे पूछा–"क्या भूत उतर गया?" बालक तब भी चिन्तित था और उसके बदन पर डर की छाप थी। उसने अपनी उँगली से इशारा करके नजदीक खड़े हुए भूत को दिखाकर बोला कि "भूत तो उतर गया, लेकिन अभी भी पास में ही खड़ा रह गया है। जब आप चले जायेंगे तो तब वह फिर मुझपर चढ़ जायेगा।" दुबारा बाबाजी ने मन्त्र जपकर उसकी देह पर हाथ घुमाया और किशोर चेले से पूछा-"अब भूत कहाँ है?" बालक इस बार खड़े होकर भयभीत स्वर से ही जवाब दिया, "भूत थोड़ी दूर चला गया है, लेकिन दूर रहकर भी उसकी ओर बुरी नजर डाल रहा है, निश्चित है कि बाबाजी महाराज के चले जाने के बाद फिर आकर मुझ पर चढ़ जायेगा।" बालक की भयभीत अवस्था दूर न होने से बाबाजी महाराज ने तीसरी बार मन्त्र जपकर बालक के शरीर पर हाथ फिराया। तब बालक पूरी तरह से ठीक हो गया था और उसका चेहरा भी भयभीत-भाव से दूर हो गया था। साधु-सन्तों ने बाबाजी की जय-जयकार ध्वनि करना शुरु कर दिया। उस प्रसंग में बाबाजी ने कहा कि "गुरु की प्रसन्नता-लाभ करने पर ऋद्धि और सिद्धि साधकों के पीछे आज्ञाकारी दासी की तरह चलती रहती हैं। गुरुजी को प्रसन्न करने के लिए सबसे पहले जरूरत चित्त-

शुद्धि की है। जब तक आपका चित्त शुद्ध न हो, तब तक कुछ भी नहीं है। चित्त शुद्ध होने से/निर्मल होने से इष्ट के प्रति तन्मयता बढ़ती है और इच्छा-शक्ति की प्रबलता होती रहती है।" कहते हैं "मैं भूत-सिद्ध या पिशाच-सिद्ध नहीं हूँ, मैं तो सरल चित्त से गुरु की प्रार्थना से अवगत कराता हूँ।"

● ब्रज-परिक्रमा के अवसर पर संन्यासी लोग कभी-कभी आपस में मजाक करके आनन्द लेते रहते हैं। एक दिन एक त्यागी संन्यासी बाबाजी के छत्र के नीचे आकर कहने लगे, "महाराज, यदि जड़ी-बूटियों की कुछ शक्ति देखना चाहते हैं तो मैं थोड़ा कुछ दिखा सकता हूँ।" बाबाजी महाराज ने बालक की तरह उत्सुकता से देखकर कहा, "ठीक है, जरूर देखेंगे। थोड़ा कुछ दिखाओ।"

बाबाजी की अनुमति पाकर खुश होकर वह संन्यासी मोटे और लम्बे दो बाँस के टुकड़े ले आया। अनेकों साधु-बाबा लोग देखने के लिए वहाँ एकत्र हो गये। बाजी दिखाने वाले संन्यासी ने दर्शकों में से दो पहलवानों को बुलाया और उन दोनों बाँस-खण्डों को उनसे दोनों तरफ से जोर से पकड़ने को कहा। बाँस के बीच फर्क करीब-करीब तीन फुट था। बाजीगर ने किसी पेड़ की जड़, जो उनके पास पहले से ही थी, वह निकालकर उससे दोनों बाँसों के टुकडों को छू दिया और दोनों पहलवानों से कहाँ कि दोनों बाँस के टुकड़ों को अलग-अलग रखो। उन दोनों ने अपनी-अपनी शक्ति-अनुसार उन्हें अलग रखने की चेष्टा की, लेकिन तमाम कोशिशें विफल करके दोनों बाँस धीरे-धीरे टेढ़े होकर बीच के हिस्से पर दोनों एक जगह मिल गये। जड़ की अलौकिक शक्ति को देखकर दर्शक-मण्डली निर्वाक् हो गयी थी और बाजीगर संन्यासी की तारीफ करने लगी थी। लेकिन बाबाजी महाराज उसकी प्रशंसा सुनकर चुप रह गये थे। उनको ऐसे निरुत्तर देखकर बाजीगर संन्यासी मनोक्षुब्ध होकर बोले, "महाराज, इस जड़ी की ताकत देखी है,

इसकी ताकत उससे भी ज्यादा है, इसकी करामात आपको मालूम हो गयी होगी।" महाराज जी बालक जैसे हँसते हैं और ऐसे ही हँसकर बोले, "तुम्हारी जड़ी ने क्या शक्ति दिखलाई है? मेरे मन्त्र की शक्ति उससे कहीं अधिक है। मन्त्र के मुकाबले में तुम्हारी जड़ी कुछ भी नहीं है।" जैसे आपस में खेलते हुए दो बच्चे अपनी जिद साबित करने के लिए आपस में झगड़ते हैं, ऐसा ही उन्होंने कह दिया था। उनके इस दावे में कोई गूढ़ार्थ नहीं था, लेकिन बाबाजी के स्पर्द्धाद्योतक कथन से दर्शकों की उत्सुकता और बढ़ गयी और वे लोग बाबाजी से आग्रह करने लगे कि मन्त्र-शक्ति का प्रभाव दिखा दीजिए। बाबाजी ने उन लोगों को टालने की बहुत कोशिश की लेकिन विफल रहे। जब लोगों ने ज्यादा ही जिद की तो विवश होकर बाबाजी ने फिर से बाँस के दो टुकड़ों को फिर से जड़ी से टेढ़े करने के लिए बाजीगर बाबा (संन्यासी) से आग्रह किया। बाजीगर ने उत्साह से फिर जड़ी के स्पर्श से बाँस के टुकड़ों को इकट्ठा करने की कोशिश की तो बाँस जैसा था, वैसा ही रह गया। न मिलता हुआ और न टेढ़ा हुआ। बाजीगर ने अनेक जड़ियाँ एकत्र करके बार-बार बाँस के टुकड़ों से स्पर्श किया, परन्तु बाँस हिला भी नहीं। इससे लोग ताज्जुब मान गये। गुरुजी ने अपने गुरुदेव को स्मरण करके उनसे प्रार्थना की कि जिससे उनके (बाबाजी के गुरु का) माहात्म्य कम न हो यह प्रार्थना करके एक विशेष मन्त्र जप करना शुरु कर दिया था, जिससे कि दोनों बाँस के टुकड़े अलग ही रह जायें। ऐसी प्रार्थना करने लग गये थे। इस प्रकार काठिया बाबाजी मन्त्रसिद्ध महापुरुष की ख्याति चारों ओर फैलने लगी।

● ३/४ साल पहले मैं बच्चों के साथ सुखचर-आश्रम में गया था। उस समय बाबाजी महाराज उसी आश्रम मे थे। महाआनन्द से कई दिनों को बिताकर शिलांग लौटने का दिन आया। जिस दिन रवाना होने को था, उसी दिन सुबह मेरी लड़की पार्वती की हालत

अचानक बहुत खराब हो गयी। उसको बुरी तरह से उल्टी हो रही थी। रवाना होने से पहले श्री राधाकृष्ण दासजी की सहायता से स्वामीजी को प्रणाम करने का मौका मिला। पार्वती की बुरी हालत से हम सभी बहुत चिन्तित थे। हमने बाबाजी को उसकी हालत के बारे मे अवगत कराया और उनके चरणामृत के लिए प्रार्थना की। बाबाजी महाराज ने चरणामृत दिया और पार्वती से पूछा–"तुमको क्या हो गया है?" यह कहकर उन्होने उसके सिर पर हाथ फेरा। थोड़ी देर में हम सबको महा प्रसाद मिला। पार्वती ने भी हमारे साथ पेटभर कर प्रसाद खाया। उसे अब उल्टी होना बन्द हो गयी थी। यह केवल बाबाजी की अलौकिक शक्ति का ही प्रभाव था।

इस प्रकार पूरे रास्ते में पार्वती बिल्कुल ठीक रही, उसने भी हमारे सोथ सब कुछ खाया। हम लोग निर्विघ्न होकर घर पहुँचे। बाबाजी की अलौकिक शक्ति को देखकर सिर्फ हम ही आश्चर्यचकित नहीं हुए, बल्कि पार्वती गुरुजी की दैवीशक्ति से जागतिक शोक-दुःख अन्तर्हित होते देखकर गुरुजी की प्रभावशालीता से उनके प्रति तन-मन से अनुरागी हो गयी।

• मेरा लड़का जयदेव शैशवकाल से ही श्वाँस रोग भोग रहा था। जुकाम और कफ से श्वाँस कष्ट होता था और बाद में उसने एक्जिमा का रूप ले लिया था। इसकी वजह से उसको बहुत ही कष्ट होता था, जो सहन करना मुश्किल होता था। मैंने बाबाजी से इस बारे में निवेदन किया। उन्होंने कहा–"एक्जिमा क्यों होगा? ठण्ड लगकर ऐसा हुआ है।" जो लड़का सात-आठ साले से उस बीमारी से कष्ट पा रहा था, बाबाजी के बतलाने के बाद डेढ़ साल हो गया और एक दिन के लिए भी उसको श्वाँस कष्ट नहीं हुआ। बाबाजी की कृपा से ही यह असम्भव घटना सम्भव हो गयी थी। उसके बाद जब भी उस लड़के को कोई तकलीफ होती थी तो वह बाबाजी द्वारा दिये गये

चरणामृत को पीने के लिये व्यग्र हो जाता था और चरणामृत पीने के बाद ही वह शान्त और ठीक हो जाता था। १०३ डिग्री बुखार में पड़े हुए भी लड़का चरणामृत पीकर ठीक हो जाता था और खेलने को चला जाता था, इतना अगाध विश्वास उसे बाबाजी के चरणामृत में था।

बाबाजी के शिष्य हाइलाकान्दि-निवासी वकील श्रीगंगाचरण विश्वास महोदय की स्त्री भयानक रूप से पीड़ित होने पर चिकित्सकों ने विचार प्रकट किया कि उनको राजयक्ष्मा (तपेदिक) की बीमारी हो गयी है। चिकित्सा से उपशम न होने पर गंगाचरण बाबू निरुपाय होकर अपनी बीमार पत्नी को यादवपुर के अस्पताल मे दाखिल करवाये। वहाँ अस्त्रोपचार करके उनकी एक नस को काट दिया गया और दूसरी को अभी काटने का विचार कर ही रहे थे कि रोगिनी की दशा बहुत नाजुक हो गई। गंगाचरण बाबू ने समझ लिया कि वह मरने वाली है। उन्हीं दिनों गुरुदेव वृन्दावन से शिवपुर-आश्रम मे आये हुए थे। गंगाचरण बाबू की कातर प्रार्थना से गुरुदेव उनकी स्त्री को देखने के लिए अस्पताल में गये और मरणोन्मुख रोगिनी को विशेष आशीर्वाद दिया। गंगाचरण बाबू ने गुरुदेव को यह भी बतलाया कि चिकित्सा-व्यय चलाने की शक्ति उनमें नहीं है, अतः गुरुदेव की अनुमति हो तो वे स्त्री को अस्पताल से वापस घर पर ले आना चाहते हैं। गुरुदेव ने अपनी स्वीकृति दे दी। उन्होंने स्त्री को अपनी ससुराल ब्राह्मण-वाड़िया में ले जाना तय किया और गुरुदेव से प्रार्थना की कि कृपया शियालदह स्टेशन पर पधार कर उनकी स्त्री को अपनी चरणधूलि प्रदान करें और आशीर्वाद दें, जिससे कि रास्ते मे उनकी स्त्री की मृत्यु न हो। रवाना होने के दिन ठीक समय पर बाबाजी महाराज शियालदह स्टेशन पर पहुँचे और देखा कि रोगिनी स्ट्रेचर पर लेटी हुई है। रोगिनी को अचेतन अवस्था को देखकर गंगाचरण बाबू और उनके साथियों को सन्देह था कि रोगिनी को जीवित अवस्था में ब्राह्मण-वाड़िया तक

पहुँचाया भी जा सकेगा या नहीं। श्री श्री गुरुदेव जी ने उनको अभय दिया। भगवान की कृपा से वे विघ्नरहित दशा में ही रोगिनी को लेकर ब्राह्मण-वाड़िया पहुँच गये। उसके बाद जब गुरुदेव अगरतला आये थे, तब वहाँ जाकर गंगाचरण बाबू ने उनसे दीक्षा ग्रहण की थी। उनकी पत्नी तब तक इस हालत में नहीं आई थी कि उसको हाइलाकान्दि से अगरतला तक ले जाया जा सके। फलतः उनकी स्त्री को नाम लेना या दीक्षा ग्रहण करना सम्भव नहीं हो सका।

सन् १९४८ में जब गुरुदेव अगरतला में आये थे, तब वहाँ जाकर उनसे दीक्षा ग्रहण की। बाद मे उनको हाइलाकान्दि ले ज़ाकर उनकी खूब सेवा की और हर वक्त छाया की भाँति उनके पीछे रहती थी, ताकि उन्हें कोई कष्ट न हो। गंगाचरण बाबू और उनकी धर्मपत्नी ने सेवा-परिचर्या से गुरुदेव के कृपालक्षण चुकता करने की प्राणपण से कोशिश की। वे लोग अब बहुत आनन्द से है और किसी भी रूप से किसी वस्तु की कमी महसूस नहीं करते हैं।

● बाबाजी महाराज शिलाँग जाते समय ज्यादातर उनके प्राक्तन शिष्य डेपुटि कमिश्नर श्री जन्मेजय बर्मन के यहाँ ठहरते थे। एक समय श्री जन्मेजय का लड़का रोग से पीड़ित होकर नाज़ुक हालत मे था। धीरे-धीरे उसकी हालत और भी गम्भीर होती जा रही थी। डाक्टर ने भी अन्तिम जवाब दे दिया था। उनकी धर्मपत्नी लड़के के सिर पर हाथ रखने के लिए बाबाजी महाराज से कातर प्रार्थना करने लगी कि उनकी कृपा से लड़का रोगमुक्त हो सकता है। उस समय बाबाजी महाराज वृन्दावन के आश्रम में थे। रात की अन्तिम घड़ी थी। लड़के की रोग-शय्या के पास बैठी हुई उसकी जननी ने देखा कि बाबाजी महाराज उनके सामने खड़े हुए हैं और उनके हाथ में सफ़ेद पत्थर के कटोरे में दवाई थी। उन्होने बर्मन की पत्नी से कहा, "यह दवाई लड़के को पिलाओ।" उन्होंने तुरन्त ही वह दवाई अपने लड़के

को पिला दी। सिर उठाकर देखा तो बाबाजी महाराज वहाँ पर नहीं थे और पत्थर की कटोरी भी वहाँ नहीं थी। उधर लड़के की हालत तभी से धीरे-धीरे सुधरने लगी। अगले दिन सुबह डाक्टर को आना था, जो कि चरम दुर्घटना की आशंका मन में लेकर आये थे, लेकिन लड़के के स्वास्थ्य में काफी सुधार को देखकर डाक्टर भी आश्चर्य-चकित हो गये थे।

● सन् १६४६ के जून के महीने मे गुरुदेव रंगपुर आये थे। वहाँ पर गुरुभाई श्री वीरेश्वर चटर्जी के मकान पर २-३ दिन ठहरे थे। वहाँ के वकील श्री लक्ष्मी प्रसाद सोहनवीशजी (जो कि हमारे सम्प्रदाय से सबंधित नहीं थे) गुरुदेव से कई लिखित प्रश्न किये थे। गुरुदेव भी मौनावस्था मे रहने के कारण उनकी दैनिक कापी मे लिखकर उन्हें जवाब दिये थे। उन प्रश्नों तथा उनके जवाबों में से किसी एक भी अप्रासंगिक नहीं होगा, यही सोचकर नीचे लिख रहा हूँ-

प्रश्न : कुछ दिन पहले झांझा जाने के समय मैनें आपको अपने साथ गाड़ी में देखा। हालाँकि उस समय आप आसाम में थे। यह कैसे सम्भव हुआ? मैं आपका शिष्य नहीं हूँ ताकि कृपावश आपने मुझे दर्शन दिये हों। तो क्या मेरी यह कल्पना गलत थी?

उत्तर : समय समय पर इस प्रकार संग जाना देखा जा सकता है। ऐसा अनेकों ने देखा है। यह सिर्फ ख्याल नहीं है, बल्कि सच भी है। ऐसा होता रहता है। अतः मेरे आसाम रहने पर भी आप मुझको अपने साथ गाड़ी में झांझा में बैठे हुए देख सकते हैं। यह मिथ्या कल्पना मात्र नहीं है।

इस प्रसंग में बाबाजी ने यतीश बाबू के लड़के का दृष्टान्त दिया और कहा इस प्रकार की घटनायें अक्सर होती रहती है। शिष्य न होने पर भी यदि किसी में भक्तिभाव हो, या किसी ने स्मरण किया हो तो उनके बारे में भी ऐसी घटनायें घट सकती हैं। आप शिष्य न होकर भी जब

श्रद्धा भक्ति रखते हैं और स्मरण करते हैं, तो आप भी झांझा में गाड़ी में मुझको अपने साथ बैठा हुआ देख सकते हैं। अतः यह मिथ्या या कल्पना मात्र या उस प्रकार के सन्देह का कोई कारण नहीं है।

● एक समय मैं बाबाजी की अनुमति लेकर बद्रिकाश्रम मे तीर्थदर्शन के लिए गया हुआ था। लौटते वक्त एक पंजाबी साधु के आश्रम में ठहरे हुए थे। उस समय भारत-विभाजन को लेकर पंजाब में दंगा हो रहा था। उस अंचल मे ज्यादातर मुसलमान होने के कारण हम लोग आतंकित थे। हंगामें के कारण बाहर आना-जाना भय का कारण बन गया था। एक दिन उस आश्रम के महन्त ने मेरे हाथ में एक लाठी देकर और मुझे एक दूसरे साधु के साथ एक भिन्न ग्राम को जाने के लिए कहा था। मैं उस लाठी को हाथ में लेकर उनके शिष्य के साथ चल दिया। कुछ ही दूर जाने के बाद चार मुसलमान लोग हमारे सामने हाजिर हुए। उनको देखते ही मेरे साथ वाले साधु जंगल मे छिप गये। मै घबराकर इधर-उधर देख रहा था। उसी बीच मैंने बाबाजी महाराज को कमण्डल हाथ में लेकर मुसलमानों के सामने से गुजरते हुए देखा। मैने सोचा बाबाजी महाराज मुझको अभय देकर चले गये। उन मुसलमानों ने भी मुझसे पूछा कि वे साधु कौन थे और कहाँ चले गये? मैंने जवाब दिया कि वे मेरे गुरुदेव हैं और वे ऐसे ही घूमने-फिरने के लिए जंगल गये हैं और थोड़ी देर मे लौट आयेंगे। यह कहकर मैने लक्ष्य किया कि उनमें कुछ परिवर्तन आया है। उनमें से एक के पेट में दर्द होने लगा था और मुझसे पूछने लगा कि क्या मै पेट दर्द की दवाई जानता हूँ? मैं उसे पेट दर्द की दवाई बतलाकर पंजाबी बाबा के आश्रम में लौट आया।

● सन् १९६४ में जब श्री श्री बाबाजी कलकत्ता से आसाम जा रहे थे तब उनको कटिहार में गुरुभाई श्री बैद्यनाथ पाल जी के ड्राइवर टोला स्थित मकान पर ठहराया गया। मेरा छोटा लड़का

ध्रुवज्योति जब पाँच साल का था। वह जातिस्मर था। वह हम सबको खासतौर से अपनी माँ को बोलता था कि सिलीगुड़ी में उसका मकान, गाड़ी, कारखाना (लकड़ी का व्यापार करने की बड़ी कार्यशाला) आदि है। उसकी वहाँ की माँ उसको रोजाना बहुत बढ़िया खाना खिलाती थी और शाम को गाड़ी में घुमाया करती थी। उसकी माँ देखने में बहुत खुबसूरत थी। एक नौकर हर वक्त उसकी देखभाल के लिए रहता था। ये सब सुनकर मैंने सिलीगुड़ी में पतां लगाने की कोशिश की थी। उससे मालूम हुआ कि उनके एक लड़का था जो चार पाँच साल पहले मर चुका है। वे बहुत ही मालदार लोग थे। मुझे लड़के को लेकर वहाँ जाने के लिए मेरे अनेकों गुरुभाईयों ने यहाँ तक कि श्री श्री बाबाजी ने भी सलाह दी थी। मैंने बाबाजी महाराज से कहा, "बाबाजी, उसके पूर्वज़न्म का परिवार धनवान तथा मालदार तथा ख्यातिमान परिवार है, उस परिस्थिति में लड़के को वहाँ ले जाने से लड़के से हाथ धोना भी पड़ सकता है।" तब बाबाजी ने टुकुन को बुलाकर उससे पूछा, "क्या टुकुन सिलीगुड़ी जाओगे?" उसने खुशी के मारे कुदते हुए कहा कि "जरूर जाऊँगा।" बाबाजी ने उसको गोद में लेकर सिर पर हाथ फेरा ओर कुछ देर बाद फिर पूछा "क्या मेरे साथ सिलीगुड़ी जायेगा?" उस समय वह कोई जवाब न देकर सिर झुकाकर ही रह गया। उस दिन के बाद और कभी सिलीगुड़ी के बारे मे उसने कोई जिक्र नहीं किया। बाबाजी की कितनी करुणा और ऐसी शक्ति ! धन्य हो गुरुदेव, तुम जैसे गुरु का लाभ कर हम भी धन्य हैं !

● मेरा मँझला लड़का श्रीमान् सत्यजीत जब दस साल का था तब वह एक्जमा बीमारी से आक्रान्त हो गया था। बहुत खर्चीला इलाज कराने पर भी कोई अच्छा नतीजा नहीं निकला। उन दिनों मैं कटिहार (बिहार) में रेलवे की नौकरी में था। सन् १९५२ में अचानक बाबाजी का पत्र मिला कि वे समस्तीपुर श्री राधारमण घोष के निवास

पर दो चार दिन रह कर कटिहार होते हुए आसाम जायेंगे। उस समय मेरी स्त्री मेरे लड़के के इलाज के लिए मेरी सास के लिखने के अनुसार पाण्डु (रैस्ट कैम्प) में मेरी विवाहिता शाली के यहाँ गयी हुई थी। तब कटिहार में मेरा एक मात्र गुरुभाई श्री वैद्यनाथ पाल के साथ मिला और उनके मकान पर बाबाजी को दो-चार दिन ठहराने की बात करके पिताजी को समस्तीपुर के पते पर चिट्ठी लिखी थी। बाबाजी के कटिहार स्टेशन पहुँचने पर मै सपरिवार और श्री वैद्यनाथ जी बाबाजी को लाने के लिए उपस्थित थे। शाम को बाबाजी ने मुझसे पूछा कि मेरे परिवार के लोग कहाँ गये हुए हैं? मैंने उनको बतलाया कि मेरे लड़के स्वप्न को लेकर मेरी पत्नी पाण्डु गई हुई हैं, क्योंकि स्वप्न श्वास रोग से पीड़ित है और उसके बचने की उम्मीद नहीं है। यह सुनकर बाबाजी मुझसे बोले, "तुम तुरन्त ही एक पत्र डाल दो कि मैं रामपाल बाबू के वहाँ पाण्डु मे जा रहा हूँ और श्री रामपाल बसु के यहाँ ठहरूँगा, तुम्हारे लड़के स्वप्न को वहाँ दिखलाने के लिए लिख दो।" यह कहकर बाबाजी ने जानकीदास को मुझे एक कार्ड देने को कहा। कार्ड लेकर उनके निर्देशानुसार मैंने लिखा दिया। मेरी चिट्ठी पाकर मेरी पत्नी श्री रामपाल बाबू के मकान पर लाइन में खड़ी हो गयी। बाबाजी ने उस मकान में घुसते हुए ही मेरी पत्नी को लाइन में खडी देखकर कहा, "स्वपन को एक्जमा हुआ है। कल उसको नहलाकर मेरे पास ले आना"। अगले दिन मेरी सास की एतराजी के बावजूद मेरी पत्नी लड़के को नहलाकर बाबाजी के पास ले आई। बाबाजी ने स्वप्न को गोद में बिठलाकर उसके कान में एक मन्त्र फूँका और उसी मन्त्र को एक कागज पर लिख कर मेरी पत्नी को दिया और बोले, "अगर फिर इसके श्वास का टर्न पड़ता है तो इस कागज को खोलकर इसमें लिखा हुआ मन्त्र फिर इसके कान में सुना देना। बड़ा हो जायेगा तो उसे इस मन्त्र को सीखकर रोज जाप करना होगा।" बाबाजी की अद्वैत कृपा से

स्वपन के कान में उस मन्त्र को फूँक देने के बाद से आज तक उसे कभी श्वाँस-कष्ट नहीं हुआ।

● सन् १९७८ में हम दीक्षित हुए थे। दीक्षा-ग्रहण करने के बाद मेरे मन में अक्सर यह ख्याल आता रहता था कि बाबाजी महाराज स्वयं भगवान् है या नहीं? मन में यह स्वीकार करने पर भी उनकी स्थूल देह में भगवत्-सत्ता का अनुभव करना सम्भव नहीं हो सका। मन में हमेशा सवाल आता ही रहा कि बाबाजी का स्वरूप क्या है? लेकिन बाबाजी से पूछ नहीं सकती थी कि "बाबाजी आपका स्वरूप जानने की इच्छा होती है।" सन् १९७८ में बाढ़ आई थी। बाबाजी तब सुखचर-आश्रम में थे। सम्भवतः महालया का दिन था। गंगा पानी से भरी हुई थी। आश्रम का नदी वाला घाट तथा अनेकों घाट डूबे हुए थे। गंगा के उस विकराल रूप को देखने से डर लग रहा था। उस भयानक अवस्था में भी एक सात-आठ साल का बालक घाट पर बैठा हुआ था। मैंने कहा "यहाँ अकेले क्यों बैठे हो? तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे साथ क्या नहीं हैं? कोई तेरी देखभाल करने वाला नहीं है क्या?" तब वह लड़का उठकर मेरी ओर आया तो मैंने देखा कि उसके भाल पर भगवान् श्रीकृष्ण जैसा तिलक अंकित है। मैंने पूछा "क्या दीक्षित है जो तिलक धारण किया हुआ है?" छोटे बच्चे को तिलक लगाना ठीक नहीं है। उसने जबाब दिया "मेरी माँ रोजाना मुझको तिलक लगाती है।" मैं बोली "तो क्या तू हर रोज तिलक लगाकर यहाँ आता है?" जवाब में उस लड़के ने बोला "मैं प्रतिदिन सुबह तथा शाम को आरती के समय यहाँ आता हूँ।"

उस दिन सुखचर-आश्रम में दोपहर को आरती हो रही थी। मैंने उससे कहा "चल, आरती का समय हो गया है।" यह कहकर लड़के को लेकर मैं मन्दिर गयी। वहाँ पर बहुत भीड़ थी। आरती देखने

वालों की उस भीड़ में मैं उस बालक को ढूँढती रही, लेकिन वह मिला नहीं। उसके बाद कभी भी वह लड़का मुझे दिखाई नहीं दिया।

मेरे मन की भावना इस प्रकार रही कि बाबाजी का साक्षात् रूप-दर्शन करने की योग्यता मैंने प्राप्त नहीं की है। इसलिए उस बालक के माध्यम से मुझको बता दिया कि ठाकुरजी और बाबाजी में कोई अन्तर नहीं है।

● सन् १६७८ वर्ष की बाढ़ सर्वविदित है। सारा पश्चिम बंगाल बाढ़ से डूबा हुआ था। उन दिनों हम मेटियाबरुज में रहते थे। मेरा मकान गार्डनरीच वर्कशाप के पास ही था। सारा मकान पानी में डूब गया था तो हम बेहाला चले गये थे; क्योंकि पार्थ के पिता जी बोले "चलो हम बेहाला वाले मकान पर चलें।" मेटियाबुरुजी का मकान एक मंजिला था और छत पर चढ़ने का कोई रास्ता या सीढ़ी नहीं थी, इसलिए डर लग रहा था कि पानी यदि और बढ़ गया तो क्या होगा? मैंने कहा कि सब लोगों की जो दशा होगी, वही हमारी भी होगी। इसके अलावा हमारे बाबाजी महाराज तो हैं ही, इसलिए चिन्ता की कोई बात नहीं है।

बाढ इतनी बढ़ गयी कि नावों से लोगों को सुरक्षित स्थान पर ले जाया जा रहा था। एक रात को लगभग २ बजे पानी एक मंजिल की खिड़की तक बढ़ गया/चढ़ गया था। उस रात बाबाजी महाराज ने अपनी अलौकिक शक्ति से हम सबको इतनी गहरी नींद में अचेतन कर दिया था कि हमें कुछ मालूम ही नहीं पड़ा। दूसरे दिन कुछ लोग सुबह-सुबह हमारा हाल-चाल पूछने आये हुए थे। लेकिन हमको बाढ़ की दशा के बारे में कुछ भी पता नहीं था, जानकर आश्चर्य चकित हो गये।

इसी प्रकार एक और घटना भी मेरी जानकारी में है। दामोदर नदी के किनारे सुबलदह गाँव में मेरे देवर, उनकी पत्नी और

उनकी एक साल की बच्ची सभी रहते थे। वहाँ भी बाढ़ का बुरा असर पड़ा था। बाढ़ के जरा सी कम होने पर हमने सुखचर में जाकर बाबाजी महाराज से कहा "बाबाजी, वे लोग गाँव में रहते हैं, उन लोगों का क्या हुआ होगा?" बाबाजी बोले "वहाँ पर मिट्टी से बने हुए सभी मकान दामोदर नदी के प्लावन से गल गये हैं और वहाँ के लोग तुम्हारे मकान पर आश्रय लिए हुए हैं।" तुम्हारे मकान को कोई क्षति नहीं हुई है। बाबाजी के इस आश्वासन से हमारी चिन्ता दूर हो गयी। बाद में जब हम गाँव में गये तो पता चला कि ठीक वैसा ही हुआ था। बाबाजी के इस प्रकार के दूरदर्शन तथा शरणागत को अभयदान देने जैसी अलौकिक क्षमता को देखकर स्पष्ट हो जाता है कि वे एक असाधारण विभूति थे। किसी स्थान पर भाषण देते हुए उन्होंने इस बात का जिक्र भी किया था कि "गुरु परमात्मा, सचमुच ही परमात्मा, स्थूल देह में विराजमान हैं, उनमें और परमात्मा में कोई फर्क नहीं है।"

● श्री श्री गुरुदेव की कृपा ने इसी प्रकार से मेरी एक भयानक विपदा से रक्षा की थी। सन् १९६२ के किसी समय में मैं दो-चार व्यक्तियों को बन्दूक दिखा रहा था। उन लोगों ने मुझसे अनुरोध किया "इसी इटली देश में बनी हुई बन्दूक का इजेक्टर सिस्टम बहुत अच्छा है या नहीं, इसलिए आप बन्दूक से गोली मारकर दिखलायें कि बन्दूक के खुलने के साथ ही गोली अपने आप ही निकल जाती है या नहीं।" मैंने कमरे के बाहर की तरफ मुँह करके चैम्बर में कारतूस मारकर ज्यों ही नली बन्दी की तो फायर होकर गोली निकल आई। गोली की भीषण आवाज से सब लोग काँप उठे। दीवार पर भी छोटा सा छिद्र नजर आया और नीचे ईंटों का टुकड़ा, चूना इत्यादि गिरा हुआ था। आवाज से भयभीत होकर रास्ते के लोग आश्रय के लिए दुकान की ओर आ रहे थे। इनमें दो-चार ग्राहक भी

हो सकते थे। लेकिन दुकानदार लोगों ने डर के मारे दुकान जल्दी बन्द करके ताला लगा दिया था। गेट में भी ताला ठोककर वे लोग सिनेमा देखने चले गये थे।

सिनेमा हाल में बैठकर मैं स्वयं सोचने लगा कि बन्दूक की नली तो पूर्व दिशा की ओर रखी थी, लेकिन फायर होने के साथ-साथ वह बायीं ओर अपने-आप कैसे घूम गयी? जिससे बायीं ओर की दीवार पर चोट आयी। दरवाजे पर लोग बैठे हुए थे और बायीं ओर चेयर पर भी लोग थे। गोली तो सबको ही घायल कर सकती थी, कुछ को तो मार भी सकती थी।

अनेकों भावनाओं के बाद याद आया कि यह सब परमगुरु की कृपा है। मैं समझ गया था कि गुरु कृपा से ही उस होने वाली विपदा से मैं बच गया था, वरना लोगों को गम्भीर चोट या मृत्यु होने के कारण मुझे जुर्माना या जेल भी हो सकती थी। दुकान का लाइसेन्स रद्द भी हो सकता था। श्री श्री गुरुदेव इस प्रकार हमेशा ही मुझपर कृपा करके मुझे बचाते रहे।

• सन् १९४९ में गुरुजी आसाम के परशुराम-तीर्थ-भ्रमण के लिए गए हुए थे। वहाँ से वे शिलाँग आये हुए थे और कृपा करके मेरे निवास स्थान पर श्रीगुरुजी तीन सप्ताह तक रहे। सुबह से रात १० बजे तक दर्शन-प्रार्थियों की कतार लगी रहती थी। गुरुजी के साथ तीन अन्य गुरुभ्राता भी थे, जिनमें से दो अबंगाली थे। रोटी ही उनका स्वाभाविक खाद्य था, लेकिन इन दोनों अबंगालियों ने सब्जी के साथ चावल खाना ही स्वीकार कर लिया था। एक दिन रात को राधा बिहारी दास जी (जो रसोई के जिम्मेदार थे) चावल तथा रोटी दोनों ही बनवायें थे। गुरुजी रात को हमेशा रसोई में ही प्रसाद पाते थे। उस दिन रात को गुरुजी भोग लगाने के बाद रसोई में जाकर प्रसाद पाने के लिए

बैठे हुए थे। राधाबिहारीदासजी ने उनके सामने अन्न तथा व्यंजनादि रखे। थाली में चावल के साथ दो चार रोटियाँ भी रखी हुइ थीं। गुरुजी प्रतिदिन चुपचाप प्रसाद पाकर लौट जाते थे। लेकिन उस दिन राधाबिहारी दासजी से पूछा "क्या श्री श्रीठाकुरजी के भोग में रोटी दी थी?" मेरी दीक्षा लेने के बाद १३-१४ साल बीत गये तभी गुरुदेव ने प्रसाद पाने के समय श्री श्री ठाकुरजी के भोग में क्या-क्या दिया गया है या नहीं दिया गया है, इस प्रकार का कभी कोई सवाल नहीं किया। अतः पहली बार गुरुदेव को इस प्रकार प्रश्न करते सुनकर आश्चर्यचकित हो गया तथा राधाबिहारी दासजी के जवाब के लिए उद्ग्रीव होकर खड़ा रह गया। कमरे का दरवाजा बन्द था, कुछ देखने का उपाय नहीं था, सुनने के अलावा और कोई चारा भी नहीं था। दासजी ने कहा "श्रीश्रीठाकुरजी के भोग में रोटी नहीं दी गयी है।" जवाब सुनकर श्री श्रीगुरुदेव क्रोधित होकर तीव्र स्वर में बोलने लगे "आप साधु बनकर भी लोभ को संयत नहीं कर सके, सिर्फ अपनी पेट की चिन्ता ही आपके मन में रहती है। आप मुझे श्री श्री ठाकुरजी को अनिवेदित भक्ष्य खाने के लिए देने में भी दुविधा नहीं कर रहे हैं।" गुरुदेव मिष्टभाषी और बहुत ही निम्न स्वर में बोलने वाले हैं, लेकिन उस दिन इतने उच्च स्वर से बोल रहे थे कि आस-पास के सभी कमरों से उनकी आवाज सुनाई दे रही थी। बाद में उनकी थाली में से रोटी उठाकर ले जाने के लिए कहा। कर्तव्य में त्रुटि करने पर साधुओं को भी कठोर शासन करने से हिचकते नहीं थे। इसकी मिशाल उस दिन मैंने पहली बार देखी। साधुओं को भगवान् को निवेदन न करके कोई भी वस्तु नहीं खानी चाहिए, यह शिक्षा प्रदान की।

गुरुदेव किसी समय शिलांग में अपने गुरुभाई राधेश्याम वणिक के यहाँ ठहरे हुए थे। एक दिन प्रातः काल जाकर मैंने देखा श्री

श्यामसुन्दर दासजी श्री श्रीठाकुरजी के भोग के लिए खाना पका रहे थे और राधाबिहारी दासजी चुपचाप बगल के एक कमरे में बैठे हुए थे तथा सामने उनके बिस्तर व सामान-समेटा हुआ था। उनके साथ क्या हुआ यह पता लगाने की कोशिश करने पर मुझे ज्ञात हुआ कि श्री श्री ठाकुरजी का भोग पकाने में श्री राधाबिहारी दासजी का कुछ अन्याय युक्त आचरण देखकर गुरुजी क्रोधित होकर, दासजी को शारीरिक प्रहार किया था। सबके सामने प्रहृत होकर दासजी अपमानित महसूस करके गुरुजी के साथ सम्पर्क ही छोड़कर कहीं अन्यत्र जाने के लिए उतारु हो गये थे। वहाँ पर स्थित दूसरे साधु उनको समझाने के लिए राधाबिहारी दासजी को थोड़ी दूरी पर ले गये और उनको चले जाने से निवृत्त किये। श्री श्री गुरुदेव बाल्य या यौवन से ही प्रहार तो दूर की बात किसी से कठोर भाषा भी कभी प्रयोग नहीं किये थे, लेकिन अब शिष्यों के कल्याण के लिए "ब्रजदीप-कठोराणि" नीति अपनाने में भी नहीं हिचकते थे। गुरुदेव के घर में जाकर देखा तो वे स्थिर-धीर और सहास्य प्रशान्त मूर्ति से सबसे सदालाप कर रहे थे। क्षणिक पहले क्रोध से उनकी धैर्यच्युति हुई थी, इसकी कोई भी पहचान उनके श्री मुखमण्डल पर तनिक भी न थी।

● दो साल पहले की बात है। मेरे मँझले लड़के ने वृन्दावन में पूर्णिमा के दिन सस्त्रीक दीक्षा ग्रहण की। बातों-ही-बातों में मैंने राधाकृष्ण दासजी को बताया था कि मेरा तीसरा लड़का शराब पी-पीकर स्वास्थ्य को नष्ट कर रहा है। अभी तक उसकी नौकरी सिर्फ गुरुदेव की कृपा से ही टिकी हुई है। नौकरी से दो महीने का अवकाश दिलाकर, कमरे में बन्द रखकर आदि चेष्टाओं से भी उसको हम शराब पीने से छुटकारा नहीं दिलवा सके। रामकृष्ण जी ने कहा कि सांवताल वासी लोग गुरुजी से दीक्षा लेकर शराब पीना छोड़ चुके हैं।

दूसरों की बात तो छोड़ों। वृन्दावन से वापस लौटने के समय में गुरुजी को प्रणाम करने गया ओर अपनी दुःख की कहानी से गुरुजी को अवगत कराया। गुरुदेव ने मेरी बात बड़े प्यार से सुनी। मेरे तीसरे लड़के को इस बारे में कुछ भी पता नहीं था। मुझे ताज्जुब तब हुआ जब कि अचानक ही उसने शराब पीना छोड़ दी। दिसम्बर के महीने में १५ दिन के अवकाश पर जब वह घर आया तो देखा कि उसके शराब छोड़ने से उसकी तन्दुरुस्ती फिर अच्छी हो गयी है। नौकरी में उसको तरक्की मिल गयी थी। उसके अलावा उसको निर्देश मिला कि वह १८ मई से पहले सुखचर-आश्रम में जाकर दीक्षा-ग्रहण कर ले, लेकिन उसके भाग्य में दीक्षा नहीं लिखी हुई थी। मेरी यह होनहार सन्तान ११ मई को ही अन्तर्हित हो गयी, जिसको सुधारने के लिए मैं सिर्फ राँची पागलखाने में उसे भेजने के अलावा और कुछ भी नहीं कर सका। वह लड़का बाद में गुरुजी की कृपा से सुधर गया था।

● बाबाजी के आविर्भाव-स्थान भड़ागाँव में स्वयं बाबाजी के साथ गुरु-पूर्णिमा त्यौहार मनाने के लिए गया हुआ था। गुरु-पूर्णिमा उत्सव में मैंने जो दृश्यावली वहाँ देखी, वह उससे पहले कभी नहीं देखी तथा जितनी घटनाएँ घटित हुईं, उनसे कम से कम दो घटनाओं को मैं लोगो की दृष्टि में लाना चाहता हूँ।

पूजा समाप्त होने पर मैं भीड़ से किसी तरह से बाहर निकल सका। श्री अजित चक्रवर्ती जो हर वक्त किसी न किसी काम से व्यस्त रहते थे, उनसे दामोदर जी के मंदिर के सामने साक्षात् हुआ। हम कई भक्तों के जोरदार आग्रह के बाद वे बाबाजी के एक अलौकिक दर्शन के सम्बन्ध में बताने के लिए राजी हो गये थे। वे बोलने लगे–

चलने की थकावट से और भोजन न करने की कमजोरी से पीड़ित होकर विश्राम करने की वासना लेकर रात में बाबाजी की

पदसेवा करने की आज्ञा सौभाग्य से मिल गयी थी। बाबाजी तब तक निद्रा में लीन थे। अचानक मन में एक सवाल पैदा हुआ कि यदि सद्गुरु स्वयं भगवान् का स्वरूप हैं तो बाबाजी जरूर भगवान् हैं। अतः उनके पैर के नीचे भगवान् का कुछ-कुछ निशान अवश्य ही होगा। तबतक बिजली चली गयी थी। लालटेन की रोशनी में उनके पदतले कोई चिह्न मेरी नजर में नहीं आया। मुझे खेद हुआ कि मौके का मैं फायदा नहीं उठा सका। मन-ही-मन में बाबाजी की प्रार्थना करने लगा। अचानक ही बाबाजी बोल उठे "अजित देखो तो, मेरे विस्तर में खटमल है क्या?" मैं लालटेन को घुमा-फिराकर देखने लगा। बाबाजी ने तकिए के नीचे से टार्च निकालकर मुझको दी और कहा "अच्छी तरह से देखो।" मैंने देखने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु खटमल मिलने वाली कोई बात नहीं थी। मैंने बाबाजी से कहा "महाराज इतनी साफ सुथरी शय्या में खटमल कहाँ से आयेगा?" बाबाजी के चुप रहने से मैंने सोचा कि वे फिर नींद में हैं, तो फिर से खूब सावधानी से टार्च की रोशनी में कोई भगवद्-चिह्न ढूँढने लगा और प्रार्थना करने लगा "कृपालु बाबा मुझे भगवद्-चिह्न देखने लायक दर्शन-शक्ति दें।" यहाँ तक की कहानी बताकर अजीत भाई भावों में डूब गये। उनके बोलने की शक्ति गायब हो गयी थी। हम सब उत्सुकता पूर्वक चिल्लाना शुरु कर दिया "अजीत दा बताते जाइये न, चुप क्यों हो गये?" थोड़ी देर में उनको हँसी आयी और बोले, "बाबाजी महाराज ने मेरी अभिलाषा पूर्ण कर दी है। मुझे उनको पद तल में स्पष्ट रूप से भगवद्-चिह्न देखने को मिला।" मैंने प्रबल आवेग से पूछा कि वह पद-चिह्न क्या है? अजीत भाई ने काँपते हुए स्वर में कहा "शंख, चक्र, गदा, पद्म और वह कमल रक्त-कमल था।"

महापुरुष अपने आप को हमेशा ही सामान्यरूप से जनता के सामने चलते फिरते हैं और अपनी अलौकिक शक्तियों को छिपाते रहते हैं। सिर्फ जन-शिक्षा के लिए भक्तों की आकुल प्रार्थना पर या आर्तजनों के विनय करने पर कभी-कभी देव-शक्ति का प्रकाश करते हैं। भक्तजनों को दिव्य-दर्शन-दान करके तृप्त तथा आश्वस्त करते रहते हैं। मेरे जैसे दीन भक्त को श्री श्री बाबा की अलौकिक कृपा के और भी विशेष अनुभव हैं, जैसे उनकी एक विपन्ना शिष्या को भिन्न-भिन्न अवसर पर दिव्य दर्शन देकर उपदेशों से, मन्त्रों से रक्षा की। कभी अलौकिक उपायों से वस्त्रदान करके सहायता पहुँचाई। सुखचर-आश्रम में बाबाजी स्वयं किसी शिष्य को बोलते हुए मैंने सुना कि "मेरी फोटो में ही पूजा किया करो, मैं फोटो में ही हूँ।" ऐसी बातें श्री श्री ठाकुर रामकृष्ण देव भी अपने द्वादश-मन्त्र में शिष्यों को कहते थे।

द्वितीय अध्याय
पत्रिका—प्रकाशन

"निम्बार्क दर्शने यस्य प्रभुत्वं नित्यमर्कवत्।
श्रीसन्तदास मार्गं हि उज्ज्वलीकृत्य राजते।।"
"सदैव विजयस्तम्भो न कुतोऽपि पराजयः।
तस्य सुदर्शनादेव पलायन्ते विपद्गणाः।।"

(धनञ्जयदास चरितम्)

लगभग ६५ साल पूर्व श्री श्री बाबाजी महाराज देश-विदेश में विशुद्ध वैष्णवीय सिद्धान्त तथा सनातन-धर्म के प्रचार-प्रसारार्थ श्रीसुदर्शन-पत्रिका का सम्पादन किये थे। उस दिव्य पत्रिका के माध्यम से देश-विदेश में महापुरुषों के जीवन-दर्शन तथा साहित्य का प्रचुर प्रसार हुआ।

सन् १९५२ ई. में निम्बार्क-आश्रम छोड़कर जब वे उत्तराखण्ड में भजन के लिए गये, उस समय इस पत्रिका के सम्पादकत्व का कार्यभार अपने आप छूट गया। उस पत्रिका का सम्पादकत्व का भार ब्रह्मचारी शिशिरकुमारजी के ऊपर सौंपा गया था। ब्रह्मचारी शिशिर कुमार ने भी कई वर्ष तक साहित्य का प्रकाशन करके पत्रिका की शोभा बढ़ाई।

खैर जो भी हो, बाबाजी महाराज ने कलकत्ता में आश्रम-निर्माण कर महापुरुषों के जीवन-चरित्र तथा साहित्य के प्रचारार्थ पुनः एक पत्रिका-प्रकाशनार्थ विचार प्रकट किया। उस समय दादागुरुजी श्री

श्री १०८ स्वामी सन्तदास जी काठिया बाबा महाराजजी का जन्मशताब्दी महामहोत्सव विविध आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक अनुष्ठानों के माध्यम से देश-विदेश में मनाया जा रहा था। श्री श्री बाबाजी महाराज जी की अध्यक्षता में ही सम्पूर्ण कार्यक्रम सम्पन्न हुए, अतः उनकी बड़ी व्यस्तता थी। उन व्यस्तता के मध्य में कुछ समय निकाल एक धर्मसभा का आयोजन किया। उसमें अपने प्रवचन के अवसर पर साहित्य-प्रकाशनार्थ "पत्रिका" की परम आवश्यकता प्रतिपादन करते हुए "वासुदेव" नाम से पत्रिका प्रकाशनार्थ प्रस्ताव रखा। सर्वसम्मति से प्रस्ताव गृहीत हुआ। फलस्वरूप प्रकाशन-कार्य चलता रहा। आज तक लगभग ४० साल बीत चुके, वासुदेव पत्रिका, अपने सुन्दर प्रकाशन से विश्व-साहित्य-समाज में निम्बार्क-दर्शन तथा साहित्य की अनुपम शोभा बढ़ाती आ रही है। एक साधक कवि ने वासुदेव-पत्रिका की प्रशंसा करते हुए कहा है-

"गुरुकृपास्वरूपेयं श्रीवासुदेवपत्रिका।
धर्मार्थमोक्षदात्री च चिदानन्दप्रदायिनी।।१।।"
"ज्ञानविज्ञानसम्पृक्ता परमज्ञानवोधिकां।
संसारवनदावाग्निः भुवि विजयतेतराम्।।२।।"
"द्वैताऽद्वैतमतं लोके लिंगै र्यया प्रदर्शितम्।
सरहस्यं प्रमाणैश्च सर्वसिद्धान्तमूलकम्।।३।।"

श्रीसन्तदास निम्बार्क–दर्शन–समिति का निर्माण

वर्तमान समय में देश की अशान्त परिस्थिति देखकर वास्तविक रूप से सन्तों की दिव्यवाणी के प्रसारार्थ बाबाजी महाराज जी ने देश-देशान्तरों में श्रीसन्तदास निम्बार्क-दर्शन-समिति की स्थापना की। इसकी शाखाएँ देश-विदेशों मे भी फैली हुई हैं। इस समिति द्वारा सार्वजनीन, सार्वकालिक तथा सार्वभौम श्रीनिम्बार्क-साहित्य का सम्यक् प्रचार-प्रसार हो रहा है। इसका उद्देश्य, जनमंगलात्मक कार्यावली एवं संविधान निम्नलिखित है–

Swami Santadas Nimbarka Darsan Samiti
Founded by Shree Swami
Dhananjay Dasji Kathia Baba
Memorandum of Assocition

1- Introductory

Throughout the world today mankind is passing through a state of moral confusion. The very object of its quest for peace and happiness is being thwarted by circumstances it has ereated but cannot control. In this country despair and frustration seem to have settled on the mind of the comon man. To escape from this intolerable situation man must seek and re-discover for himself what the great thinkers and religious teachers of the world have said about the meaning of life and the manner of living it in the realisation of truth, peace and happiness. With this object

in view, SWAMI SANTADAS NIMBARKA DARSAN SAMITI has been founded by Shree Swami Dhananjay Dasji Kathia Baba, Braja-Videhi Mohanta and the Head of four Vaishnava Saampradayas, to bring before the common man the teachings of perennial philosophy showing the way to truth, peace and self-fulfilment. Similar societies under the same name have been founded by him also in other places of the country in Shillong, Karimgunje and Silchar in Assam, in Agartala in Tripura, in Varanasi in U.P., and at Bhara in Bankura district in West Bengal.

The SAMITI includes within its field of quest all the different religious and philosophical systems of the world, but its emphasis is on the Dwaita-Dwaita philosophy propounded by Shree Nimbarkacharya, which, in its view, cn serve as a meeting ground for the different systems of Vedantic thought and also for different religious systems of the world.

The SAMITI is named after Shree Swami Santadasji, one of the great sints of modern India, who was the Braja-Videhi Mohanta and the Head of the Four Vaishnava Smpradaya, and was the Guru of the founder of the SAMITI and the disciple of Shree Swami Ramdas Kathia Baba, the famous Vaishnva saint of Vrindavan, who was in his time the Braja-Videhi Mohanta and the Head of the Four Vishnava Sampradays.

2- The Name of The Association

The name of the Association shall be :

SWAMI SANTADAS NIMBARKA
DARSAN SAMITI : FOUNDED BY
SHREE SWAMI DHANANJAY DASJI
KATHIA BABA

3- The Address of The Registered Office of The Association

The registered office shall be at :

KATHIA BABA ASHRAM,
P.O. SUKHCHAR,
Dist. 24 PARGANAS, WEST BENGAL.

4- The Objects of The Association

The aims and objects of the Association are, in the main, as follows :

(a) To bring to the common man the message of the Vadanta by holding lectures, seminrs and symposia.

(b) To encourage study and investigation of the different religious faiths of the world, incliding all their sects and sub-divisions, and of different schools of philosophy by setting up libraries which shall contin as complete a collection as possible of books, incliding theses, on religious and philosopical subjects published in various languages.

(c) To conduct research on different Vedantic and other religious systems, with a view to establishing the universl truth underlying them.

(d) To render religious and philosophical treatises in one language into other languages for wider dissemination of their ideas.

(e) To undertake publication of works of philosophical and religious interest including periodical journals and to establish and maintain tols, chatuspathis and other educational institutions.

(f) To strengthen nationl integrity by propagating tolernce, love and mutual respect for all religious faiths.

(g) To take measures for the relief of distress and the alleviation of physical suffering and to undertke other

philanthropic work, incliding the establishment of dispensaries and hospitals.

(h) To advise, guide and otherwise collborate with other similr societies established by or under the guidance or inspiration of Shree Swami Dhananjay Dasji Kathia Baba in other places of the country or outside, to co-ordinate their activities in furthernce of the common objects of the societies and generally to act in relation to them as the principl or central society with power to grant affiliation to them.

(i) To do all such things as are ancillary to or in furtherance of, the above objects.

5- The Name of The First Members of The Governint Body

President

1- Dr. Amar Prasad Bhattacharjee, M.A., B.T. D.Phil, Vedanta-Sastri, Kavya-Vedantatirtha.

Vice-Presidents

2- Dr. Bimala Knta Mukherjee, M.A., D.Phil,

3- Shree Kamakhy a Kumar Chakravortty M.A., LL.B., W.B.H.J.S. (Retd.)

4- Shree Kalyan Kumar Sanyal, B.A.

Generl Secretry

5- Shree Jitendra Nath Bose, LL.B.

Secretary

6- Sm. Parbati Sanyal, B.A. (Hons.)

Treasurer

7- Shree Nityananda Mitra

Members

8- Shree Susil kumar Roy, B.Sc., B.Sc. (Engg.) M.I.E.

9- Shree Rabindra Nath Das, M.A.

10- Shree Benoy Krishn Mukherjee, M.A.

11- Shree Narendra Nath Moitra, LL.B.
12- Shree Benoy Madhab Mukherjee, LL.B.
13- Shree Sudhansu Kumar Bose
14- Shree Lalit Kumar Bose, B.A.
15- Shree Debi Prasad Bhattacharjee, M.A.

The names, addresses and occupations of the signatories to the Memorandum :

The following signatories to this memorandum of association, who are some of the disciples, devotees or admirers of SHREE SWAMI DHANANJAY DASJI KATHIA BABA, have applies for the registration of the SWAMI SANTADAS NAMBARKA DARSAN SAMITI: FOUNDED BY SHREE SWAMI DHANANJAY DASJI KATHIA BABA as a society under the West Bengal Societies Registration Act, 1961 : (Name not printed.)

I certify that the above persons signed as signatories to this memorandum of association in my presence.

Jitendra Nath Bose
Member
31-12-69

विभिन्न जनकल्याणात्मक चिन्ताधाराएँ

"पुण्यनामाऽनिशं यस्य ध्रियते वहु मंगलम्।
तन्नाम्नैव केवलं विश्वे जानीहि शुभाष्पदम्।।"
"वैष्णवेषु हि विख्यातो महीरुहवदादृतः।
छायां विस्तीर्य भूभागे श्रान्तिं दीनाय नित्यशः।।"

(धनञ्जयदास चरितम्)

श्रीश्रीबाबाजी महाराज ने विश्व-कल्याण-हेतु सैकड़ों मठों का निर्माण, दर्शों-समितियों की स्थापना तथा विविध भाषा में निबद्ध पच्चीसों पुस्तकें लिखी हैं। देश-विदेशों मे फैले हुए इन मठों तथा आश्रमों के माध्यम से सनातन वैदिक धर्म, निम्बार्क-दर्शन, साहित्य तथा महापुरुषों के अमृतमय उपदेशों का सम्यक् अनुशीलन हो रहा है। भक्तों मे वैष्णव दर्शन-साहित्य को पढ़ने की रुचि उत्तरोत्तर बढ़ रही है। फलस्वरूप हजारों की संख्या में भक्तवृन्द वैष्णवीय मन्त्रों से दीक्षित हो रहे हैं। सनातन हिन्दू-धर्म की जागृति हो रही है। यही सब श्री श्री बाबाजी महाराज का ही अविस्मरणीय अवदान है। उन्होंने श्री श्री रामदास काठिया बाबाजी के पुण्यनाम से कई ग्रन्थालय बनवाये, जिनमें लाखों की संख्या में विश्व की सभी भाषाओं में विविध धर्माचार्यों की लिखित ग्रंथावली उपलब्ध है। इससे सनातन-धर्म के प्रति अनुराग सभी को बढ़ रहा है। निर्मित समितियों तथा पुस्तकों के द्वारा महती सम्प्रदायिक समुन्नति हो रही है, जो किसी को अविदित नहीं। श्रीश्री बाबाजी महाराज जैसी विभूति तथा महामहिम सत्पुरुष इस धरातल में

विरल ही आर्विभूत होते हैं। वे निम्बार्क-सम्प्रदाय के स्तम्भ हैं। ऐसे अद्वितीय योगीवर परम पुरुष का शतशः अभिनन्दन है। श्रीश्री बाबाजी महाराज की कीर्ति तथा तपः प्रभाव को देखकर किसी विद्वान् ने लिखा है –

"जयति धनञ्जय देवजू ब्रजमण्डल सिरमौर।
घोर तपस्वी विज्ञवर हरिरस चिन्तन भौंर।।"
"सोई पधारे आज इत तपस्विन के सिरमौर।।
दर्शन कर पावन भये इच्छा रही न और।।"

श्रीश्रीबाबाजी महाराज द्वारा लिखित पुस्तकों में से कुछ अनुपम पुस्तकों के नाम निम्नलिखित हैं –

क- श्री निम्बार्क वेदान्त संक्षिप्त सार

ख- अर्धरात्र वेधवाद

ग- श्री रामदास काठिया बाबाजी का जीवन चरित्र

घ- श्री सन्तदास काठिया बाबाजी का जीवन चरित्र

ङ- श्री निम्बार्क दर्शन तथा उनकी साधन प्रणाली (कई खण्डों में)

च- शरणागतवत्सल श्री भगवान्

छ- सद्धर्मतत्त्वविद् इत्यादि अनेकों पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जो निम्बार्क-सम्प्रदाय तथा सनातन सद्धर्म की महिमा तथा गरिमा को उत्तरोत्तर देश-विदेशों में फैला रही हैं। कविवर ने सही फरमाया है –

शास्त्रात्मा द्विजवंशजा सुमतीं विद्यां परां चापरां,
लब्ध्वा योगबलात् करामलकवच्छ्रीसन्तदासाद्गुरोः।
ग्रथ्नाति क्षितिभूतये श्रुतिशिरः सद्ग्रन्थरत्नानिह,
ततस्मै भागवतोत्तमाय महते कृष्णात्मने मे नमः।।

स्मारिका एवं ग्रन्थ विमोचन–समारोह

ज्ञानप्रचारककरुणोज्ज्वलचारुभासं,
भक्तिप्रवाहरसवाहिनदप्रकाशनम् ।
मन्ये पुरातनमुनिं नवनामपूतं,
श्रीमद् धनञ्जयमलौकिकसत्त्वभूतम् ।।
(धनञ्जयदास चरितम्)

श्रीश्रीबाबाजी महाराज ने सन् १९७७, २७ अगस्त को श्री "श्रीजी" मन्दिर वृन्दावन में साधु-सन्त एव धर्माचार्यों की समुपस्थिति में अखिल भारतीय विराट् सनातन धर्म-सम्मेलन-स्मारिका-ग्रन्थ एवं श्री "श्रीजी" महाराज श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ निम्बार्क तीर्थ सलेमावाद द्वारा विरचित "श्रीस्तवरत्नाञ्जलि" ग्रन्थ का विमोचन किया था। तदुपरान्त कुछ दिन पश्चात् उन्होंने डॉ० श्री नारायण दत्त शर्मा विरचित "श्री निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि" ग्रंथ का भी मथुरा में अनुष्ठित धर्मसभा में विविध विद्वान् धर्माचार्यों के समक्ष विमोचन किया। इन सब दिव्य शास्त्रीय आयोजनों का विस्तृत विवरण श्री निम्बार्काचार्य पीठ निम्बार्क तीर्थ सलेमावाद द्वारा प्रकाशित पाक्षिक पत्र 'श्रीनिम्बार्क' में इस प्रकार वर्णित किया गया :-

चतुःसम्प्रदाय श्रीमहन्त श्रीधनञ्जयदासजी महाराज
(काठियाबाबा) के करकमलों द्वारा
अ० भा० विराट् सनातन धर्म-सम्मेलन स्मारिका-ग्रन्थ का
विमोचन-समारोह

द्वितीय श्रावण शुक्ला चतुर्दशी शनिवार दिनांक २७.८.७७

के दिन के ४ बजे से ७ बजे पर्यन्त स्थान-श्री 'श्रीजी' मन्दिर वृन्दावन में अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज अध्यक्ष अखिल भारतीय श्री निम्बार्काचार्यपीठ निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) राजस्थान के तत्त्वावधान में अखिल भारतीयनिम्बार्काचार्य पीठ में सुसम्पन्न अ० भा० विराट् सनातन धर्म-सम्मेलन की'स्मारिका' नामक ग्रन्थ रत्न का विमोचन श्रीव्रजविदेही चतु:सम्प्रदाय श्रीमहन्त श्रीधनञ्जय दासजी महाराज तर्क-तर्क तीर्थ (काठियाजी) के कर-कमलों द्वारा सानन्द सम्पन्न हुआ। इसमें सर्व प्रथम वृन्दावन के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० श्रीबलरामजी मिश्र द्वारा मधुर स्वरोंमें सुललित मंगलाचरण होने के पश्चात् समारोह के स्वागताध्यक्ष बाबा श्री माधुरीदासजी, अली-माधुरी कुटी, रमणरेती वृन्दावन द्वारा इस समारोह के मुख्य अतिथि श्रीकाठियाजी महाराज को माल्यार्पण हुआ। तदनन्तर अधिकारी श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदान्ताचार्य पंचतीर्थ ने अखिल भारतीय विराट् सनातन धर्म सम्मेलन एवं उसके 'स्मारिका' नामक ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय दिया। तत्पश्चात् समारोह में उपस्थित निम्न विद्वानों के प्रवचन हुए।

पण्डित प्रवर श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी एम.ए., पी.-एच.डी. लिट् वैष्णव युनिवर्सिटी वृन्दावन, पं० श्रीश्यामसुन्दरजी संगीताचार्य, आचार्य श्रीकिशोरीरमणजी, पं. श्री वैद्यनाथजी झा एम.ए. न्याय-व्याकरण-वेदान्ताचार्य प्रधानाचार्य श्रीनिम्बार्कसंस्कृत महाविद्यालय वृन्दावन, बाबा श्रीहरिशरणजी शास्त्री दर्शनविभागाध्यक्ष श्रीनिम्बार्क विद्यालय वृन्दावन, आदि विद्वानों द्वारा सनातन धर्म सम्मेलन का देखा सुना हाल एवं उसकी महत्ता पर प्रकाश डाला गया। इसके पश्चात् इस आयोजन के मुख्य अतिथि श्रीव्रजविदेही चतु:सम्प्रदाय श्री महन्त श्रीधनंजयदासजी (काठियाबाबा) का ग्रन्थ-विमोचन सम्बन्धी प्रवचन हुआ। अन्त में आचार्य (जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज) ने शुभाशीर्वाद

प्रदान करते हुए उक्त सम्मेलन की समस्त रूपरेखा का दिग्दर्शन कराते हुए इसी प्रकार भविष्य में भी एक "वैष्णव-सम्मेलन" होने का प्रस्ताव रखा। जिसका समर्थन आचार्य श्रीकिशोरीरमणजी ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में किया। ग्रन्थ-विमोचन-समारोह का सभा-संचालन अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के प्रचार मन्त्रीएवं श्रीनिम्बार्क पाक्षिक पत्र के प्रधान सम्पादक पं० श्रीगोविन्ददासजी 'सन्त' धर्मशास्त्रीपुराणातीर्थ अजमेर ने बड़ी ही कुशलता पूर्वक किया।

•

ब्रजविदेही चतुःसम्प्रदाय श्रीमहन्त श्रीधनन्जयदासजी महाराज (काठियाबाबा) का

"श्रीस्तवरत्नावलि" ग्रन्थ-विमोचन पर हृदयोद्गार

अनेक दिन पूर्व से ही जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' महाराज द्वारा प्रेषित समाचार मुझे मिला कि "श्रीस्तवरत्नान्जलि" ग्रन्थ का विमोचन-कार्य मेरे द्वारा सम्पन्न होना है। किन्तु इन दिनों मेरा स्वास्थ्य विशेष खराब रहा। अर्श इत्यादि व्याधि की भयंकरता के कारण बैठना मेरे लिये अत्यन्त दुष्कर था, व्याधि की चिकित्सा भी चल रही थी, इसलिये मैंने कहा विमोचन-समारोह में उपस्थित होने में मैं असमर्थ हूँ। लेकिन श्रीसर्वेश्वर प्रभु की इच्छा है। मैं कल से उनकी कृपा से कुछ बैठने में समर्थ हुआ। कल आचार्य श्री का जब आश्रम पर पधारना हुआ एवं श्रीमाधुरीदासजी भी आये तब केवल १० मिनट तक ही मुझे उपस्थित होने के लिए कहा। श्री जी महाराज ने तो केवल ५ मिनिट तक ही समय देने को कहा। यद्यपि स्वास्थ्य ठीक नही है फिर भी मैंने समारोह में उपस्थित होने की अपनी सहमति प्रकट कर दी एवं अब आप सब सन्त-महन्त-महानुभाव एवं विद्वत्वसमाज के सम्मुख उपस्थित हो गया। कल आचार्य श्री मुझे एक

"श्रीस्तवरत्नान्जलि" की प्रति दे आये थे, मैंने उसका संक्षेप में अवलोकन किया, अवलोकन करने पर मुझे अतिशय आनन्द हुआ।

श्रीजी महाराज का जब श्रीनिम्बार्काचार्य-पीठ पर पट्टाभिषेक हुआ और इनके श्रीगुरुदेव महाराज का जो भण्डारा हुआ, उस समय निमन्त्रण-पत्र मेरे पास भी आया। यद्यपि उस समय मेरे जाने की सम्भावना नहीं थी, लेकिन पं. श्रीअमोलकरामजी शास्त्री की विशेष प्रेरणा पर आचार्य पीठ (सलेमाबाद) पहुँचा। जब अभिषेक हुआ तब श्रीजी महाराज की १३-१४ वर्ष की आयु थी। कुछ लोग उस समय आपकी बाल्यावस्था देखकर प्रणाम करने में संकोच कर रहे थे तब मैंने उस समय साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और मैंने कहा कि उन्हें यह अपनी आचार्यगद्दी है, सामने आचार्य स्थित हैं यदि प्रणाम नहीं किया तो आचार्यों का क्या गौरव रखते हो? आचार्यों के सामने सब नीचा है। बालक बैठे हैं तो क्या वे आचार्य नहीं? साक्षात् आचार्य हैं। मेरे द्वारा इस प्रकार साष्टांग-दण्डवत् तथा इस प्रकार कहे जाने पर जो बड़े-बड़े सन्त-महन्त विद्वत्समूह एवं अनेक जज-साहब आदि ने साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम किया।

इस तरह उस समय का इतिहास याद होरहा है। उसी अवसर पर एक "सर्वेश्वर-संघ" बनाया गया, जिसका सबने मिलकर मुझे सभापति बनाया। जिस संघ में सर्व सम्मति से यह निश्चय हुआ कि आप श्रीजी महाराज को अभी साथ में श्रीवृन्दावन ले जाइये और इनके अध्ययनादि का समग्र प्रबन्ध करिये। सभी के संकेतानुसार श्रीजी महाराज को मुझे यहाँ ले आना पड़ा, तत्काल अपने संग ही ले आया और लगभग तीन चार वर्ष यहाँ (श्रीवृन्दावन) रहे। मेरी तो इच्छा थी कि और कुछ अधिक दिन रहें ताकि अच्छी तरह से न्याय, वेदांत इत्यादि सबमें पूर्ण विद्वान् बनें, लेकिन जो भी हुआ चार वर्ष में उसका

जो यह फल देखता हूँ, उससे बहुत कुछ हुआ है, ये योग्य बने हैं। देश-विदेश में सब जगह अपने सम्प्रदाय का प्रचार निरन्तर कर रहे हैं। कुम्भ-मेलों में जो निम्बार्क नगर का निर्माण होता है, वह तो समस्त भारत के गौरव का विषय है। इस विषय में मैं और विशेष क्या कहूँ। श्रीसर्वेश्वर प्रभु इनका स्वास्थ्य अच्छा रखें, बहुत दीर्घजीवी रहकर संसार में कल्याण करें, यही मेरी प्रार्थना है। श्रीसर्वेश्वरजी के पास पुनः मैं ज्यादा क्या कहूँ। ग्रन्थ-विमोचन हुआ है, इसको सभी पढ़ें, आनन्द-लाभ करें यही मेरी इच्छा है। मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। यह जो "श्रीस्तवरत्नान्जलि" जिसकी आपने रचना की है, इससे खूब आनन्द मुझे मिला, जो कुछ थोड़ी सेवा की थी। मैं तो सर्वेश्वरीजी का एक तुच्छातितुच्छ सेवक हूँ........(अत्यन्त गद्गद अवरुद्ध कण्ठ से)........लेकिन इस सेवा का फल देखकर मुझे जो आनन्द मिला, उसकी सीमा नहीं है।

पूर्वाचार्यों ने जिस प्रकार-

किंच किंचिदिहविद्यते न हि
त्वां विनाऽण्वपि तथाऽखिलेश्वर।
नेति नेति च निषेधिताश्रय-
स्तद्विशेषविषयोऽपि सम्मतः॥

अर्थात्-हे अखिलेश्वर आपकेबिना इस जगत् में एक अणु मात्र वस्तु भी नहीं है, जो कुछ है सब तुम्हीं हो और ये जो ज्ञानमार्गी इस प्रकार कहते हैं 'नेति-नेति च निषेधिताश्रयः' ये जो 'नेति-नेति' भगवान् को कहते हैं, स्थूल-सूक्ष्म जगत् इत्यादि से अतीत हैं भगवान्। यह बात ठीक है, वे अतीत हैं। वे अतीत भी हैं और जो कुछ है तुम ही हो, वे ही हैं। "तद्विशेषविषयोऽपि सम्मतः" उससे भी अधिक निषेध का विशेष विषय जो है, स्थूल-सूक्ष्म सम्पूर्ण जगत् यह भी तुम ही हो।

यथार्थ में इन स्तोत्रों की कितनी बड़ी महिमा है, स्तोत्र के एक श्लोक में ही सम्पूर्ण वेदान्त की मीमांसा प्रतिपादित कर दी है। इस प्रकार श्री 'श्रीजी' महाराज ने "श्रीस्तवरत्नान्जलि" का जो प्रणयन किया है, वह अति श्रेष्ट है। आचार्य का बनाया हुआ स्तोत्र का मूल्य असाधारण है, अमूल्य है। इस ग्रन्थ को सब पढ़ें और समझें और उसके उपदेशों के अनुसार उनकी स्तुति करते रहें। यही मेरी प्रार्थना है और ज्यादा क्या कहूँ। मैं बैठने में दुःख पाता हूँ। कैसे कहूँ। सभी भक्तजन इस "श्रीस्तवरत्नान्जलि" ग्रन्थ से परम लाभान्वित हों।

डॉ० श्री नारायण दत्त शर्मा-विरचित "श्री निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि" नामक ग्रन्थ ब्रजविदेही महन्त व चतुःसम्प्रदाय श्रीमहन्त श्री श्री १०८ स्वामी धनञ्जयदासजी काठिया बाबाजी महाराज के करकमलों मे सादर समर्पित–

समर्पण

अनन्त श्रेष्ठ कर्म के प्रेरक, सद्वृत्ति की प्रतिमूर्ति, दया, त्याग, औदार्य, वैदुष्य प्रभृति शुभगुणों के आकर, श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के सुदृढ़ स्तम्भ, अखण्ड ब्रह्मचर्य, दिव्य तपोमूर्ति, स्वनामधन्य ब्रजविदेही महन्त एवं चतुःसम्प्रदाय **श्रीमहन्त श्री श्री १०८ स्वामी धनञ्जयदास काठिया बाबाजी महाराज,** तर्क तर्क व्याकरणतीर्थ, गुरुकुलमार्ग वृन्दावन में करकमलों में सादर समर्पित।

नागरिक अभिनन्दन

सन् १९७८ ई. में उपकुलपति श्री श्री जीव न्यायतीर्थ कलकत्ता की अध्यक्षता में मथुरा नगरी में एक विराट् सनातन धर्म सभा का आयोजन किया गया। उसमें अनन्त साधना एवं शास्त्र की प्रतिमूर्ति, अनुग्रह, क्षमा, वैदुष्यादि आर्षगुणानुरंजित-ब्रजविदेही श्री महन्त श्री श्री १०८ स्वामी धनञ्जयदासजी काठिया बाबाजी महाराज के श्री चरणों में मथुरावासियों ने निम्न रूप अभिनन्दन प्रस्तुत किया–

अनन्त साधना और सद्धर्म की प्रतिमूर्ति, अनुग्रह, क्षमा, वैदुष्यादि आर्षगुणानुरंजित व्रजविदेही महन्त एवं चतुःसम्प्रदाय के श्रीमहन्त श्री श्री १०८ स्वनामधन्य धनंजयदासजी काठिया बाबाजी महाराज तर्क तर्क व्याकरण तीर्थ के कर कमलों मे सादर समर्पित

अभिनन्दन-पत्र

परम श्रद्धेय !

निम्बार्क-सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि शोध-ग्रन्थ के विमोचनार्थ भगवान् श्री नन्दनन्दन की जन्मपुरी श्री मथुरा नगरी में आपके पदार्पण के शुभ अवसर पर हम यहाँ के निवासी अपने को परम गौरवान्वित अनुभव कर रहे हैं। वैष्णव सम्प्रदायों में सबसे प्राचीन इस सम्पदाय की व्रज को अनन्त देन रही है, जिससे ब्रज-मण्डल की, "महिमण्डल कौ सरवस" संज्ञा है। सम्प्रदाय के प्रचार आप जैसे तपोनिष्ठ संत एवं आचार्यों के आविर्भाव और उनकी आर्ष-चरितावली से ही संभव हो सकता है।

परम दैवी विभूति रूप !

व्रज विंदेही महन्त की पावन पदवी से अलंकृत, प्रभु की महिमा एवं दैवी विभूति सम्पन्न, भक्तिकी प्रपूर्तिवत् आपका आविर्भाव लोक कल्याण निमित्त हुआ है। उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा, आसाम आदि देशों के विभिन्न प्रदेशों में आपके द्वारा संस्थापित मठ-मन्दिरों एवं प्रचारित भगवदोपदेश असंख्य भक्तजनों के अनवरत कल्याण के नित्य साधन हैं।

महामनीषी !

जिस प्रकार ज्ञान, परमार्थ चिंतन एवं दुष्कर मन्त्र साधन में आपकी सफलता अभूतपूर्व रही है; वैसे ही आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत स्थित आपकी विचित्र गुण मण्डित चरितावली भी है। साम्प्रदायिक दर्शन एवं तत्वचिंतन के आप शीर्षस्थ विद्वान् नैयायिक, तर्क शास्त्री और ग्रन्थकार हैं। श्री निम्बार्काचार्य उनका दार्शनिक मतवाद और साधना प्रणाली निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यगण की उपदेशावली-पाँचभाग, निम्बार्क पद्धति, वेदान्त कामधेनु भाष्य, निम्बार्क वेदान्त का संक्षिप्तसार, सद्धर्मतत्वदीप, अर्द्धरात्र वेधवाद, प्रभृति २५ साम्प्रदायिक ग्रन्थों से आपने हिन्दी एवं बंगला भाषाओं के कोष को भरा है। इस देश के तत्त्व-विचारकों की परंपरा केआप एक जाज्वल्यमान नक्षत्र है।

निम्बार्क सम्प्रदाय के सुदृढ़ स्तम्भ !

निम्बार्क सम्प्रदाय में उपदिष्ट एवं साधन तत्त्व गृहीत वृन्दावन भावोपासना, व्रज परिक्रमा, अर्द्धरात्र वेधवाद (व्रत-प्रणाली), महात्मा स्वभूरामदेवाचार्य, कन्हरदेव, चतुरचिंतामणि नागाजी महाराज द्वारा अनुचरित साधना-भक्तिआपकी परंपरा में व्याप्यव्यापक रूप से अनवरत अनुकरणीय रही है। सम्प्रदाय के महामण्डलेश्वर जगद्गुरुवर्तमान श्रीश्रीजीमहाराज श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी की शिक्षा-दीक्षा से

लेकर उनके गाद्यारूढ़ होने तक उनके संरक्षक-रूप में आपने सम्प्रदाय की महान् सेवा की है। सर्वतोभावेन सम्प्रदाय की प्रगति, विरोध-विच्छेद से उसकी सुरक्षा और बाह्य आघातों के सुरक्षक होने से आप उसके सुदृढ़ स्तम्भ माने जाते हैं।

धन्य श्री धनञ्जयदास !

वृन्दावन सुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण को मन में धारण किये दिवानिशि आनंदित, भक्ति और ज्ञान की समन्वयभूमि से सुमण्डित प्रियतनु, क्षमा और प्रेम-संश्लिष्ट भक्तजन के कल्याण चिन्तन में चिरन्तन समाहित चित्त स्वामी श्रीधनन्जयदासजी महाराज हम पर इसी प्रकार नित्य कृपा बनाये रखें, प्रभु से हमारी यही मंगल कामना है।

●

● महात्मा श्री धनंजयदासजी काठियाबाबा की जय

(१)

जयति धनंजय देव जू ब्रज मंडल सिरमौर।
घोर तपस्वी विज्ञवर हरिरस चिंतन भौंर।।
हरिरस चिंतन भौंर बौर भक्ति उपवन के।
गहन ज्ञान गंभीर मनीषी साधक मन के।।
मुदित मुकुन्द उदार, धरत अनुभव परमात्मा।।
ब्रज मंडल के विमल विभूतीरूप महात्मा।।

(२)

त्यागी तपसी तेजमय दिव्य ज्ञान के धाम।
कठिन साधना भक्तिव्रत सेवत रूप ललाम।।
सेवत रूप ललाम ललित ब्रजचंद किशोरी।
रस लीला प्रत्यक्ष बसत उर सुंदर जोरी।।
ब्रज में बाबा काठिया पूर्ण प्रताप प्रसिद्ध।
भक्ति गगन के चंद्रमा सब सिद्धन में सिद्ध।।

दोहाः- सोई पधारे आजइत तपसिन के सिरमौर।
दर्शन कर पावन भये इच्छा रही न और।।

●

नीराजनः

● सद्गुरु अनन्त श्री ब्रजविदेही महन्तश्री
धनञ्जयदासजी महाराज काठियाबाबा

जय जय जय जग वंदित
करुणामय स्वामी !
जय जय जय वीतराग, जयति सरस सानुराग
सुभगरूप अति अनूप, धन्य नाम-नामी !
जय जय जय
जय अभेद भेद सहित, तदपि अखिल भेद रहित
जय प्रपूर्ण, पूर्णकाम, जय अन्तर-यामी !
जय जय जय
काठ जटित काय देश-सोई कौपीन शेष
राजत तव देहे, जय मौनी, मुनि, स्वामी !
जय जय जय
शरणागत परित्राण-राम धाम पथ प्रयाण
देहि दयासिंधु, दीनबंधु पद नमामी !
जय जय जय
ओं-भेदाभेद प्रवृत्ताय भेद वर्ज्याय भूयसे
धनञ्जयाय धन्याय ब्रह्मलक्ष्यभिदे नमः

तृतीय अध्याय:

दिव्य उपदेश

पीयूषयूषकणवर्षिमहोपदेश-
पानोत्सवव्रतरताखिलशिष्यवृन्दैः ।
सद्भक्ति मार्ग परिपालनशक्तिमद्भिः,
लेलिह्यमानचरणं तमिहानतोऽस्मि ।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

श्रीश्रीबाबाजी महाराज समय-समय पर त्रितापदग्ध जीवो के लिए जो उपदेश देते थे, उसी का सारांश निम्नलिखित है-

सुबह और सांयकाल दोनों समय शुद्ध होकर आसन में बैठकर इस नाम को जप करना। कर में या माला में जप करने की विधि सीख लेना। दोनों समय जप करने के बाद भी और दूसरा समय यानी चलते-फिरते, खाते-सोते हर समय जप करने का अभ्यास करना। जप करने के समय आसन पर बैठकर सर्व प्रथम मस्तक पर तालू के नीचे ठीक बीच में जो सहस्र दल पद्म है, जिसको सहस्रार कहते हैं, उस पद्म के ऊपर मस्तक के भीतर ही सूर्य की तरह ज्योति है। उस पद्म के ऊपर ज्योति के मध्य में श्री गुरुदेव सम्मुख होकर प्रसन्न वदन दण्डायमान् हैं, ऐसी भावना ध्यान में रखकर के और उनको अपने मनमें प्रणाम कर आत्म समर्पण करके यह प्रार्थना करना कि "हे गुरुदेव ! तुम यह कृपा करो जो मैं तुम्हारा दिया हुआ नाम तन्मय होकर जप कर सकूँ एवम् हर समय अपने को श्री भगवान के

साथ मिला सकूँ और उनके और अपने बीच में कोई पार्थक्य का ज्ञान न रहे।" ऐसा करने के पश्चात् फिर श्री गुरुदेव के ध्यान का प्रयोजन नहीं है। इसके बाद भौंरे के मध्य भाग में भगवान् का चरण हैं, ऐसी भावना लेकर पीछे की ओर (श्री गुरुदेव की ओर) मुख कर श्री श्री राधाकृष्ण प्रसन्न वदन तथा ज्योतिर्मयमूर्ति में दण्डायमान हैं, इसी भावना को लेकर ध्यान व आत्म-समर्पण करना और उनके निकट यही प्रार्थना करना कि "हे भगवान ! मुझे शक्ति दो जो कि मैं तन्मय होकर तुम्हारा नाम जप सकूँ और प्रत्येक नाम जप करने के साथ मेरा शरीर, मन, प्राण, आत्मा तुम्हारे में मिला सकूँ और तुमसे पार्थक्य-ज्ञान लुप्त होता रहे। उसके बाद श्री श्री राधाकृष्ण के चरणों में मन स्थिर कर यह नाम एकके बाद दूसरा जप करते रहना एवम् प्रत्येक मन्त्र-जप के साथ-ही-साथ अपने को आहुति देते रहना, जैसे कि अग्नि में मंत्र द्वारा घृताहुति दी जाती है। अग्नि में घृताहुति देने से अग्नि जैसे की घृत को अपने में मिला लेती है या अपने जैसा बना लेती है, वैसे ही तुमको भी भगवान् अपना लेते हैं, यह भावना हृदय में लाओगे। इस तरह जप करते-करते जब तुम अपने को सम्पूर्ण रूप से श्रीभगवान् में मिला दोगे, जब तुम में और परमात्मा में कोई पार्थक्य-बोध नहीं रहेगा, तब उस अवस्था को समाधि कही जायेगी। समाधि को प्राप्त होने से श्रीभगवान् दर्शन देते हैं। लेकिन इस समाधि को कोई भी शीघ्र प्राप्त नहीं कर सकता है। धीरे-धीरे अभ्यास करते-करते यह अवस्था प्राप्त होती है। नाम में शक्ति है। यदि तुम स्वयं दृढ़ होकर के इसी तरह अपने को उनके साथ मिलाने का अभ्यास करो, तो धीरे-धीरे उस अवस्था को प्राप्त होते रहोगे। अपने स्वभाव और शक्ति को हर समय निर्मल बनाये रखना। पिता, माता, स्वामी को और पूजनीय लोगों की भक्ति करना और उन लोगों के

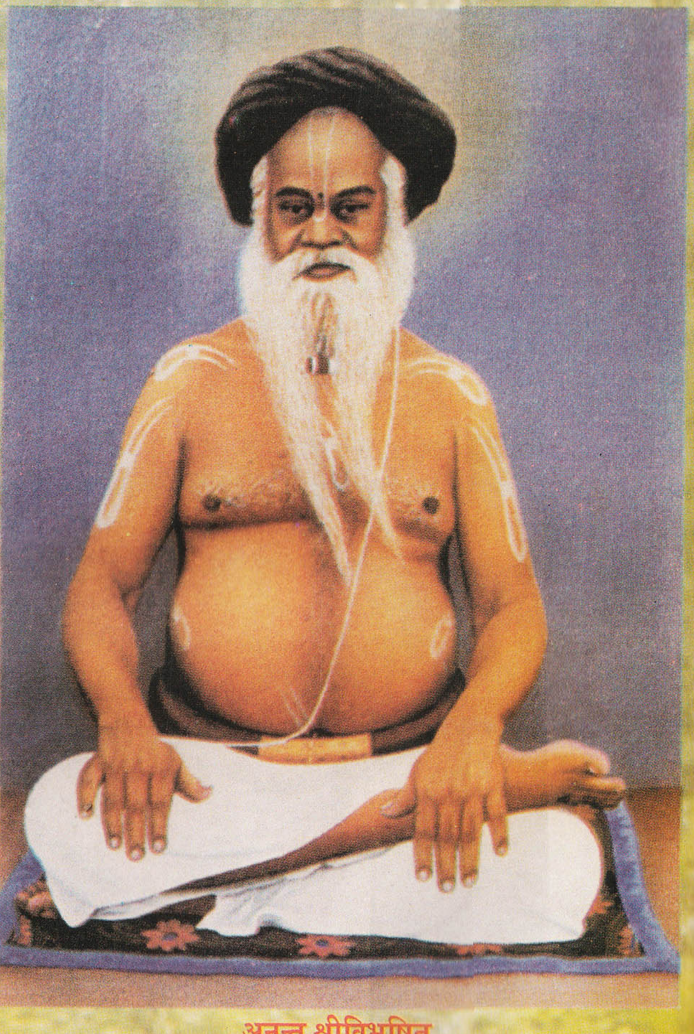

अनन्त श्रीविभूषित

स्वामी धनंजयदास काठिया बाबाजी महाराज

आदेश को हमेंशा मानकर चलना। इस समय से तुम श्री भगवान् का दास या दासी हो गये, ऋषिकुल में भी तुम्हें आश्रय दिये हैं। उन लोगों की दृष्टि हर समय तुम्हारे ऊपर रहेगी। कोई चिन्ता या भय नहीं करना, लेकिन तुम्हारा यह शरीर जो श्री भगवान् में अर्पित हो चुका है, इसे हमेशा पवित्र रखने का कोशिश रखना।" यथा –

● १. भगवत्स्मरण करके ही प्रतिदिन जीवन व्यतीत करें।

२. जप, तप साधनों की अपेक्षा प्रतिक्षण भगवत्-स्मरण करने से उनकी शीघ्र प्राप्ति हो सकती है।

३. गुरुनिष्ठ एवं गुरुदेवात्मक शिष्य का प्रारब्ध-कर्म गुरु-कृपा से ही मिट जाता है।

४. बीती हुई बातों पर चिन्ता न करें। अपराध हो जाने पर सरल एवं निष्कपट भाव से गुरुदेव के समक्ष क्षमा-प्रार्थना करें, गुरुदेव उसके अपराध को अवश्य क्षमा करेंगे।

५. श्रीभगवान् और गुरुदेव के प्रति आत्म-समर्पण करना सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है।

६. गुरुदेव के प्रति आत्मीय सर्व वस्तु का समर्पण करने से साधक सर्वथा निश्चिन्त और निर्भय रहता है।

७. श्रीभगवान् तथा गुरुदेव के प्रति परम अनुरक्ति एवं शरणागति ही साधक को भगवत्कृपा का आकर्षण कराने में सक्षम है। भगवद्-दर्शन गुरु-कृपा से ही सम्भव है।

८. श्रीभगवच्चरणकमल में आत्मसमर्पण ही सर्वोपरि साधना है। यही यथार्थ शान्ति का मार्ग है।

९. श्रीगुरुजी जो कुछ दें या उपदेश करें, वह अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल, उसे अवश्य ग्रहण करना चाहिये।

१०. श्रीगुरुजी को आत्मसमर्पण कर, उनके निर्देशानुसार चलो, जीवन-यात्रा में अक्षय कीर्ति की प्राप्ति होगी।

११. समस्त कर्तव्य-पालन करते हुए, ईश्वर में भरोसा रखो।

१२. भगवदिच्छा से घटने वाली घटना से सन्तुष्ट रहो।

१३. दूसरे को क्षमा करने का अभ्यास करो। उससे भगवान् तुम्हें क्षमा करेंगे।

१४. जो बीत गया, उसे सोचो नहीं।

१५. इस जड़ देह में मोह-आसक्ति त्याग करो।

१६. ज्ञान के बिना भक्ति नहीं होती है।

१७. बिना सोच-विचार के श्रीगुरुजी को नहीं त्यागना चाहिये।

१८. सभी अवस्थाओं में अपने को धीर-स्थिर रखने का अभ्यास करो।

१९. दुःख व वेदना उसी की ही देन है, ऐसा समझने का अभ्यास करो।

२०. मन को चंचल मत करो।

२१. दूसरे के अपराध को ग्रहण न करना।

२२. अपना कर्तव्य करते रहो, उसकी अवहेलना मत करो।

२३. बुरे कर्मों से मन को हटा लो।

२४. क्रोध शत्रु है, उससे दूर रहो।

२५. मन में संशय न रखो।

२६. मनमुखी गोवारा गुरुमुखी भगवत् प्यारा।

२७. मन स्थिर हो या न हो, जप समय से करते रहो।

२८. संयमित वचन बोलना चाहिये।

२९. सबसे प्रेमभाव में बोला करो, क्योंकि सब के अन्दर ईश्वर का ही निवास है।

३०. अपनी प्रशंसा में प्रसन्नता तथा निन्दा मे द्वेष-भाव सर्वथा त्याग करना।

३१. काम और क्रोध को वश में रखो।

३२. शरण में आये व्यक्ति की रक्षा करो।

३३. किसी जीव के प्रति द्वेष-हिंसा न करो।

३४. सत्संग मोक्ष का कारण है।

३५. गुरुजी में जड़-मानव बुद्धि न रखो।

३६. भविष्य की बात सोचकर मन में अशान्ति न लाओ।

३७. उसके द्वारा काम ढंग से नहीं हुआ देखकर नीरवता से उस काम को सम्पन्न करना ही सेवा-भावना है।

३८. किसी स्थिति में हताश न होना चाहिये।

३९. जागतिक किसी परिस्थिति मे अशान्त चित्त न होना।

४०. दूसरे की निन्दा करके स्वयं बड़े बनने की चेष्टा न करो।

४१. श्रीगुरुदेव ही भगवान् हैं, ऐसा समझने की चेष्टा करना, अभ्यास करना।

४२. निरन्तर ईश्वर-चिन्तन हेतु समय व्यतीत करने का अभ्यास करें।

४३. अनर्थक बातों में समय व्यतीत न करें।

● मानवमात्र के लिए दीक्षा की परम आवश्यकता है। बिना दीक्षा से मन्त्रजप दूषित होता है, अतः पहले दीक्षा का विषय-निरूपण किया जा रहा है। दीक्षा से दिव्य ज्ञान-लाभ और पापक्षय होता है। सभी आश्रमों में ही दीक्षा की प्रयोजनीयता है। दीक्षा ही जप, तप-प्रभृति कार्यों का मूल है, दीक्षा के बिना जप-तप आदि नहीं हो सकते हैं। दीक्षित न होकर जप-पूजादि करने पर वह सब पाषाण में रोपित बीज के जैसा निष्फल हो जाता है, दीक्षा-विहीन व्यक्ति को सिद्धि या सद्गति लाभ नहीं होता। अदीक्षित व्यक्ति नरक में गमन करते हैं, उनका पिशाचत्व

नहीं दूर होता है, अतएव गुरु से दीक्षा-ग्रहण करें। सद्गुरु के पास से यथाविधि दीक्षित होने पर क्षणकाल में ही लक्ष उपपातक और कोटि-महापाप नष्ट हो जाते हैं। गुरु के पास दीक्षित न होकर ग्रन्थ में मन्त्र-प्रदर्शन पूर्वक उस मन्त्र के ग्रहण से सहस्र मन्वन्तर में भी अव्याहति (मुक्ति) नहीं है। अदीक्षित व्यक्ति तपस्या, नियम, व्रत, तीर्थगमन या शारीरिक परिश्रम से भी कोई कार्य सिद्ध नहीं कर सकता। अदीक्षित व्यक्ति का मन्त्र विष्ठासम और जल-मूत्र-तुल्य है। तत्कृत श्राद्ध एवं उसके उद्देश्य में दूसरे के द्वारा किया गया श्राद्ध दोनों ही अधोगमन के कारण होते हैं। अतएव सद्गुरु से दीक्षित होने के उपरान्त ही सभी कर्म करना चाहिए।

• दीक्षा सम्बन्ध में गौतमीय तन्त्र में इस प्रकार कहा गया है कि–

"ददाति दिव्यभावं यत् क्षिणुयात् पापसन्ततिम्।
तेन दीक्षेति विख्याता मुनिभिस्तन्त्रपारगैः।।"

जिससे दिव्य भाव उद्भूत हों एवं पाप समूहों का क्षय हो, उसे ही तन्त्र-शास्त्र-विशारद मुनिगण दीक्षा नाम से अभिहित करते हैं।

दीक्षा-ग्रहण करने पर कण्ठी-माला और तिलकादि अवश्य ही धारण करे एवं आहार सम्बन्ध में कुछ विधि-निषेध का भी पालन करें। जैसे मांस, अण्डा, प्याज, लहसुन, मद्य इत्यादि का आहार निषिद्ध है। नाम-ग्रहण में इसके पालन करने में विशेष बाधा नहीं है। अतः जो उक्त नियम-पालन में असमर्थ हैं, उनको पहले भगवत्-नाम दिया जाता है। नाम-जप करते-करते चित्त क्रमशः निर्मल होने पर जब बाहर की निन्दा-स्तुति के प्रति लक्ष्य नहीं रह जाता और सब नियमादि पालन के लिए अन्तर्मन प्रस्तुत हो जाता है, तब मनुष्य दीक्षा-ग्रहण का अधिकारी होता है और तभी उसको दीक्षा दी जाती है। दीक्षा से विशेष गुरुशक्ति

का संचार होता है, नाम से तद्रूप नहीं होता; एवं दीक्षा में शिष्य को श्रीभगवान् के चरणों में सम्पूर्ण रूप से समर्पित किया जाता है, तब वह भगवान् का दास हो जाता है। अर्थात् घृत की जैसे अग्नि मे आहुति देते हैं, वैसे ही गुरु शिष्यरूप घृत को ब्रह्मरूप अग्नि में आहुति प्रदान करता है। अग्नि में घृत की आहुति देने पर जैसे अग्नि उस घृत को सम्पूर्ण रूप में आत्मसात कर लेती है, फिर घृत को उस अग्नि से लौटा नहीं सकते हैं, तद्रूप ब्रह्मरूप अग्नि में शिष्य रूप घृत की गुरु द्वारा आहुति देने पर भगवान् उसको सम्पूर्ण रूप से आत्मसात् कर लेते हैं, तब शिष्य का और कुछ स्वातन्त्र्य नहीं रह जाता है एवं वह शिष्य भगवदीय हो जाता है। द्वादश अंगों मे गोपी चन्दन से तिलक तब शिष्य को धारण करना पड़ता है और कण्ठ में तुलसी की कण्ठीमाला आवश्यक हो जाती है। इसके अलावा दीक्षा-ग्रहण करने पर विशुद्ध आहार करना पड़ता है। भगवत्-प्रसाद को छोड़कर और कुछ भी आहार ग्रहण नहीं कर सकते हैं। जो व्यक्ति ये सब नियम-पालन करने में असमर्थ या अनिच्छुक हैं, उनको दीक्षा देने पर उस नियम का पालन न करने के लिए उनका विशेष अपराध और पाप होता है। इसलिए उनके कल्याण के निमित्त गुरु उनको पहले नाम देते हैं। बहुत से लोग कहते हैं कि बाहर लोगों को दिखाने के लिए तिलक करने का प्रयोजन है, यह कपटाचार है। हृदय भाव-शुद्ध रहना ही जरूरी है, किन्तु वे प्रकृततत्त्व को नहीं जानते हैं, अतः ऐसा कहते हैं। प्रकृततत्त्व यह है कि दीक्षा होने पर यह देह सम्पूर्ण रूप में भगवान् में समर्पित हो जाता है, तब इस देह को सर्वदा पवित्र रखना पड़ता है। गोपीचन्दनादि से तिलक और तुलसी की कण्ठी इत्यादि धारण करने पर शरीर सर्वदा पवित्र रहता है। देह के द्वादश स्थानों में जो तिलक करते हैं, उसका तात्पर्य यह है कि देह के उन द्वादश स्थानों में गोपीचन्दन से मन्दिर

प्रस्तुत करते हैं एवं उनके अन्दर मन्त्र से बिन्दु देकर भगवान् को बैठाते है (इसी को तिलक कहते हैं), उसके कारण भगवान् देह के चारों ओर रहकर आश्रित जन की सर्वदा सर्वावस्था में रक्षा करते हैं। अधिक क्या, उस आश्रित जन का तिलक देख करके उसे भगवान् का दास समझकर भूतप्रेतादि में से भी कोई कुछ भी अनिष्ट नहीं कर पाता। इतना ही नहीं, उसका स्पर्श यमराज तक करने का साहस नहीं करते। इस बारे में एवं इसके फल के सम्बन्ध में शास्त्रों मे बहुत उपदेश हैं, कुछ यहाँ बता रहे हैं–

काशी-खण्ड में उक्त है कि यमराज ने स्वयं अपने दूतों से कहा है–

दूता ! श्रृणुत यद्भालं !गोपीचन्दनलाञ्छितम्।
ज्वलदिन्धनवत् सोऽपि दूरेत्याज्यः प्रयत्नतः।

हे दूतगण ! मेरी बातें सुनो; जिसका ललाट गोपीचन्दन से चिन्हित होता है, वह प्रज्वलित अग्नि जैसा है, उसे तुम सब छोड़ देने के लिए बाध्य हो।

पद्म-पुराण में उक्त है कि–

"मत्पूजा होमकाले च सायं प्रातः समाहितः।
मद्भक्तो धारयेन्नित्यमुर्द्धपुण्ड्रं भयावहम्।।"

भगवान् कहते हैं मेरे भक्त प्रातःकाल और सायंकाल यमदूतादि के लिए भयप्रद उर्द्धपुण्ड्र नित्य धारण करें। विशेषतः मेरी पूजाहोमादि के समय तिलक अवश्य ही धारण करें।

गरुड़-पुराण मे देवर्षिनारद जी ने गोपीचन्दन के तिलक के सम्बन्ध में ऐसी उक्ति की है–

"यो मृत्तिकां द्वारावतीसमुद्भवां
करे समादाय ललाटके बुधः।

करोति नित्यं त्वथ चोर्द्धपुण्ड्रकं
क्रियाफलं कोटिगुणं सदा भवेत्।
श्रद्धाविहीनं यदि मन्त्रहीनं-
श्रद्धाविहीनं यदि कालवर्जितम्।
कृत्वा ललाटे यदि गोपीचन्दनं
प्राप्नोति तत्कर्मफलं सदाऽक्षयम्।।"

जो विवेकी पुरुष नित्य द्वारावती समुद्भूत गोपीचन्दन हाथों में लेकर (घिसकर) उससे उर्द्धपुण्ड्र (तिलक) धारण करता है, उसका क्रियाफल सर्वदा ही कोटि गुण युक्त होता है।

यदि क्रिया (पूजादि) विषय में अभिज्ञता रहे, क्रिया का मन्त्र न जाने, श्रद्धा भी वैसी न रहे एवं यथाकाल में यह कृत न होवे तो भी यदि ललाट में गोपीचन्दन का तिलक करके क्रिया करते हैं, तब वे सदा ही उस क्रिया का फल प्राप्त करते हैं।

पद्मपुराण मे यह भी उक्त हुआ है कि-

उर्द्धपुण्ड्रविहीनस्तु सन्ध्याकर्मादिकं चरेत्
तत्सर्वं राक्षसं सत्यं नरकं घोरमाप्नुयात्।।
गोपीचन्दनसंपर्कात् पूतो भवति तत्क्षणात्।
गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो दृष्टश्चेतदघं कुतः।।

उर्द्धपुण्ड्र (तिलक) धारण न करके सन्ध्याकर्मादि करने पर उसे राक्षस ग्रहण करते हैं एवं वे कर्ता घोर नरक में गमन करते हैं, यह निश्चित सत्य है। और जो गोपीचन्दन का तिलक धारण करता है, वह तत्क्षण पवित्र हो जाता है। इतना ही नहीं गोपीचन्दन का तिलक जिन्होंने धारण किया है, उनके दर्शन से भी दर्शक का पापक्षय होता है।

तुलसी की कण्ठी माला धारण करने के सम्बन्ध में शास्त्र-वाक्य निम्न उद्धृत कर रहे हैं :-

पद्म और स्कन्धपुराण में उक्त हुआ है कि–

"यज्ञोपवीतवत् धार्य्या सदा तुलसीमालिका।
नाशौच धारणे तस्या यतः सा ब्रह्मरूपिणी।"

तुलसी माला (कण्ठी) यज्ञोपवीत की जैसी सदा कण्ठ में धारण करें। यह तुलसी-माला ब्रह्मस्वरूपिणी है, इसलिए इसके धारण में अशौच नहीं होता अर्थात् जो कण्ठ में तुलसी की कण्ठीमाला धारण किया रहता है, वह सदा पवित्र होता है।

नारद पाञ्चरात्र में है–

"अशौचे चाप्यनाचारे कालाकाले च सर्वदा।
तुलसीमालिकां धत्ते स याति परमां गतिम्।।"

काल में, अकाल में, अशौच-काल में अनाचार काल में सभी समय तुलसीमालिका जो धारण करते हैं, वे परमागति लाभ करते हैं। विष्णु-धर्म में स्वयं भगवान् को उक्ति भी इसी प्रकार ही है जैसे–

"तुलसीकाष्ठमालाञ्च कण्ठस्थां बहते तु यः।
अप्यशौचो ह्यनाचारो मामेवैति न संशयः।।"

भगवान् ने स्वयं कहा है–जो सर्वदा अशौच और अनाचार अवस्था में भी तुलसी माला कण्ठ में धारण करते हैं, वे मुझे ही प्राप्त होते हैं, कोई संशय नहीं है।

स्कन्धपुराण में कहा गया है कि प्रेतराज (यम) दूतगण तुलसी काष्ठ की माला दूर से देखकर ही नाश को प्राप्त होते हैं–

"तुलसीकाष्ठमालां तु प्रेतराजस्वदूतकाः।
दृष्ट्वा नश्यन्ति दूरेण वातोद्भूतो यथा रजः।।"

जैसे सरकार के चापरास-युक्त (निशान) युक्त व्यक्ति को देखकर सभी कोई पहचान सकते हैं कि ये सरकार के लोग हैं। इनके प्रति किसी प्रकार का अन्यायपूर्ण व्यवहार करने पर सरकार यह

अन्याय अपने प्रति किया गया है, ऐसा समझकर उसके लिए कठोर दण्ड दिया करती है। इसलिए सरकारी पोपाकादि और चापरास-युक्त व्यक्ति के प्रति कोई भय से किसी प्रकार अन्याय करने का साहस नहीं करता है, किन्तु उसी व्यक्ति के यदि शरीर में सरकारी चापरास न रहे, तब उसके प्रति कोई भी अन्याय का व्यवहार कर सकता है, तब वह अन्याय-व्यवहार सरकार अपने प्रति नहीं समझती। इस स्थल पर तिलकादि को तद्रूप ही विश्वनियन्ता जगदीश्वर का चापरास समझना होगा।

परमधाम वास

शून्ये वेदमितेऽब्दविंशतिशते सम्बत्सरे वैक्रमे,
वैशाखेऽसितपक्षलोकसुतिथौ चन्द्रात्मजे वासरे।
राधामाधवयोर्धनञ्जय इतो लीलां प्रविष्टोऽधुना,
आयातः समयोऽतिदुस्तर महानस्तं गतो भास्करः।।
शोकार्त्ता सकला वयं हरिजनाश्चिन्तातुराः साधवः,
अन्तर्धानकृते न दुःखवरणं स्याद्‌त्सवोत्सावरम्।
वैकुण्ठाद् वितरन्नकुण्ठ शुभदाशीर्वादराशिं सदा,
दासः श्रीलधनञ्जयो विजयतां जीवोच्चयश्रेयसे।।

(धनञ्जयदास चरितम्)

सरलता की प्रतिमूर्ति, परमत्यागी, योगीवर सनातन धर्म जगत् के कुलपति, ब्रह्मज्ञमहापुरुष, श्री श्री बाबाजी महाराज का सन् १९८३, ११ मई को सुखचर-आश्रम में परमधाम वास हो गया था।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज जी का आविर्भाव व तिरोभाव दोनों ही लीलामय ही था। जगत् में विशेष कार्य हेतु ऐसे साधकाग्रणण्य महापुरुष अवतरित होते हैं तथा कार्यों की निष्पत्ति होने पर स्वधाम पधारते हैं। यही सनातन परम्परा है–"कुर्याद्विद्वान् तथासक्तश्चिकीषुर्लोक संग्रहम्।" श्रीश्रीबाबाजी के परमधामवास का संवाद सुनते ही देश-विदेशों के विद्वान्, मनीषी, साधु-सन्त, श्रीमहामण्डलेश्वर, धर्माचार्यों को हार्दिक वेदना हुई, जो स्वान्तर्वेद्य विषय है। उनके अभाव में निम्बार्क-दर्शन एवं साहित्य-जगत् की एक अपूरणीय क्षति हुई, जो सर्वथा अपूरणीय ही रहेगी। बाबाजी के गोलोकवास होने से असहनीय वेदना प्रकट करते

हुए बहुत विद्वानों ने मुझे आवेगपूर्ण पत्र दिया था, जो अभी दुस्प्राप्य हो गया है। उनके स्वधाम पधारने पर श्री ब्रजवल्लभ शरणजी अधिकारी श्री श्रीजी कुंज ने वेदनापूर्ण पत्र में लिखा है कि निम्बार्क-सम्प्रदाय के जाज्वल्यमान सूर्य का आज अस्त हो गया–"आयातः समयोऽतिदुस्तर महान् अस्तं गतो भास्करः।" फिर लिखते हैं–

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय वैदिक सनातन धर्म की महान् विभूति का अन्तर्धान

श्रीवृन्दावन धाम के सिद्ध बाबा रामदास काठियाजी के शिष्य परम यशस्वी तपोमूर्ति विविध भाषा निष्णात बाबा श्रीसन्तदासजी महाराज की गद्दी को समलंकृत करने वाले "ब्रजविदेही चतुःसम्प्रदायी श्रीमहन्त श्रीधनञ्जयदासजी महाराज तर्क-तर्क तीर्थ काठिया बाबा" विगत ११ मई ई. सन् १९८३, वैशाख कृष्ण १४ गुरुवार वि. सं. २०४० को सायंकाल के समय नित्यलीला में प्रविष्ट हो गये। आप लगभग ८२ वर्ष के थे। आपने आचार्य जीवनियाँ, निम्बार्क वेदान्त का संक्षिप्त सार आदि कई एक ग्रन्थों की रचनायें की और उनका प्रकाशन कराया। वृन्दावन, सुखचर, काशी आदि कई एक स्थानों में आश्रम बनवाये। सहस्रों भक्तों को वैष्णवी (निम्बार्क-सम्प्रदाय की) दीक्षा देकर भगवत्-अभिमुख किया।

यद्यपि कुछ वर्षों से आप अस्वस्थ रहते थे तथापि कुशल चिकित्सकों के प्रयास से आपको स्वास्थ्य लाभ हो गया था और विगत कार्तिक मास में श्रीनिम्बार्क जयन्ती के अवसर पर जब उन्हें आमन्त्रित करने गया तो मुझे आशा हो रही थी कि अभी आपके द्वारा और भी लोक-कल्याण होगा।

किन्तु काल की गति नहीं जानी जा सकती। आपके अन्तर्धान हो जाने से निम्बार्क-समप्रदाय वैष्णव-धर्म ही क्या सनातन-धर्म की एक ऐसी अपूरणीय क्षति हो गई है, जिसका वर्णन करना भी अशक्य है।

आप जितने बड़े विद्वान् मनीषी थे, उससे अधिक आप में सरलता कूट-कूटकर भरी हुई थी। शास्त्र-चिंतन में, भगवद्-भजन में आपका समग्र जीवन परम पावन बन गया था। स्वभाव में परम शान्त, शास्त्रों में अबाध गति, भगवद्-भक्ति में प्रगाढ़ निष्ठा, यह सब कुछ गुण आप में अविरुद्ध भाव से विद्यमान थे। आज आपके अभाव से सारा वैष्णव समाज शोकाकुल है। नित्यलीला प्रविष्ट आपकी शाश्वत आनन्दानुभूति के लिए हम श्रीसर्वेश्वर प्रभु से मंगल प्रार्थना करते हैं। उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि प्रकट करते हुए सम्पादक 'श्रीनिम्बार्क' निम्बार्काचार्य पीठ निम्बार्कतीर्थ सलेमाबाद लिखते हैं-

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की परम विभूति

श्रीकाठिया बाबा महाराज का परमधाम वास

पश्चिम बंगाल के बांकुड़ा जिलान्तर्गत भडा ग्राम में चक्रवर्ती कुलोत्पन्न श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के स्तम्भ, न्याय और वेदान्त के प्रकाण्ड विद्वान् सन्त सेवा परायण, वृन्दावन, काशी, सुखचर (कलकत्ता) आदि अनेक नगरों में स्थानों के निर्माता तथा अनेक ग्रन्थों के लेखक, ऐसी परम विभूति व्रजविदेही चतुःसम्प्रदाय श्रीमहन्त श्रीधनंजयदासजी काठिया बाबा महाराज का दि. ११.५.८३ ई. को सायंकाल ७ बजकर २० मिनट पर कलकत्ता स्थित भगवती गंगाजी के पावन तटवर्ती सुखचर स्थान पर ८२ वर्ष कीअवस्था में परमधाम वास हो गया। आपकी धाम-प्राप्ति से श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की अपूरणीय क्षति हुई है। आचार्यजी को ज्यों ही तार द्वारा आपके नित्य-लीला प्रवेश का समाचार मिला, महती संवेदना हुई। तत्काल ही एक विशाल शोक-सभा का आयोजन कर श्रद्धांजलि समर्पित की गई। श्रद्धांजलि-समर्पण-कर्ताओं की नामावली इस प्रकार है-

पं. श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय, पं. श्रीपरशुरामजी व्याकरणाचार्य, पं० श्रीविश्वामित्रजी व्यास, वैद्य पं० श्रीलक्ष्मीनारायणजी

शास्त्री निम्बार्कतीर्थ, डॉ० श्रीरामप्रसादजी शर्मा एम.ए. पी.-एच.डी. किशनगढ़, सेठ श्रीघनश्यामजी सूत वाले जयपुर, प्रभृति महानुभावों ने अपने प्रवचनों द्वारा उनके गुणों का वर्णन करते हुए श्रद्धांजलि अर्पित की। अन्त में पू. आचार्य श्री ने श्रीकाठिया बाबा महाराज के व्यक्तित्व, कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए इस अपूरणीय क्षति पर संवेदना प्रकट की।

आचार्य श्री ने श्रीकाठियाजी के व्यक्तित्व के अनुरूप विशिष्ट आयोजन द्वारा उत्सव समारोह मनाने का निर्देश प्रदान किया। श्री आचार्यपीठ और आचार्यश्री के प्रति श्रीकाठिया जी की प्रगाढ़ निष्ठा व अनुरक्ति रही है। पूज्य आचार्यश्री ने कहा कि आज उनके अभाव से सबको महान् शोक हुआ है। श्रीसर्वेश्वर प्रभु से मंगल कामना करते हैं कि आपके अनुयायी समस्त वैष्णव-समाज आपकी प्रेरणा का अनुसरण करते हुए उनकी आकांक्षाओं को सम्पन्न करने में सक्षम हों।

हम आचार्य पीठस्थ विद्वद्-सदस्य एवं 'श्रीनिम्बार्क' परिवार नित्यलीला प्रविष्ट उनकी शाश्वत दिव्यानुभूति के लिये श्रीसर्वेश्वर प्रभु से मंगल कामनापूर्वक सश्रद्ध संवेदनात्मक श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर सम्प्रदाय सदा सर्वदा ऋणी रहेगा।

साथ ही साथ उनके उत्तराधिकारी श्री महन्त श्रीरासबिहारी दासजी महाराज से हम आशा करते हैं कि आपकी समस्त रीति-नीति का उत्तरोत्तर परिपालन करने की आप भरपूर चेष्टा करेंगे।

निम्बार्क सम्प्रदाय के एक विशेष विद्वान् स्वोद्‌गार प्रकट करते हुए लिखते हैं-

महापुरुषों के जन्मजात संस्कार किसी न किसी शक्ति से समन्वित होते हैं। जिस शक्ति के द्वारा वे बड़े से बड़े कार्य को भी सहज ही पार करते हुए सर्व साधारण जीवों के हृदय-पटल पर अपने दिव्य एवं आदर्शवाद (चरित्र) को अंकित कर देते हैं। भयंकर भवाटवी में भ्रमित (भूले-भटके) जीवों को भगवत्प्राप्ति का मार्ग प्रदर्शन करना ही

उनका दैनिक कार्य है। यही उनके आदर्शमय जीवन का मुख्य ध्येय है, जिसमें सदैव उच्चतम विचारों का प्रवाह प्रवाहित होता रहता है।

जिस महापुरुष का सर्वांगीण प्रकाश हुआ है, जो अपनी सारी शक्ति लोक-कल्याण के लिये खर्च करने को सदैव कटिबद्ध हैं, ऐसी ही विभूति सर्वमान्य और आदर की पात्र हो सकती है। ऐसे सर्वश्रेष्ठ, सद्‌गुण सम्पन्न, त्यागी, महाविभूति युक्त महापुरुषों मे सर्व श्री अनादि निवृत्ति पथ-प्रवर्तक उभय वेदान्त निष्णात आचार्य प्रवर जगद्‌गुरु श्रीमत्स्वभूरामदेवाचार्य परम्परानुवर्ती व्रजदूलह श्रीचतुरचिन्तामणिदेवाचार्य (श्रीनागा जी) महाराज परम्परागत बीतराग तपोनिष्ठ परमहंस बाबा श्रीरामदासजी काठिया चरणाश्रित श्रीसन्तदासजी काठिया बाबा के पाद-पद्‌माश्रित व्रजविदेही चतुःसम्प्रदाय श्रीमहन्त श्रीधनञ्जयदासजी महाराज तर्क-तर्क तीर्थ (काठिया बाबा) नया स्थान काठिया गुरुकुल रोड़ वृन्दावन थे।

आप चतुःसम्प्रदाय के मूर्धन्यतम मनीषी तथा सिद्ध पुरुष महात्मा थे। आपका व्यक्तित्व एवं कृतित्व परम महान् रहा है। शास्त्रों में उनका जितना अगाध वैदुष्य था, उसी प्रकार भगवद्‌भक्ति और सम्प्रदाय निष्ठा के भी वे प्रतिमूर्ति थे। उनमें अनेक सिद्धियाँ थी। भारत के विभिन्न प्रांतों में हजारों ही की संख्या में आपके वरिष्ठ शिष्य हैं, जिनमें अधिकांशतः कालेजों के प्रोफेसर, वकील, वैरिष्टर, डाक्टर और जज आदि बुद्धिजीवी महानुभाव हैं। आकाशवाणी के सुप्रसिद्ध कलाकार (नवीन-नवीन तर्जों के उत्पादक) भारत विख्यात स्व. श्री एस. के. वर्मन बम्बई आप ही के परम कृपा पात्र थे, जिनके पुत्र श्री राहुलकुमार वर्मन हैं।

व्याकरण, न्याय, वेदान्त और आंग्ल भाषा के धुरन्धर विद्वान् होते हुए भी आपमें सरलता नम्रता, व्यवहार कुशलता, निरभिमानिता, सादगी और मिलनसारी आदि सभी सद्‌गुणों की परम विशेषता थी।

वि.सं. १९४४ में श्रीवृन्दावन के कुंभावसर पर आपको अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' श्री बालकृष्णशरणदेवाचार्यजी महाराज ने एक पत्र लिखा था, जिसका तात्पर्य यह था कि जिस प्रकार नक्षत्र मण्डल और उसके अधिपति चन्द्रमा से आकाश की शोभा है तथा आकाश से चन्द्र और नक्षत्र मण्डल की शोभा है, ठीक उसी प्रकार से श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की शोभा एवं सम्प्रदाय से आपकी शोभा है। ऐसे २ कई एक उद्धरणों में आपकी विशेषताओं का उल्लेख है, वह पत्र कई बार आपने वर्तमान आचार्यश्री को बताया है।

वि.सं. २००० के ज्येष्ठ शुक्ला २ को जब अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' श्रीबालकृष्णशरणदेवाचार्यजी महाराज का भण्डारा महोत्सव हुआ, तब पीठ की ओर से विशेष आमन्त्रित होकर आप (श्रीकाठियाजी) का श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ पधारना हुआ था। वर्तमान जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज पीठासीन हुए, उस समय आपकी आयु १४ साल की ही थी। नाबालगी होने के कारण स्थान पर ट्रस्ट नियुक्त हुआ। ट्रस्ट में (१) महन्त श्रीराधिकादासजी भागवत भूषण स्थान हस्तेड़ा किशनगढ़ रेनवाल (जयपुर), (२) महन्त श्रीगंगाशरणजी महाराज स्थान-स्थल सूर्य पोल उदयपुर और (३) ठा. सा. श्रीभैरवसिंहजी ठि. खेजड़ला जोधपुर थे।

उसी समय सर्व सम्मति से 'श्रीसर्वेश्वर-संघ' नामक एक संस्था की स्थापना भी हुई और उसे किशनगढ़ स्टेट से रजिस्टर्ड भी करवा दिया था। उसके सभापति ब्रजविदेही चतुःसम्प्रदाय श्रीमहन्त श्री धनञ्जयदासजी काठिया न्याय वेदान्त भूषण, तर्क-तर्कतीर्थ श्रीनिम्बार्काश्रम वृन्दावन हुए।

इसी समय आचार्यश्री के अध्ययन सम्बन्धी चर्चा चलने लगी, तो सर्व सम्मति से यही निर्णय हुआ कि आप ही (श्रीकाठियाजी) के संरक्षकत्व में अर्थात् देखरेख में आचार्यश्री का अध्ययन श्रीवृन्दावन धाम में ही हो।

श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के ट्रस्टी महानुभाव तथा अधिकारी वर्ग के परस्पर सत्परामर्शानुसार आपने वृन्दावन पधारकर सर्व प्रथम श्री 'श्रीजी' की बड़ी कुञ्ज में ही निवास करते हुए कुछ दिन अध्ययन कियां तत्पश्चात् श्रीमहन्त श्री धनञ्जयदासज महाराज (श्री काठियाजी) की देखरेख में मन्दिर श्रीदावानल बिहारी (दावानल कुण्ड, वृन्दावन) में निवास करते हुए व्याकरण, न्याय-वेदान्तादि का विधिवत् अध्ययन किया। इस प्रकार सं. २००० से वि.सं. २००४ पर्यन्त आचार्यश्री का अध्ययन-काल श्री काठिया बाबाजी के संरक्षकत्व में ही सम्पन्न हुआ था।

आपका आचार्यपीठ में पधारना वर्तमान जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज के पीठासीन होने के समय से तथा एक बार वृन्दावन से पूज्य आचार्यश्री के अध्ययन-काल के बीच किसी मीटिंग में इस प्रकार दो बार ही आपका पधारना हुआ था। अभी-अभी कुछ दिन पूर्व जब आप अस्वस्थ अवस्था में चल रहे थे? तब आपके स्वास्थ्य-लाभ हेतु पू. आचार्यश्री ने अ. भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) में श्रीस्वामीजी महाराज को तपस्थली में कई एक विद्वानों द्वारा एक अनुष्ठान भी करवाया था।

श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ में दो बार आने के बाद एक बार आपका श्रीमनोहरदासजी, श्री जानकीदासजी आदि के साथ में अजमेर कायस्थ मोहल्ला श्रीचारभुजाजी के मन्दिर तथा मेयो कालेज प्राचीन मन्दिर के महन्त श्रीरामकृष्णदासजी महाराज ने अपने गुरुदेव महन्त श्रीदेवादासजी महाराज का भण्डारा महोत्सव किया था, उस पर पधारना हुआ था। श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' महाराज तथा उदयपुर, किशनगढ़, रेनवाल, जैतारण एवं अन्य स्थानों से अनेक सन्त-महन्त महानुभावों का भी पधारना हुआ था। उस समय, श्री 'श्रीजी' महाराज के तत्त्वावधान में कायस्थ-मोहल्ला अजमेर में एक महती सभा के बीच में आप स्वयं ने वेदान्त-विषयक मार्मिक प्रवचन

किया और श्रीजानकीदासजी से श्रीनिम्बार्क-वेदान्त पर इंग्लिश में प्रवचन करवाया था।

इसी प्रकार मेवाड़ मण्डलेश्वर स्थलाधीश महन्त श्रीगंगादासजी महाराज, उदयपुर द्वारा आयोजित एक वृहत्समारोह में भी विशेषरूप से आमन्त्रित होकर जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज का श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ से एवं वृन्दावन से श्रीकाठियाबाबाजी का उदयपुर पधारना हुआ था।

मुझे तो जब-जब आपके दर्शनों का सौभाग्य मिलता था, तब-तब कुशल मंगल परिप्रश्न के पश्चात् यही कहा करते थे कि 'सन्त' जी ! आपने सम्प्रदाय की बड़ी भारी ठोस सेवा की है। आपने सम्प्रदाय के सिद्धान्त-परिजात की सरल हिन्दी-भाषा में छोटी-छोटी पुस्तक लिखकर श्री निम्बार्क-ग्रन्थ-माला द्वारा जन साधारण भक्तजनों का बड़ा ही उपकार किया है–संस्कृत के ग्रन्थ और उनकी टीकायें तो विद्वानों की वस्तु है। अतः जन साधारण को इन सरल हिन्दी भाषा में लिखित पुस्तकों से बड़ा ही लाभ होगा। यदि बंगाल के विद्वान् बंगाली भाषा में, गुजरात के विद्वान् गुजराती भाषा में तथा आने वाले विद्वान् तत्तत्स्थानीय भाषाओं में इस परिज्ञान का प्रचार-प्रसार करें तो सहज ही में राष्ट्र की बड़ी भारी सेवा हो सकती है। आज आपका देहान्त होने से हमारी महती वेदना हुई। विश्व जगत् में आपकी कीर्ति का कीर्तन हो–कीर्तियस्थ सः जीवति।

श्रीबाबाजी महाराज के परमधामवास के एक महीना बाद देश के अनेकों विद्वान्, साधु-सन्त, महामण्डलेश्वर, मण्डलेश्वर तथा पूज्य धर्माचार्यों की समुपरिस्थति में विशाल धर्मसभा का आयोजन हुआ था, श्री काठिया बाबा का स्थान, गुरुकुल रोड, वृन्दावन में। विविध आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न हुए थे। जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नरूप था–

परम वन्दनीय श्री १०८ व्रजविदेही चतुःसम्प्रदायी श्रीमहन्त धनञ्जयदासजी महाराज तर्क तर्क तीर्थ काठियाबाबाजी के दिव्यधाम प्राप्ति के उपलक्ष्य में विश्व कल्याणार्थ स्मृति-समारोह के-

विभिन्न कार्यक्रम

दि. २७.६.८३ — प्रातः ८ से १ बजे तक श्रीमद्भागवत पूजन पाठ व वरण माहात्म्य, सायं ४ से ६ बजे तक कथा भागवत प्रवचन (व्यासासन को डा० श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी सप्ताचार्य अलंकृत करेंगे), रात्रि ८ बजे से रासलीलानुकरण।

दि. २८.६.८३ — प्रातः ८ से १ बजे तक प्रतिदिन श्रीमद्भागवत कथा, भागवत पाठ पारायण, मन्त्र-नाम जप, ब्रह्मसूत्र निम्बार्कभाष्य दशश्लोकी, नारद भक्तिसूत्र और श्रीकृष्ण स्तव, युगलशतक, महावाणी आदि के पाठ समाज-गान आदि। सायं ५ बजे अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री श्रीजी महाराज के कर-कमलों द्वारा वैष्णव-सम्मेलन का उद्घाटन होगा और यह कार्यक्रम ३० जून तक चलता रहेगा, स्वागत-भाषण महामण्डलेश्वर श्रीरामदासजी शास्त्री चारसम्प्रदाय करेंगे।

दि. १.७.८३ — प्रातः, मध्याह्न पूर्ववत्। सायं ५ से श्रीनिम्बार्क-सम्मेलन।

दि. २.७.८३ — सायं ५ बजे से ब्रज वृन्दावन के विशिष्ट विद्वानों का सम्मेलन तथा संस्कृत कवि सम्मेलन।

दि. ३.७.८३ — देवस्थान सुरक्षा, गोरक्षा, आदि सम्मेलन।

दि. ४.७.८३ — पूर्वाह्न श्रीमद्भागवत सप्ताह कथा, पाठ, जपादि की मूर्तिपूजा। सायं ५ बजे से संगीत सम्मेलन, रास आदि।

दि. ५.७.८३ पूर्वाह्न ८ से १० बजे तक श्रद्धान्जलि समर्पण, समाजगान पूर्ति। मध्याह्न में वृहद् वैष्णव-सेवा।

स्थान | निवेदक

काठिया बाबा आश्रम
गुरुकुल मार्ग, वृन्दावन

व्रजविदेही श्रीमहन्त रासबिहारीदासजी
एवं वृहत्समारोह समिति के सदस्यगण

●

श्रद्धान्जलि सभा में सभी धर्माचार्यों ने अपनी भावभीनी श्रद्धान्जलि बाबाजी के चरणों में समर्पित की। दस दिन-पर्यन्त कार्यक्रम चलता रहा। अन्तिम दिन झड़ा भण्डारे की व्यवस्था हुई। सभी सन्त, महापुरुषों को वस्त्र सहित दक्षिणा दी गयी। सभी लोग प्रसाद पाकर श्रीकाठिया बाबा जी के जय-जयकार करते हुए अपने-अपने स्थान पर पधार गये। श्री श्रीबाबाजी महाराज की जय हो। भावना सही है, तो वह अभी भी हमारे साथ विद्‌यमान हैं। अशुभ शक्तियों से हमारी रक्षा कर रहे हैं-

"मन्नाथः श्रीजगन्नाथः, मद्‌गुरु श्रीजगद्‌गुरुः।
मदात्मा सर्वभूतात्मा, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

हे जगन्नाथ ! हे सद्‌गुरु देव ! हम रासबिहारी दास आप के चरण सेवक होने के भी योग्य नहीं हैं। हमारे पास जो कुछ है, वह आपश्री का ही है। इसलिए हम अपनें से आपको क्या दे सकते हैं? यह जो स्वर्ण-समाधि-मन्दिर हमने बनवाया है, वह गंगाजल से गंगाकी पूजा सदृश आप की ही कृपा का फल है। अब हम आपकी वस्तु आपके श्रीचरणों में समर्पित कर निश्चिन्त हो रहे हैं-

निर्माप्य मन्दिरमिदं स्मृतिभावयुक्तम्,
श्रीमद्‌धनञ्जय गुरोः कृपयाऽऽप्त शान्तिः।
नान्यागतिः मम कथञ्चन तद् विहाय,
भूयोस्तरां नमति रासबिहारिदासः।।

●

अनुपम श्रद्धांजलियाँ

श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ विरचितम्

श्रीश्रीबाबाजी महाराज के पूतजीवन चरित का अनुध्यान समापन हुआ। उनके पूत जीवन दर्शन एवं साहित्य से प्रभावित होकर देश-विदेशों के महापुरुष, धर्माचार्य तथा साधक कविगण सैकड़ों की संख्या में श्लोकात्मक श्रद्धाञ्जलि समर्पित किए हैं, जो "श्रीधनञ्जयदास श्रद्धाञ्जलि शतकम्" ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित हो चुका है। यहाँ पर हम आप सभी की जानकारी हेतु विशेष व्यक्तियों की कुछ श्रद्धाञ्जलियाँ प्रस्तुत कर रहे हैं-

धन्या जन्मतिथिर्जयत्यतितरां यस्या जगद्भूतये,
प्रादुर्भूत इह प्रभूतमहिमा दैवी विभूतिः परा।
मूर्त्तो धर्म इव प्रपूर्त्तिरिव वा भक्तैः स साधूत्तमः,
श्रीमान् स्वामिधनञ्जयो भगवतो दासत्वमास्वादयन्।।१।।

अर्थात् वह जन्म तिथि धन्य है, वही जन्म तिथि-निरतिशय विजयलाभ प्रदायिनी, वह शुभ तिथि जिसमें प्रभु की महिमा युक्त एवं परम दैवी विभूति रूप स्वामी श्री धनञ्जयदासजी जो मूर्तिमान धर्म एवं भक्ति की प्रपूर्तिवत् जगत् कल्याण के निमित्त आविर्भूत होकर श्री भगवान् सदृश्य (भक्तजनों को) दास्यरस का आस्वादन कराते हैं।

यो ज्ञानेपरमार्थचिन्तनधने मन्त्रोत्कटे साधने,
सिद्धः शुद्धविचित्रचारुचरितो यो ब्रह्मचर्ये स्थितः।
संकल्पात् परिकल्पिता बहुमठा येन प्रतिष्ठापिता,
राधामाधवविग्रहग्रहयुताः सौन्दर्यपूतास्तथा।।२।।

अर्थात् जो ज्ञान में, परमार्थ चिन्तन में और सुदुष्कर मंत्र साधन में सिद्ध हुए हैं, जो सुन्दर चरित्र और विशुद्ध विचित्र गुणमण्डित हैं, जो ब्रह्मचर्य में स्थित हैं, जिन्होंने स्वीय संकल्पानुसार अनेक मठ (आश्रम) परिकल्पित और प्रतिष्ठापित किए हैं और उनमें श्रीराधामाधव के विग्रहों को संस्थापित करके उनको सौन्दर्यशाली एवं पवित्र किया है, वे ही श्रीधनञ्जयदास सदा जययुक्त हैं।

उदयद्दीधितिवद् यदीयशुभधीः सद्ग्रन्थपुष्पावलीः,
प्राकाश्यं नयति प्रकाममतुलं सौरभ्यवोधौज्ज्वलाः।
निम्बार्कागमतर्ककर्कशरसप्रावीण्यमागम्य यो,
लोकोद्बोधपरः सदा विजयते सोऽयं मनीषी महान्॥३॥

अर्थात् उदीयमान सूर्य किरणों की तरह जिन्होंने शुभ बुद्धि सुरभि प्रकाश द्वारा समुज्ज्वल सद्ग्रन्थरूप पुष्प समूहों को सातिशय रूप में प्रकाश किया है एवं जो निम्बार्क सिद्धान्त शास्त्र में एवं कर्कश तर्कशास्त्र में प्रवीणता लाभ करके जन-मन के ज्ञानोद्बोधन में सर्वदा निरत रहते हैं, वे ही महान् मनीषी श्री धनञ्जयदास सर्वदा विजय लाभ करें।

तर्कव्याकरणार्षदर्शनपथे यः सञ्चरन् नित्यशो,
ज्योतिर्द्योतनया स्वया प्रतिभया जाज्ज्वल्यमानः सदा।
मोहध्वान्त-हरो हरोपमगुणग्रामः क्षमामण्डितः,
नानाशास्त्रसुपण्डितो विजयते नास्तिक्यनाशक्षमः॥४॥

अर्थात् जो तर्क व्याकरणादिं शास्त्रों में और ऋषिप्रोक्त दर्शनशास्त्र के मार्ग में नित्य विचरणशील होकर अपनी प्रतिभा एवं ज्योति के विकास के द्वारा सर्वदा देदीप्यमान रहे हैं, जो शिवजी के गुणों के सदृश गुणशील और विभिन्न शास्त्रों में सुपण्डित एवं नास्तिक्य बुद्धि नाश करने में सक्षम हैं, वे ही मोहान्धकार नाशकारी, क्षमामण्डित महापुरुष प्रवर श्री धनञ्जयदासजी विजय-लाभ करें।

यो वृन्दावनसुन्दरेशमनसा रात्रिन्दिव नन्दितो,
भक्तिज्ञानसमन्वयप्रियतनुः श्रीकृष्णतुल्यच्छविः।
प्रेमक्षेमरतिर्गुरुप्रियपदद्वन्द्वैकचित्तो महान्,
श्रीमान् धन्यधनञ्जयो विजयते नित्यं धरण्यास्तले।।५।।

अर्थात् जो वृन्दावन सुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण को मन में धारण करके उनकी चिन्ता में दिवा-निशि आनन्दित रहते हैं, जो प्रियतनु भक्ति और ज्ञान की समन्वय भूमि हैं, जिनकी देह-कान्ति श्रीकृष्ण की तरह है, प्रेम में एवं क्षमा में ही जिनकी रति है; श्रीगुरु के प्रिय चरणकमलों में जो अनन्य चित्त हैं, वे ही महान्, श्रीयुक्त धन्य धनञ्जयदास इस पृथ्वी में नित्य ही विजय लाभ करें।

•

स्वामिधनञ्जयदास स्मृति पञ्चकम्

पं. हरिप्रसाद पैडेल
ब्रह्मविद्या मन्दिर सं. महाविद्यालय, वृन्दावन

धन्या सा जननी पिता कुलमलं धन्यैव सा जन्मभू-
र्यस्यां वैष्णवनामधेयसुजनः संजायते पावनः।
देवाः दुन्दुभिवादकाः नृति परा देवाङ्गना जन्मनि,
श्रील स्वामिधनञ्जयो विजयतां सोऽयं जगद्रक्षकः।।१।।

वह माता धन्य है, पिता भी धन्य है और वह कुल भी धन्य है तथा वह जन्मभूमि भी धन्य है जिस भूमि में वैष्णव नाम धारी पवित्र सज्जन महापुरुष जन्म लेते हैं। ऐसे महापुरुष के जन्म में देवगण दुन्दुभि बाजा बजाकर तथा देवांगनायें नृत्यकर उत्सव मनाती हैं। वैष्णव धर्म के प्रचार से जगत् की रक्षा करने वाले श्रील स्वामी धनञ्जयदास जी।

ज्ञाने यो गगनोपमो, जलनिधिर्भक्तौ च योगे रविः,
त्यागे श्री सनकादिवत् सुललितो देवर्षिवत् प्रेरकः।

निम्बादित्यपथानुगः परिकरैः सद्वैष्णवैर्पूजितः,
सोऽयं स्वाभिवरः कृपां वितनुतां राधापतेः पादजाम्।।२।।

जो ज्ञान के विषय में आकाश के समान अनन्त हैं, भक्ति में समुद्र के समान शीतल और अगाध हैं, योग में सूर्य के समान ओजस्वी और निरत हैं, त्याग में श्रीसनकादिकों की तरह विरक्तशिरोमणि हैं, परम सुन्दर और भक्तों को प्रेरणा देने में नारदजी की तरह हैं, श्रीनिम्बार्क भगवान् के सम्प्रदाय के अनुगामी हैं एवं शिष्य-मण्डल एवं सद्वैष्णवजनों से पूजित हैं, ऐसे स्वामीवर (श्रीधनञ्जयदासजी महाराज) हम सबके ऊपर श्रीराधासर्वेश्वर की चरणजन्य कृपा (भक्ति) का वितरण करें।

राधामाधव पादपद्ममधुवित्पूज्याय सत्भाषिणे,
शास्त्रोद् बोधन शारदाय शशिने ज्ञानैक पूर्णाब्धये।
योगे योगिवराद योगविलसत्कायाय सन्मार्गिणे,
श्रीमत् स्वामिधनञ्जयदास गुरवे प्राच्याय तुभ्यं नमः।।३।।

श्रीराधाकृष्ण के चरणकमल के मकरन्द के आस्वादिकों के लिए परम पूज्य, सदा सत्यभाषी, शास्त्रों का उद्बोधन करने के लिए, शारदा के समान ज्ञान के भण्डार, एक मात्र ज्ञान से परिपूर्ण समुद्र में चन्द्रमा के समान शीतल और उज्जवल, योगमार्ग में परम श्रेष्ठ योगी, योग-साधना के द्वारा शोभायमान योग वाले, गुरु रूप में अर्चन योग्य श्रीमान् स्वामी धनञ्जयदास जी महाराज आपको हमारा नमस्कार है।

धर्मे यस्यरुचि र्विधर्मपथभित् यो धर्मसंस्थापकः,
नन्दस्यात्मजपादपद्मघुलिट्र श्रीराधया लालितः।
जप्त्वाऽऽष्टादशवर्णमन्त्रनृपतिं सिद्धश्च वृन्दावने,
यत्राऽऽगत्य निवर्तते न च नरो दासाऽऽगण्यो हरेः।।४।।

जिनकी रुचि सदैव धर्म में रही है, जो सदैव विधर्म-मार्ग का

विनाश कर रहे है तथा धर्म के संस्थापक आचार्य रहे हैं, जो नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के पादपद्म-मकरन्द के आस्वादक हैं तथा श्रीराधाजी के लाड़ले भक्त हैं, जो अष्टादशाक्षर मन्त्र-राज का जाप करके वृन्दावन में सिद्धि को प्राप्त हुए हैं तथा जिस वृन्दावन (गोलोक-धाम) में आकर प्राणी कभी नहीं लौटता है, श्रीहरि के दासों में अग्रगण्य ऐसे स्वामी श्रीधनञ्जयदासजी महाराज सदा मेरे हृदय में प्रकाशित हों।

श्रीधनञ्जयदासाय स्वामिने चित्स्वरूपिणे।
नमः प्रपञ्चशुद्ध्यर्थमर्पये पुष्पपञ्चकम्।।

चैतन्य स्वरूप में विद्यमान-'पाञ्चभौतिक देह त्यागने के कारण चैतन्य देहधारी कहा गया है, स्वामी श्रीधनञ्जयदास जी महाराज को मेरा नमस्कार हो। मैं अपनी भी पाञ्चभौतिक प्रपञ्चशुद्धि के लिए पांच पद्यरूपी पुष्प पञ्चक को उनके चरणों में अर्पित करता हूँ।

श्रीगुरुदेव स्तोत्रम्

श्रीगुरुदेवं नौमि तमेव गतमदमानं रहितविकारम्।
नित्यं ज्ञेयं नित्यं ध्येयं नित्यं ज्ञानाधारम्।।१।।

मद और मानरहित, कामादि विकारों से निर्लिप्त, नित्य जानने योग्य, नित्य ध्यान योग्य, नित्य कीर्तन योग्य, ज्ञान के आधार श्रीगुरुदेव जी को मैं नमस्कार करता हूँ।

ब्रह्मनिधानं शास्त्रनिधानं घृतगुणमानं परमोदारम्।
विग्रहनिष्ठं बुद्धिवरिष्ठं भावजविष्ठं सहितविचारम्।।२।।

ब्रह्म तथा वेदों के निधान, शील के आधार, गुण और मान को धारण करने वाले, परम उदार, इन्द्रियों को वश में रखने वाले, ज्ञानश्रेष्ठ, सुन्दर भावों में उत्कृष्ट, विचारशील श्रीगुरुदेव जी को मैं प्रणाम करता हूँ।

अशरणशरणं संशयहरणं लोकाभरणं जगदाचारम्।
मंगलकरणं मंगलचरणं मंगलभरणं मंगलसारम्।।३।।

अनाश्रितों के आश्रय, संशयों को दूर करने वाले त्रिलोकी के भूषण, जगत् के आधार, कल्याण करने वाले, पवित्र आचरण वाले, मंगल को भरने वाले, कल्याण-तत्त्व स्वरूप श्रीगुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ।

अधदलकदनं कुसुमितवदनं शोभासदनं निरहंकारम्।
ज्ञानासक्तं ध्यानारक्तं सर्वविरक्तं शुद्धाचारम्।।४।।

पाप समूह को नष्ट करने वाले, प्रसन्नवदन, शोभा के धाम, अहंकार रहित, ब्रह्मनिष्ठ, ध्यान में लगे हुए संसार के विषयों से विरक्त, पवित्र आचरण वाले, श्रीगुरुदेव जो मैं नमस्कार करता हूँ।

अतिमृदुहासं वाणिविलासं दिनमणिभासं वहुहितकारम्।
विनयावनतो परमविनतो नौमि सदाऽहं गुरुपदसारम्।।५।।

मृदु मुस्कान वाले, मधुरवाणी वाले, सूर्य के समान कान्ति वाले, बहुत हित करने वाले, महावाक्यों के सारस्वरूप, श्रीगुरुदेव जी को विनयशील मैं विनम्र होकर प्रणाम करता हूँ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु र्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।६।।

जो गुरुदेव ब्रह्म हैं, जो गुरुदेव विष्णु हैं, जो गुरुदेव शंकर हैं, कहाँ तक कहूँ, जो गुरुदेव साक्षात् परब्रह्म के स्वरूप हैं उन गुरुदेव को मेरा नमस्कार है।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।७।।

जिन गुरुदेव जी ने ज्ञान की अंजनरूपी शलाका से मेरे नेत्रों के अज्ञानरूपी अन्धकार जाले को नष्ट कर दिया हैं, उन्हें मेरा कोटिशः प्रणाम।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।८।।

जिस तत्त्व के द्वारा यह स्थूल और सूक्ष्म जगत् ओत-प्रोत है, अखण्डाकार वृत्ति के द्वारा उस तत्त्व को अनुभव करने वाले श्रीगुरुदेव जी को मेरा कोटिशः प्रणाम।

श्रीगुरु-आरती

ॐ जय गुरुदेव हरे, हरे स्वामी जय गुरुदेव हरे
शिष्य जनों के संकट क्षण में दूर करे।।

जो ध्यावै फल पावै, शांति मिले मन की।
सुख-सम्मति घर आवै, व्याधि मिटे भव की।।
ॐ जय गुरुदेव हरे............

माता-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी?
तुम बिन और न दूजा गुरु बिन और न दूजा,
आस करूँ किसकी?
ॐ जय गुरुदेव हरे............

तुम करुणा के सागर, तुम मेरे त्राता।
मैं मूरख खल कामी, मैं सेवक तुम स्वामी, कृपा करो भर्ता
ॐ जय गुरुदेव हरे............

दीन बन्धु दुख हर्ता, तुम ठाकुर मेरे।
अपने हाथ उठाओ, अपने हृदय लगाओ, द्वार पड़ा तेरे
ॐ जय गुरुदेव हरे............

विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ, साधन-भक्ति बढ़ाओ संतन की सेवा।
ॐ जय गुरुदेव हरे............

काम-क्रोध मद-लोभ के वश में जनम गये कितने,
आवागमन मिटाओ, भव बन्धन को काटो, हम तेरे अपने।
ॐ जय गुरुदेव हरे............

श्रीकाठियाबाबा चैरीटेबिल ट्रस्ट द्वारा

प्रकाशित ग्रन्थ माला

1. श्रीनिम्बार्क साधनसार
2. ब्रजविदेही श्रीमहन्त स्वामी रामदास काठियाबाबाजी का जीवन चरित्र
3. ब्रजविदेही श्रीमहन्त स्वामी सन्तदास काठियाबाबाजी का जीवन चरित्र
4. ब्रजविदेही श्रीमहन्त स्वामी धनञ्जयदास काठियाबाबाजी का जीवन चरित्र
5. स्वामी धनञ्जयदास श्रद्धाञ्जलि शतकम्
6. श्री श्रीरामदास काठियाबाबाजी
7. श्री श्रीसन्तदास काठियाबाबाजी
8. श्री श्रीधनञ्जयदास काठियाबाबाजी
9. श्रीनिम्बार्क वेदान्त संक्षिप्त सार
10. श्रीसन्तदास स्तवरत्नाञ्जलिः

प्राप्ति स्थानः-

श्रीकाठियाबाबा का स्थान

गुरुकुल मार्ग, वृन्दावन (उ.प्र.) फोन नं. (0565) 442770

Website : www.kathiababa.com, E-mail : rbd@kathiababa.com